BIHAR YOGA®

श्रीरामचरितमानस

बालकाण्ड – 2

संकलन एवं सम्पादन

अवलोकितेश्वर



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

श्रीरामचरितमानस

बालकाण्ड – 2

(दोहा 44 से 103 तक)

शिव-पार्वती कथा

ॐ, प्रेम, मंगलम्

स्वामी निरंजन

श्रीरामचरितमानस

बालकाण्ड – 2

शिव-पार्वती कथा

संकलन एवं सम्पादन

अवलोकितेश्वर

(सुबोध अग्रवाल, सतना)



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड – 2

अवलोकितेश्वर

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित

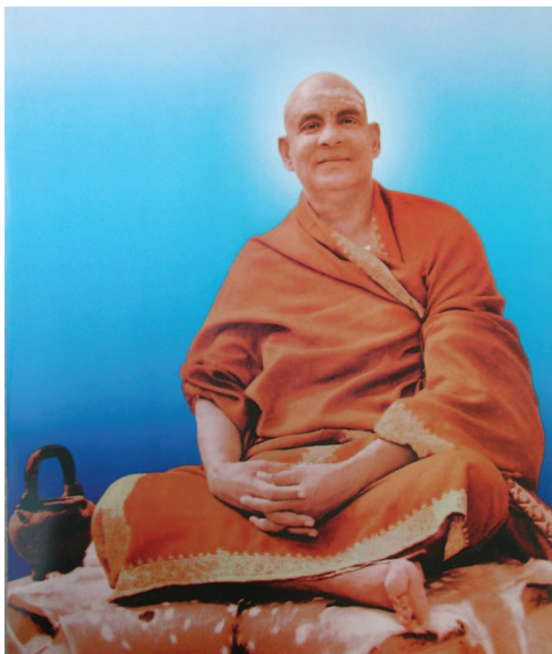
प्रथम संस्करण 2020

ISBN: 978-81-946102-5-0

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु,
पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार

वेबसाइट: www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

मुद्रक—थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड, नई दिल्ली



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005

विषय सूची

			पृ. सं.
19 शीर्षकों द्वारा संक्षिप्त प्रस्तुतीकरण			1

शिव-पार्वती कथा

(19 शीर्षकों एवं उपशीर्षकों द्वारा विस्तृत प्रस्तुतीकरण)

1.	भरद्वाज जी व याज्ञवल्क्य जी के बीच संवाद	दोहा 44 – 47	9
2.	शंकर जी सती के साथ अगस्त्य ऋषि के आश्रम में	दोहा 48	21
3.	वापसी में राम के दर्शन, दूर से प्रणाम करते हैं	दोहा 49 – 50	23
4.	राम के प्रति सती को संदेह, शंकर जी समझाते हैं	दोहा 51	30
5.	सती जी सीता बनकर राम की परीक्षा लेती हैं	दोहा 52 – 53	35
6.	राम अपने ब्रह्म रूप का दर्शन सती जी को करा देते हैं	दोहा 54 – 55	41
7.	शंकर जी सती त्याग का संकल्प ले समाधि में बैठे	दोहा 56 – 58	45
8.	सती का पश्चात्ताप, पिता के यज्ञ में बिना बुलाये पहुँचीं	दोहा 59 – 62	54
9.	शंकर जी का निरादर देख, सती शरीर भस्म करती हैं	दोहा 63 – 65	65
10.	हिमाचल के घर पार्वती रूप में जन्म	दोहा 65 – 66	75
11.	नारद जी कहते हैं–'शंकर ही वर होंगे, पार्वती तप करें'	दोहा 67 – 70	79
12.	पार्वती तप करती हैं, ब्रह्मवाणी–'शिव ही वर होंगे'	दोहा 71– 75	91
13.	राम के कहने से शिव, पार्वती से विवाह को राजी	दोहा 76 – 77	104
14.	सप्तर्षि मध्यस्थ बन पार्वती व हिमवान् के पास जाते हैं	दोहा 77 – 81	110
15.	शंकर जी समाधि में, कामदेव समाधि भंग करते हैं	दोहा 82 – 88	124
16.	शिव-पार्वती विवाह की लग्नपत्रिका	दोहा 88 – 91	143
17.	शिव जी की बारात, कैलास से हिमाचल पहुँची	दोहा 92 – 95	152
18.	मैना शिव को नापसंद कर दु:खी, समझाने पर हाँ की	दोहा 96 – 98	165
19.	शिव-पार्वती विवाह	दोहा 99 – 103	174

परिचय

श्रीरामचरितमानस को मेरे पिताजी अपने माता-पिता के समान ही मानते थे, क्योंकि उनके माता-पिता बचपन से ही नहीं थे। उन्होंने अपना सारा जीवन इस ग्रंथ के आधार पर ही प्रेम, आनंद व संतोष के साथ जिया। मुझे बचपन से ही इस ग्रंथ से बहुत लगाव रहा है। मैंने इसकी जीवंतता को नजदीक से देखा है।

मेरे गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी की भी इस ग्रंथ के प्रति अगाध श्रद्धा है। रिखिया में उनके सत्संगों के अनुपम संग्रह, भक्ति योग सागर भाग-1 से 7 तक मैंने पढ़े हैं और उन्हें पढ़कर लगा, वे चाहते हैं कि श्रीरामचरितमानस का शब्दानुवाद हो। यह बात मेरे मन में बैठ गयी। 5 दिसंबर 2009 की मध्य रात्रि को जब गुरुदेव महासमाधि में लीन हुए, रात्रि में 2 बजे मेरी नींद अचानक खुल गई। उठकर थोड़ी देर ध्यान किया। उसके बाद यह कार्य मेरे लिये श्री गुरुदेव का सेवा कार्य बन गया।

स्वामी चिन्मयानन्द जी के वरिष्ठ शिष्य स्वामी शंकरानन्द जी, कानपुर आश्रम में रामचरितमानस के एक-एक दोहे पर एक घंटे का प्रवचन दिया करते थे। उनके उपलब्ध प्रवचनों को आधार बनाकर मैंने नोट तैयार किया। स्वामी निरंजनानन्द जी से जब आशीर्वाद और मार्गदर्शन का निवेदन किया तो उन्होंने कहा, कार्य अच्छा है, इसे इतना सरल लिखो कि अनपढ़ व्यक्ति भी समझ जाये। बस फिर क्या था! स्वामीजी की प्रेरणा से सरलीकरण, संपादन, शीर्षक, उपशीर्षक बनते चले गये। स्वामीजी ने कहा कि एक-एक काण्ड लिखते जाओ, हम प्रकाशित करते जायेंगे। सबसे पहले सुंदरकाण्ड तैयार हुआ जिसमें हुनमान जी के सुंदर सेवा कार्य का वर्णन है। गुरु प्रेरणा से अब

बालकाण्ड को पाँच भाग में तैयार किया गया है जिसमें श्रीरामचरितमानस की महिमा, शिव-पार्वती विवाह, राम-अवतार के कारणों का वर्णन, बाल लीला एवं राम-सीता विवाह का सरस एवं सुन्दर वर्णन किया गया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित श्रीरामचरितमानस महाकाव्य है। यह सरस है, इसमें मधु की मिठास है। हम अपनी कार्य सिद्धि के लिए बिना मिठास के जल्दी-जल्दी पाठ कर लेते हैं। राग से, भाव से, रस लेते हुए इसे पढ़ें। आँखों में प्रेम के अश्रु आयेंगे, शरीर रोमांचित हो जाएगा। यह मात्र पुस्तक नहीं है, इसमें अध्यात्म, ज्ञान, भक्ति और प्रेम के साथ-साथ पारिवारिक, व्यवहारिक एवं सामाजिक शिक्षा भी है। यह इतिहास भी है, भूगोल भी है, राजनीति और कूटनीति की शिक्षा भी है। यह हिंदी साहित्य की उच्चतम प्रस्तुति है।

– अवलोकितेश्वर

तुम भगवान पर अविश्वास कर सकते हो। तुम्हें राम के अस्तित्व पर प्रश्न हो सकता है। सब ठीक है, पर मैं भगवान के बारे में नहीं, मैं बोल रहा हूँ नाम के बारे में। नाम पर कभी शंका मत करना। जब राम का नाम लेते हो तो तुम्हारा मन, तुम्हारा हृदय, तुम्हारा पूरा जीवन ऐसे धुल जाता है, जैसे राम का नाम डिटरजेंट पाउडर हो। यह भगवान का नाम मामूली चीज नहीं है। यह भगवान का नाम आत्मबम है। तुम्हारे अंदर में जितनी माया, मलिनता, कोढ़, गंदगी, भय, निराशा, जितनी भी आसुरी शक्तियाँ हैं सबको समाप्त कर देगा। मेरा कहना है कि रोज जब भी तुमको समय मिले भगवान् का नाम जपो। 1 घण्टा जपो, 2 घण्टा जपो। समय मिले तो कभी 1 दिन कभी 2 दिन कभी 9 दिन या साल भर का अनुष्ठान करो। यही एकमात्र रास्ता है।

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

बालकाण्ड – 2

19 शीर्षकों द्वारा संक्षिप्त प्रस्तुतिकरण

1. भरद्वाज जी व याज्ञवल्क्यजी के बीच संवाद

(दोहा 44 से दोहा 47)

तुलसीदास जी कहते हैं कि जैसे सरोवर में चार घाट होते हैं वैसे श्रीरामचरितमानस में चार संवाद हैं, चार श्रोता हैं व चार वक्ता हैं। प्रथम घाट में तुलसीदासजी की कथा चल रही है, श्रोता सज्जन लोग हैं, स्थान अयोध्या है। इस प्रसंग में दूसरे घाट की कथा प्रारंभ होती है जिसमें वक्ता याज्ञवल्क्य मुनि हैं, श्रोता भरद्वाज मुनि हैं और स्थान है तीर्थराज प्रयाग। श्रीराम कथा के पहले याज्ञवल्क्य मुनि शिव-पार्वती कथा भरद्वाज मुनि को सुनाते हैं।

2. शंकर जी सती के साथ अगस्त्य ऋषि आश्रम में

(दोहा 48)

शंकर जी में जब प्रेम है तभी राम की कथा में मन लगता है अत: रामकथा के पहले शंकर-पार्वती की कथा कहते हैं। यहाँ से शिव पार्वती कथा प्रारंभ करते हैं। शंकर जी एक बार सती जी के साथ अगस्त्य ऋषि के आश्रम में जाकर रामकथा कहते व सुनते हैं। कथा सुनकर वे वापस सती के साथ कैलास की ओर चलते हैं।

3. वापसी में राम के दर्शन, दूर से प्रणाम करते हैं

(दोहा 49, 50)

जब शंकर जी कैलास की तरफ जा रहे थे, उसी समय उनके इष्ट प्रभु राम महाराज दशरथ के यहाँ अवतार लेकर दंडक वन में सीता हरण के बाद वियोग की लीला कर रहे थे। शंकर जी के मन में तीव्र लालसा थी कि उनके दर्शन

हो जायें। प्रभु राम दिशा बदलकर दर्शन देते हैं। शंकर जी दूर से ही उन्हें जय सच्चिदानंद कहकर प्रणाम करते हैं।

4. राम के प्रति सती को संदेह, शंकर जी समझाते हैं

(दोहा 51)

प्रभु राम अवतार लेकर मनुष्य रूप में राजकुमार बनकर सीता विरह में रो रहे हैं, पर शंकर जी उन्हें परब्रह्म परमेश्वर कहकर प्रणाम करते हैं, यहीं से सती के मन में भगवान के अवतार के प्रति संदेह उत्पन्न हो जाता है। वास्तव में यह संदेह तो हम सबको भी हो जाता है, बहुत से लोग अवतार के सिद्धांत को मानते ही नहीं। सती जी मन में बहुत से तर्क करके इस निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि ये अवतार नहीं हैं। उनके तार्किक भावों को तुलसीदास जी ने ऐसे प्रस्तुत किया है कि ये प्रश्न हमारे अंदर भी सहज ही उठ जायेंगे। प्रश्न उठाकर उसका समाधान शंकर जी से करवाते हैं। शंकर जी सती को बहुत तरीके से समझाते हैं, पर उन्हें कुछ समझ नहीं आता।

5. सती जी सीता बनकर राम की परीक्षा लेती हैं

(दोहा 52 से 53)

जब शंकर जी ने देखा कि हमारे समझाने का सती पर कोई असर नहीं हुआ तो वे समझ गये कि जब तक ये स्वयं न जाँच लें तब तक इन्हें विश्वास नहीं होगा। राम की परीक्षा लेकर अपना भ्रम दूर करने की आज्ञा देते हैं। सती सीता का वेष बनाकर राम को ही भ्रम में डालने का प्रयास करती हैं। प्रभु राम के सामने कपट चलता नहीं, भेद खुल जाता है। सती को अपनी गलती पर बहुत दु:ख होता है।

6. राम अपने ब्रह्म रूप का दर्शन सती जी को करा देते हैं

(दोहा 54,55)

राम जी ने जब देखा कि भेद खुल जाने से सती बहुत दु:खी हैं, तो उन्होंने अपने ब्रह्म होने का प्रमाण दिखा दिया। यहाँ पर तुलसीदास जी एक ही ब्रह्म को स्पष्ट रूप से चित्रित करके दिखाते हैं। अनेकों ब्रह्मांड हैं, प्रत्येक में राम व सीता विराजमान हैं, देवता उनकी सेवा कर रहे हैं। प्रत्येक ब्रह्मांड में ब्रह्मा, विष्णु व महेश के वेष तो अलग-अलग हैं पर राम जी का वेष एक ही है। इस

प्रसंग का पाठ करें जिससे प्रभु राम के प्रति सभी शंकायें समाप्त हों, उनके सगुण ब्रह्म रूप का दर्शन करके अपने को धन्य करें।

7. शंकर जी सती त्याग का संकल्प ले समाधि में बैठे

(दोहा 56 से दोहा 58)

शंकर जी के पूछने पर कि परीक्षा कैसे ली, सती ने झूठ बोल दिया कि परीक्षा ली ही नहीं। शंकर जी ने ध्यान लगाकर देख लिया कि इन्होंने सीता का वेष बनाकर परीक्षा ली है। शंकर जी दु:खी हो राम का स्मरण करते हैं, उनकी प्रेरणा से सती त्याग का संकल्प ले लेते हैं। फिर कैलास में आकर समाधि में बैठ जाते हैं।

8. सती का पश्चात्ताप, पिता के यज्ञ में बिना बुलाये पहुँचीं

(दोहा 59 से 62)

सती जी पश्चात्ताप करके बहुत दु:खी होती हैं। अपने शरीर त्याग करने का विचार करती हैं। प्रभु राम का स्मरण करती हैं। लंबे समय के बाद शंकर जी राम राम कहते हुए समाधि से उठते हैं। सती जी उनके दर्शन के लिये जाती हैं। शंकर जी उन्हें बाँयी तरफ आसन न देकर सामने बैठने को कहते हैं। वे समझ गयीं कि हमारा परित्याग हो गया है। इतने में उनके पिता प्रजापति का पद पाकर, अभिमान वश यज्ञ का आयोजन करते हैं। शंकर जी से वैर के कारण उन्हें नहीं बुलाते हैं। सती जी शंकर जी से पिता के घर बिना बुलाये ही जाने की आज्ञा मांगती हैं। शंकर जी बहुत समझाते हैं, पर असर नहीं होता, वे जाने की हठ किये रहती हैं। भविष्य निश्चित है, यह सोचकर शंकर जी उनके जाने की तैयारी करके विदा करते हैं।

9. शंकर जी का निरादर देख, सती शरीर भस्म करती हैं

(दोहा 63 से 65)

पिता के घर पहुँचने पर सती का स्वागत नहीं होता है, बहनें व्यंग्य भरी नजरों से देखती हैं, पिता गुस्से से देखते हैं, केवल माँ प्रेम से मिलती हैं। यज्ञशाला में जाने से उन्हें पता चला कि यहाँ शंकर जी की निंदा की गई है। यज्ञ में सब देवताओं के आसन हैं, पर शंकर जी का अपमान करके उन्हें न तो बुलाया, न ही आसन रखा है। यह सब देखकर वे वहाँ उपस्थित सभी

मुनियों, देवताओं तथा अपने पिता को शिव की महिमा बताती हैं व शिव निंदा का फल भुगतने की चेतावनी देती हैं। वे सोचती हैं कि हमारा संबंध इन पिता से शरीर के कारण ही है, इसलिये शरीर त्याग का संकल्प लेती हैं। शंकर जी का स्मरण करके योग की अग्नि में अपने शरीर को भस्म कर लेती हैं। यज्ञ में हाहाकार मच जाता है। शंकर जी कुपित होकर वीरभद्र को भेजते हैं, जो सबको दण्ड देते हैं।

10. हिमाचल के घर पार्वती रूप में जन्म

(दोहा 65 से 66)

माता सती ने योग अग्नि से अपने शरीर का त्याग करते समय यह भाव रखा कि फिर से जन्म हो, और शंकर जी के चरणों में प्रेम बना रहे। इसलिये उनका पुनर्जन्म हिमालय पर्वत के अधिष्ठाता देवता हिमाचल के घर होता है। रामचरितमानस में पुनर्जन्म व कर्म के सिद्धांत का भी वर्णन किया गया है। पुण्यात्मा के जन्म लेते ही हिमाचल के यहाँ सुख, समृद्धि व मंगल छा जाता है। पर्वत की पुत्री के कारण उन्हें पार्वती कहते हैं। जब पार्वती किशोरी अवस्था तक बड़ी हो गईं तब नारद जी आते हैं। हिमाचल उनका बहुत स्वागत व आदर करते हैं।

11. नारद जी कहते हैं– 'शंकर ही वर होंगे, पार्वती तप करें'

(दोहा 67 से 70)

इस प्रसंग में तुलसीदास जी नारद जी को ज्योतिषी व पार्वती जी के गुरु रूप में वर्णन करते हैं। पर्वतराज जब पार्वती का भविष्य पूछते हैं तो नारद जी कहते हैं कि इस कन्या में तो गुण ही गुण हैं, 9 तरह के दोष तो इसके वर में हैं। पार्वती जी दोषों को सुनकर तुरंत समझ जाती हैं कि ये तो शंकर जी के गुण हैं, मेरे वर तो शंकर ही होंगे पर वे भारतीय संस्कृति का पालन करते हुए चुप रहती हैं। नारद जी बाद में समझ पाते हैं कि ये तो जगदंबा का अवतार हैं। शंकर ही उनके वर होंगे। हिमाचल, वर के दोषों के निवारण का उपाय पूछते हैं, नारदजी कहते हैं कि शंकर जी को वर पाने के लिये पार्वती जी तप करें। जो दोष बताये गये हैं वे सब शंकर जी में हैं, पर वे इतने महान् हैं कि उनके दोषों का महत्त्व ही नहीं है। जैसे गुरु का कार्य है कि वह अपने शिष्य के अंदर भगवान के प्रति विश्वास उत्पन्न करे, उसे ठीक-ठीक ज्ञान कराये

वैसे ही नारद जी, पार्वती जी को शंकर जी के प्रति एकनिष्ठ होकर साधना करने का उपदेश देकर चले जाते हैं।

12. पार्वती तप करती हैं, ब्रह्मवाणी– 'शिव ही वर होंगे'

(दोहा 71 से 75)

प्रत्येक माँ चाहती है कि पुत्री को अच्छा वर मिले। मैना भी नारद जी की बातों से चिंतित हो कहती हैं कि हम अयोग्य वर से कन्या का विवाह नहीं करेंगे। पति कहते हैं कि पुत्री को समझाओ कि वह तप करे ताकि शंकर जी वर हों। वे सब प्रकार से योग्य व समर्थ हैं। मैना समझाने जाती हैं पर बोल नहीं पाती, पार्वती जी स्वप्न की बात कहकर बात सँभालती हैं। माता-पिता की अनुमति से वन में जाती हैं। शिव जी के साथ पति का रिश्ता मन में जोड़ती हैं फिर प्रसन्नता से कठोर तप करते हुए शिव के नाम का जप करती हैं। ब्रह्मा जी प्रसन्न होकर आकाशवाणी करते हैं कि अब तप समाप्त करो, शंकर जी वर होंगे, पिता के बुलाने पर घर चले जाना, सप्तर्षि का मिलना इसकी सत्यता का प्रमाण होगा। पार्वती जी अत्यंत रोमांचित व हर्षित होती हैं। हम भी भगवान से रिश्ता जोड़ें जिससे भाव उत्पन्न हो, फिर प्रसन्नता से उनके नाम का स्मरण करें।

13. राम के कहने से शिव पार्वती से विवाह को राजी

(दोहा 76 से 77)

सती के शरीर त्याग के बाद शंकर जी पूरे संसार को ही अपना घर समझकर विचरण करते हैं। जहाँ रामकथा होती है, राम का नाम लिया जाता हो, वहाँ पहुँच जाते हैं। रामकथा कहते भी हैं, सुनते भी हैं। कहीं मुनियों को ज्ञान का उपदेश देते हैं। उनका मन विरक्त होकर राम में रम जाता है। पर वे सती के दुःख से दुःखी भी रहते हैं। प्रभु राम अपने अलौकिक सौंदर्य व तेज के साथ शिव जी के सामने प्रगट हो जाते हैं। उनके व्रत की प्रशंसा करके समझाते हैं कि अब सती के दोष दूर हो गये हैं, शरीर त्याग के बाद पार्वती बनकर जन्म ले लिया है। फिर विनती करते हुए शंकर जी से 'शिव-पार्वती विवाह' का वरदान मांग लेते हैं। शिव जी राम की आज्ञा को अपना परमधर्म मानते हुए पार्वती से विवाह की बात स्वीकार कर लेते हैं। राम प्रसन्न व संतुष्ट होकर अंतर्धान हो जाते हैं।

14. सप्तर्षि मध्यस्थ बन पार्वती व हिमवान् के पास जाते हैं

(दोहा 77 से 81)

इस प्रसंग में भारतीय संस्कृति के तौर-तरीकों का बहुत सुंदर वर्णन है। राम जी के कहने से शिव सीधे पार्वती के पास जाकर विवाह न करके, लोकरीति का पालन करते हैं। सबसे पहले कन्या की इच्छा जानते हैं कि वे क्या चाहती हैं, फिर उनके पिता से बातचीत होती है, वे दोनों राजी हैं, तब वर की सहमति बतायी जाती है। इन सब कार्यों के लिये सप्तर्षि को मध्यस्थ बनाकर भेजते हैं। पार्वती जी को देखकर सप्तर्षि को लगा जैसे तप की मूर्ति हों। पार्वती से पूछते हैं कि क्या चाहती हो, वे कहती हैं शिव से विवाह। अनेक तर्क-कुतर्क के बाद पार्वती के प्रेम व बुद्धिमानी के आगे सप्तर्षि नतमस्तक हो हिमाचल के पास जाते हैं, जो पार्वती को वन से घर ले आते हैं। उमा के प्रेम का समाचार सुनकर शंकर जी मगन हो जाते हैं।

15. शंकर जी समाधि में, कामदेव समाधि भंग करते हैं

(दोहा 82 से दोहा 88)

पार्वती के हृदय में अटल प्रेम व तप से चित्त शुद्धीकरण की बात सुनकर शंकर जी प्रसन्नता से राम का ध्यान करते-करते समाधि में चले जाते हैं। शिव-पार्वती विवाह हेतु समाधि भंग होना आवश्यक है। उसी समय तारक नाम का राक्षस पैदा होता है, जो शिव-पार्वती के पुत्र से ही मरने का वरदान माँग लेता है। देवता उससे त्रस्त होकर, ब्रह्मा जी के पास जाते हैं। ब्रह्मा जी कहते हैं कैसे भी समाधि भंग करवा दो, फिर हम विवाह करवा देंगे। देवता कामदेव को शंकर जी के पास भेजते हैं, सारे प्रयास करके वह हार जाता है, शिव की समाधि डिगा नहीं पाता। अंत में, बाणों के प्रहार से समाधि भंग कर देता है। जैसे ही शंकर जी तीसरे नेत्र से कामदेव की तरफ देखते हैं, वह भस्म हो जाता है। पत्नी रति को वरदान देते हैं कि कामदेव अब बिना शरीर के रहेगा, द्वापर युग में फिर जन्म लेकर तुम्हारा पति होगा।

16. शिव-पार्वती विवाह की लग्नपत्रिका

(दोहा 88 से दोहा 91)

शंकर जी की समाधि भंग होते ही ब्रह्मा व विष्णु के साथ सब देवता कैलास पहुँचते हैं। शिव की स्तुति करके, पार्वती से विवाह हेतु हाँ कहलवा लेते

हैं। पूरे रीति-रिवाज से विवाह की तैयारी प्रारंभ होती है। ब्रह्मा जी विवाह के मुखिया बनकर, सप्तर्षि से हिमाचल के यहाँ संदेश भिजवाते हैं। सप्तर्षि पार्वती से मिलकर परिहास पूर्ण बाते करते हैं। हिमाचल को शंकर जी की महिमा बताकर विवाह की स्वीकृति लेते हैं। हिमाचल पण्डितों से लग्न पत्रिका लिखवाकर, सप्तर्षि के हाथों ब्रह्मा जी के पास भेजते हैं। परंपरा के अनुसार ब्रह्मा जी लग्न पत्रिका खोलते हैं, पढ़कर सब देवताओं को सुनाते हैं। सब प्रसन्न होते हैं, कैलास में सजावट होने लगती है, बारात चलने की तैयारियाँ प्रारंभ हो जाती हैं।

17. शिव जी की बारात कैलास से हिमाचल पहुँची

(दोहा 92 से 95 तक)

शिव जी को दूल्हे जैसा सजाना है, यह कार्य उनके गण करते हैं। शृंगार सामग्री हैं– वासुकी सर्प, श्मशान की भभूति, बाघम्बर, जटायें, नरमुंड माला। शृंगार करके शिव जी को बैल पर बैठा देते हैं, तो बारात बाजे के साथ, हिमाचल के घर की तरफ चल देती है। उनके साथ सुंदर सवारी में सारे देवता चलने लगते हैं, गण पीछे छूट जाते हैं। विष्णु जी के कहने से देवताओं की जगह शिव-गण, शिव जी के साथ चलने लगते हैं ये अति-विचित्र हैं, दो हाथ, दो पैर एक सिर, एक मुख वाला सामान्य व्यक्ति कोई नहीं है। किसी के बहुत से मुँख हैं तो किसी के मुख ही नहीं हैं। किसी के बहुत से हाथ व पैर हैं तो किसी के हाथ, पैर ही नहीं हैं। भूत, प्रेत, पिशाच, योगी जो बिना शरीर के प्राणी हैं, वे भी बारात में खूब मस्ती करते हुए चल रहे हैं। इस प्रकार बारात हिमाचल तक पहुँचती है, बच्चे बारात देखकर डर के मारे भाग जाते हैं, समझदार नगरवासी बारात का स्वागत करते हुए जनवासे में ठहरा देते हैं।

18. मैना शिव को नापसंद कर दुःखी, समझाने पर हाँ की

(दोहा 96 से 98)

शिव जी परिछन के लिये हिमाचल के द्वार पर पहुँचते हैं। पार्वती की माँ मैना व उनके साथ की स्त्रियाँ शिव के भयंकर वेष को देखकर भाग जाती हैं। मैना बहुत दुःखी होकर, विधाता व नारद को दोष देते हुए पार्वती से कहती हैं कि हम मर जायेंगे पर जीते जी इस वर से तुम्हारा विवाह न होने देंगे। पार्वती मधुर वचनों से कहती हैं कि दोष मत दो, जो भाग्य में होगा वही होगा, पर उनकी

बातें समझ नहीं आती हैं। नारद जी पूर्वजन्म की सती की कथा सुनाकर कहते हैं कि यह पुत्री तो माँ जगदंबा का अवतार है, सदा शिव को प्रिय है, हर जन्म में शिव से ही इनका विवाह होगा। नारद जी की बातों से सब आनंदित हो जाते हैं। मैना-हिमवान पार्वती के चरणों की वंदना करके, विवाह की तैयारी शुरू करवाते हैं।

19. शिव-पार्वती विवाह

(दोहा 99 से 103)

इस प्रसंग में तुलसीदास जी यह बताते हैं कि किस प्रकार के आनंद व मनो-विनोद के वातावरण में वैदिक रीति से शिव-पार्वती के विवाह का कार्य संपन्न होता है। सब बारातियों को प्रेम से बैठाकर, निपुण रसोइयों द्वारा परोसकर, पाकशास्त्र में वर्णित विधि से बना भोजन हँसी-मजाक के माहौल में करवाया जाता है। मंडप के मध्य में दिव्य सिंहासन पर शिव जी सुंदर स्वरूप में बैठते हैं। शोभा की खान पार्वती जी दिव्य सौंदर्य में मंडप में आती हैं। गणेश पूजन से शुरू करके विवाह की रीति करवाई जाती है। हिमवान पार्वती का हाथ शिव के हाथों में सौपकर पाणिग्रहण संस्कार करते हैं। प्रथा के अनुसार दहेज देकर भावपूर्ण वातावरण में विदाई करते हैं। शिव जी दहेज का सामान याचकों को बाँटकर, पार्वती के साथ कैलास पहुँचते हैं। बहुत दिनों बाद उनके पुत्र होता है जो तारकासुर का वध करता है। इस कथा को कहने से विवाह आदि के मंगल कार्य सुगमता से संपन्न होते हैं।

बालकाण्ड – 2

शिव-पार्वती कथा

1. भरद्वाज जी व याज्ञवल्क्यजी के बीच संवाद

(दोहा 44 से दोहा 47)

तुलसीदास जी कहते हैं कि जैसे सरोवर में चार घाट होते हैं वैसे श्रीरामचरितमानस में चार संवाद हैं, चार श्रोता हैं व चार वक्ता हैं। प्रथम घाट में तुलसीदासजी की कथा चल रही है, श्रोता सज्जन लोग हैं, स्थान अयोध्या है। इस प्रसंग में दूसरे घाट की कथा प्रारंभ होती है जिसमें वक्ता याज्ञवल्क्य मुनि हैं, श्रोता भरद्वाज मुनि हैं और स्थान है तीर्थराज प्रयाग। श्रीराम कथा के पहले याज्ञवल्क्य मुनि शिव-पार्वती कथा भरद्वाज मुनि को सुनाते हैं।

मन को रामकथा के जल में पहले स्नान कराते हैं

मति अनुहारि सुबारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ ।
सुमिरि भवानी संकरहि कह कबि कथा सुहाइ ॥दोहा 43 क॥

मति अनुहारि = अपनी बुद्धि के अनुसार, *सुबारि गुन* = जल के गुणों के समान रामकथा के गुणों को, *गन गनि* = देखकर, *मन अन्हवाइ* = अपने मन को उसमें स्नान करा करके, *सुमिरि भवानी संकरहि* = पार्वती जी व शंकर जी का स्मरण करके, *कह कबि कथा सुहाइ* = यह कवि यानि तुलसीदास जी इस सुंदर कथा को कहते हैं।

अब रघुपति पद पंकरुह हियँ धरि पाइ प्रसाद ।
कहउँ जुगल मुनिबर्य कर मिलन सुभग संबाद ॥दोहा 43 ख॥

अब रघुपति पद पंकरुह = अब मैं श्रीराम के चरण कमलों को, *हियँ धरि* = हृदय में धारण कर, *पाइ प्रसाद* = और उनका प्रसाद पाकर, *कहउँ जुगल मुनिबर्य कर* = दोनों श्रेष्ठ मुनियों के, *मिलन सुभग संबाद* = मिलन का सुंदर संवाद वर्णन करता हूँ।

तुलसीदास जी कहते हैं हमने रामकथा रूपी जल के सुंदर गुणों को देखकर अपने मन को उसमें स्नान कराकर मन को शांत, स्वच्छ बना लिया। वे कहना चाहते हैं कि हम कलुषित मन से, कलियुग से थककर, ठगे होकर यह कथा नहीं कह रहे हैं। हमने अपनी बुद्धि को बार-बार श्रीराम कथा का स्मरण कर निर्मल बनाया है, मन शांत हुआ है, प्रभु राम की भक्ति प्राप्त हुई है, तब हम यह कथा सुना रहे हैं। जैसे हमारा मन वैसे तुलसीदास जी का मन। जब वे अपने मन को कथा में डुबोकर अच्छा कर सकते हैं तो हम क्यों नहीं कर सकते? हमें इस पर गंभीरता से सोचना चाहिये। कितना सरल उपाय है, कथा सुनो मन साफ होगा।

शिव-पार्वती व राम स्मरण कर कथा प्रारंभ

अब पार्वती जी व शंकर जी को स्मरण करके, श्रीराम के चरण कमलों को अपने हृदय में धारण करके, उनकी कृपा प्राप्त करके कथा प्रारंभ करते हैं। दोनों मुनियों यानि भरद्वाज जी एवं याज्ञवल्क्यजी आपस में कैसे मिले, और उनके बीच श्रेष्ठ संवाद कैसे चला, इस प्रसंग से कथा प्रारंभ करते हैं।

भरद्वाज मुनि का परिचय: राम में अत्यंत प्रेम

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहि राम पद अति अनुरागा ॥44:1॥
तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना ॥44:2॥

भरद्वाज मुनि = मुनि भरद्वाज, *बसहिं प्रयागा* = प्रयाग में रहते हैं, *तिन्हहि राम पद अति अनुरागा* = उन्हें श्रीरामजी के चरणों में बहुत प्रेम है, *तापस* = वे तपस्वी हैं, *सम दम दया निधाना* = सम-दम में निपुण व दया के निधान हैं, *परमारथ पथ परम सुजाना* = ज्ञान के मार्ग में बड़े ही चतुर हैं।

यहाँ से तुलसीदास जी मानस के दूसरे घाट की कथा प्रारंभ करते हैं। इसमें भरद्वाज मुनि व याज्ञवल्क्य मुनि के बीच क्या संवाद होता है, उसका विस्तृत

वर्णन है। पहले भरद्वाज मुनि का परिचय देते हैं। वे प्रयाग में रहते हैं। भरद्वाज मुनि के हृदय में श्रीराम के चरणों में अत्यंत प्रेम है। इसी प्रकार श्रोता के हृदय में भी श्रीराम के प्रति बड़ा प्रेम होना चाहिये, तभी कथा में आनंद आयेगा और वह फलदायी होगी।

भरद्वाज मुनि कर्मयोगी व ज्ञानयोगी भी, ज्ञानी भी कथा सुनें

वे व्यावहारिक जीवन में कर्म में निपुण थे, बहुत तपस्वी थे। शरीर, मन व इन्द्रियों के द्वारा अपनी शक्तियों को संचय करते थे और इनका प्रयोग जनकल्याण के लिये करते थे, इसलिये कर्मयोगी थे। ज्ञान के मार्ग में भी बड़े चतुर थे इस प्रकार वे ज्ञान योगी भी थे। कहते हैं कर्म में व्यस्त व्यक्ति व ज्ञानी को भी कथा सुननी चाहिये।

माघ माह में प्रयागराज में मेला

माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथपतिहिं आव सब कोई ॥44:3॥
देव दनुज किंनर नर श्रेनीं। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं ॥44:4॥

माघ = माघ माह में, *मकरगत रबि जब होई* = सूर्य जब मकर राशि में जाता है, *तीरथपतिहिं* = तीर्थों के राजा प्रयाग में, *आव सब कोई* = सब लोग आते हैं, *देव दनुज किंनर नर श्रेनीं* = देवता; दैत्य; किन्नर; मनुष्यों के समूह, *सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं* = सब आदरपूर्वक त्रिवेणी में स्नान करते हैं।

माघ के महीने में प्रयागराज में मेला होता है, इसमें समाज के सभी श्रेणी के जीव आते हैं। चार प्रकार के जीवों के नाम लेते हैं। 1. देव– जो जीवन में खूब धन संपदा से विभूषित हों, धर्माचरण करें, दूसरों का उपकार करें, स्वयं भी सुख भोगें दूसरों को भी सुखी करें। 2. दनुज– जो व्यक्ति स्वार्थी हैं, विषयी हैं, दूसरों को हानि पहुँचाने में ही सुख पाते हैं। 3. किन्नर– जो व्यक्ति संगीत, नृत्य आदि कलाओं में प्रवीण हों। 4. नर– जो दूसरों को बिना हानि पहुँचाये अपने भौतिक सुखों में लिप्त रहते हैं। ये सभी बहुत उत्साह व आदर से माघ महीने में गंगा जी, यमुना जी व सरस्वती जी, तीनों नदियों के संगम स्थल जिसे त्रिवेणी कहते हैं में स्नान करने आते हैं।

वेणी माधव व अक्षय वट की पूजा

पूजहिं माधव पद जलजाता। परसि अखय बटु हरषहिं गाता ॥44:5॥

पूजहिं माधव पद जलजाता = श्री वेणी माधवजी के चरण कमलों को पूजते हैं, *परसि अखय बटु* = अक्षय वट को स्पर्श करते हैं, *हरषहिं गाता* = बड़े हर्ष के साथ।

स्नान के बाद वेणी माधव मंदिर जाते हैं जहाँ वेणी माधव के चरणों को भगवान का प्रतीक मानकर बड़ी श्रद्धा से पूजा करते हैं। इसके बाद तीर्थयात्री अक्षय वट जाते हैं जो सदा एक सा रहता है, कभी नष्ट नहीं होता, इसको स्पर्श करते हैं, उसी से पाप दूर होते हैं। यह अक्षयवट प्रलयकाल में भी बना रहता है, कभी नष्ट नहीं होता है।

आश्रम में ऋषि-मुनियों का समागम व स्नान

भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिबर मन भावन ॥44:6॥
तहाँ होई मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथ राजा ॥44:7॥
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परसपर हरि गुन गाहा ॥44:8॥

भरद्वाज आश्रम = प्रयागराज में भरद्वाज मुनि का आश्रम है, *अति पावन* = यह बहुत पवित्र है, *परम रम्य* = यह अत्यंत सुंदर है, *मुनिबर मन भावन* = मुनियों के मन को मनोहर लगता है, *तहाँ होई मुनि रिषय समाजा* = यहाँ पर ऋषियों का समाज जुड़ता है, *जाहिं जे मज्जन तीरथ राजा* = जो प्रयाग में स्नान के लिये जाते हैं, *मज्जहिं प्रात समेत उछाहा* = सुबह सब उत्साहपूर्वक स्नान करते हैं, *कहहिं परसपर हरि गुन गाहा* = फिर परस्पर भगवान के गुणों की कथायें कहते हैं।

प्रयागराज में भरद्वाज मुनि का अत्यंत सुंदर व पवित्र आश्रम है, जो मुनियों को बहुत भाता है। इस आश्रम में माघ में ऋषि-मुनि एकत्रित होते हैं, भरद्वाज मुनि बड़े प्रेम से सबके रुकने व भोजन की व्यवस्था करते हैं। प्रातःकाल बड़े सबेरे ही सब लोग उठते हैं व बड़े उत्साह के साथ त्रिवेणी में स्नान करके आश्रम आकर सत्संग करते हैं। उस समय गंगा जी उनके आश्रम के पास ही बहती थी।

आश्रम में ब्रह्म, तत्त्व, भक्ति, ज्ञान व वैराग्य पर चर्चा

ब्रह्म निरूपन धरम बिधि बरनहिं तत्व बिभाग ।
कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग ॥दोहा 44॥

ब्रह्म निरूपन= ब्रह्म का निरूपण, *धरम बिधि*= धर्म का विधान, *बरनहिं तत्व बिभाग*= और तत्त्वों के विभागों का वर्णन करते हैं, *कहहिं भगति भगवंत कै*= भगवान की भक्ति का वर्णन करते हैं, *संजुत ग्यान बिराग*= जो ज्ञान व वैराग्य से युक्त रहती है।

यहाँ सांसारिक बातें नहीं होती हैं। कोई परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान का उपदेश देता है। कोई धर्म के नियम, उसका स्वरूप, धर्म पालन के फल की चर्चा करता है। कहीं 24 तत्त्वों की बातें होती हैं, उनका विवेचन होता है। कहीं पर भक्ति के साथ ज्ञान व वैराग्य का भी वर्णन होता है। इस प्रकार आश्रम का पूरा वातावरण आध्यात्मिक बना रहता है। सच्ची भक्ति वही है जो ज्ञान व वैराग्य से युक्त हो। भक्ति हृदय का एक विशेष भाव है जहाँ भगवान के प्रति प्रेम हो जाता है। आश्रम में भक्ति कैसे मिले, भक्ति का क्या आनंद है आदि का निरूपण किया जाता है।

ग्यारह माह घर में रहें, एक माह आश्रम में

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं ॥45:1॥
प्रति संबत अति होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा ॥45:2॥

एहि प्रकार= इस प्रकार से, *भरि माघ नहाहीं*= पूरे माघ के महीने स्नान करते हैं, *पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं*= फिर सब लोग अपने-अपने आश्रम चले जाते हैं, *प्रति संबत*= हर वर्ष, *अति होइ अनंदा*= वहाँ इसी तरह बहुत आनंद होता है, *मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा*= मकर में स्नान करके मुनिगण चले जाते हैं।

प्राचीनकाल में ऐसी व्यवस्था थी कि लोग साल में एक माह प्रयागराज में संयमपूर्वक रहते हुए भगवान की कथा सुनें, वेदांत सुनें, भक्ति व ज्ञान की बातें करें व अपने मन को शुद्ध करके घर जायें। फिर उसी भक्ति भाव को धारण

किये हुए अपने गृह कार्य करें। इस प्रकार व्यक्ति के भौतिक जीवन के ऊपर आध्यात्मिक जीवन का अंकुश लगा रहता है। हर साल का यही नियम है।

माघ मेला के बाद भरद्वाज जी याज्ञवल्क्य जी को रोक लेते हैं

एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए ॥45:3॥
जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी ॥45:4॥

एक बार भरि मकर नहाए = एक बार पूरे मकर माह स्नान करके, *सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए* = सब मुनि लोग अपने अपने आश्रम चल गये, *जागबलिक मुनि* = मुनि याज्ञवल्क्यजी, *परम बिबेकी* = जो बड़े ज्ञानवान् हैं, *भरद्वाज राखे पद टेकी* = उन्हें भरद्वाज मुनि ने चरण पकड़कर रोक लिया।

एक बार पूरे माघ माह का स्नान करके सब मुनि लोग अपने-अपने आश्रम को लौट गये। याज्ञवल्क्यजी जो परम ज्ञानी हैं, वे भी माघ स्नान के लिये भरद्वाज आश्रम आये थे व पूरे माह वहाँ रहे। माघ समाप्ति पर जब वे भी जाने लगे तो भरद्वाज मुनि ने बड़ी विनम्रता के साथ चरण पकड़कर उन्हें रोक लिया कि अभी आप मत जाइये।

याज्ञवल्क्य ऋषि की पूजा करके उन्हें आसन पर बैठाते हैं

सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे ॥45:5॥
करि पूजा मुनि सुजसु बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी ॥45:6॥

सादर चरन सरोज पखारे = आदर पूर्वक उनके चरण कमल धोये, *अति पुनीत आसन बैठारे* = और बड़े ही पवित्र आसन पर बैठाया, *करि पूजा* = उनकी पूजा की, *मुनि सुजसु बखानी* = याज्ञवल्क्यजी के यश का वर्णन किया, *बोले अति पुनीत मृदु बानी* = फिर भरद्वाज जी अत्यंत पवित्र व कोमल वाणी में बोले।

भरद्वाज जी ने बहुत ही आदरपूर्वक उनके चरण कमलों को धोया और उन्हें अत्यंत पवित्र ऊँचे आसन पर बैठाया। उन्हें माला पहनायी, तिलक, अक्षत लगाया, आरती की और उनके यश का वर्णन किया। फिर भरद्वाजजी ने बड़ी सच्चाई और अत्यंत मृदुता के साथ याज्ञवल्क्य ऋषि से अपनी बात कही।

याज्ञवल्क्यजी महान् वैदिक ऋषि हैं

नाथ एक संसउ बड़ मोरें। करगत बेदतत्व सबु तोरें ॥45:7॥

नाथ एक संसउ बड़ मोरें = हे नाथ! मेरे मन में एक बड़ा संदेह है, *करगत बेदतत्व सबु तोरें* = हाथ में रखे आंवले की तरह वेदों का तत्त्व आपको स्पष्ट दिखाई देता है।

भरद्वाज मुनि ने याज्ञवल्क्य जी को इसलिये रोका कि वे उनकी महिमा से भलिभाँति परिचित थे। उन्हें पता था कि ये वैदिक ऋषि हैं, वेदमंत्रों के उद्गाता हैं। उन्होंने कठिन तपस्या करके सूर्य भगवान को प्रसन्न कर उनसे यजुर्वेद के अत्यंत रहस्यमय व अनोखे मंत्रों का ज्ञान प्राप्त किया है। यह ज्ञान बृहदारण्यक उपनिषद् कहलाता है। भरद्वाज जी कहते हैं कि जैसे हाथ में रखा आँवले का फल एकदम स्पष्ट दिखाई देता है उसी प्रकार आपको समस्त वेद तत्त्व स्पष्ट दिखाई देते हैं। आपसे कुछ छिपा नहीं है। अध्यात्म विद्या, परमात्म विद्या आपको अपनी दिव्य दृष्टि से दिखाई देती है। आप ऐसे ज्ञाननिधान हैं, इसलिये आपके सामने हम अपना संशय प्रकट करते हैं।

मन मे भय व लज्जा हो तो भी प्रश्न पूछकर संशय दूर करें

कहत सो मोहि लागत भय लाजा। जौं न कहउँ बड़ होइ अकाजा ॥45:8॥

कहत सो मोहि लागत भय लाजा = उसे कहने में मुझे भय व लज्जा आती है, *जौं न कहउँ* = यदि नहीं कहता हूँ, *बड़ होइ अकाजा* = तो बहुत हानि होती है।

भरद्वाज मुनि कहते हैं कि प्रश्न पूछते हुए मुझे भय इस बात का है कि कहीं यह न समझा जाये कि मैं आपकी परीक्षा ले रहा हूँ। लज्जा इस बात की है कि यह समझा जायेगा कि इस उम्र तक तो इन्हें सब ज्ञान स्पष्ट हो जाना चाहिये, परंतु हुआ नहीं है। तात्पर्य है कि यदि व्यक्ति को भय व शर्म भी लगे तो भी संशय दूर करने के लिये प्रश्न पूछें। कहते हैं कि प्रश्न नहीं पूछेंगे तो बड़ा नुकसान होगा, संशय न प्रकट करने से अध्यात्म मार्ग में आगे प्रगति नहीं होती, ज्ञान का प्रकाश हृदय में नहीं आता।

गुरु से बात छिपाने से ज्ञान नहीं मिलता है

संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव ।
होइ न बिमल बिबेक उर गुर सन किएँ दुराव ॥दोहा 45॥

संत कहहिं असि नीति प्रभु = हे प्रभु! संत लोग ऐसी नीति कहते हैं, *श्रुति पुरान मुनि गाव* = वेद; पुराण व मुनिजन भी यही बतलाते हैं कि, *होइ न बिमल बिबेक उर* = हृदय में निर्मल ज्ञान नहीं आता है, *गुर सन किएँ दुराव* = गुरु से बात को छिपाने में।

यहाँ पर सिद्धान्त बता देते हैं कि श्रुति, पुराण और संतों का यही मत है कि गुरु से अपनी बात छिपाओगे, संशय को निवृत्त नहीं करोगे तो हृदय में जैसा निर्मल ज्ञान होना चाहिये वैसा नहीं होगा। उस ज्ञान को संशय आच्छादित किये रहेगा।

संशय निवारण की विनती

अस बिचारि प्रगटऊँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू ॥46:1॥

अस बिचारि = यही सोचकर, *प्रगटऊँ निज मोहू* = मैं अपना मोह प्रकट कर रहा हूँ, *हरहु नाथ करि जन पर छोहू* = हे नाथ! सेवक पर कृपा करके इस मोह को दूर कीजिये।

भरद्वाज जी, याज्ञवल्क्य जी को गुरु मानकर अपने संशय को प्रकट करते हैं। यहाँ संशय की जगह मोह शब्द का प्रयोग किया है। मोह मायने परमात्मा का ज्ञान न होना, व्यक्ति विषयों को ही सत्य समझता है। इसलिये विनती करते हैं कि हमारे मोह को दूर करें जिससे हमें सत्य का ज्ञान हो जाये।

प्रश्न पूछने का तरीका

रामचरितमानस में व्यवहार करने के तरीके भी बताये गये हैं। यदि आप किसी से शंका समाधान के लिये प्रश्न करना चाहते हैं, तो पहले उनका सम्मान करें, पूजा करें, उनके यश की चर्चा करें। उसके बाद बहुत दीनता से, विनम्रता से प्रश्न पूछें। प्रश्न करते समय अहंकार भाव नहीं होना चाहिये।

श्रीराम नाम महिमा का वर्णन

राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा ॥46:2॥
संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी ॥46:3॥
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं ॥46:4॥
सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेसु करत करि दाया ॥46:5॥

राम नाम कर अमित प्रभावा = रामनाम के असीम प्रभाव को, *संत पुरान उपनिषद गावा* = संतों, पुराणों और उपनिषदों ने गाया है, *संतत जपत* = रामनाम का निरंतर जप करते हैं, *संभु अबिनासी* = अविनाशी भगवान शंभु, *सिव भगवान ग्यान गुन रासी* = कल्याण स्वरूप; ज्ञान व गुणों की राशि भगवान शिव, *आकर चारि जीव जग अहहीं* = संसार में चार जाति के जीव हैं, *कासीं मरत परम पद लहहीं* = काशी में मरने से सभी परम पद को प्राप्त होते हैं, *सोपि* = वह भी, *राम महिमा मुनिराया* = हे मुनिराज! राम की ही महिमा है, *सिव उपदेसु करत करि दाया* = जिसे शिवजी दया करके काशी में उपदेश देते हैं।

भरद्वाज जी कहते हैं कि राम की तो महिमा है ही, उनके नाम की भी बड़ी महिमा गायी गयी है। शंकर जी जैसे महान् देव भी राम नाम निरंतर जपा करते हैं। राम नाम इतना महिमावान् है कि जपने से ही कल्याण हो जाता है। मनुष्य की तो बात ही क्या, संसार के चारों प्रकार के जीव जिनमें कीड़े-मकोड़े, पक्षी, पेड़, पौधे इत्यादि शामिल हैं, वे भी यदि काशी में शरीर छोड़ते हैं तो उन्हें परमपद प्राप्त हो जाता है। उसमें काशी की महिमा नहीं है, राम नाम की ही महिमा है क्योंकि शंकर जी दया करके काशी में रहने वाले जीवों को राम नाम सुनाते हैं तब उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है।

संशय: क्या दशरथ पुत्र राम की ही महिमा गायी गयी है?

रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही ॥46:6॥
एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा ॥46:7॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा ॥46:8॥

प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि ।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि ॥दोहा 46॥

रामु कवन = कौन से राम हैं, *प्रभु पूछउँ तोही* = हे प्रभु! मैं आपसे पूछता हूँ, *कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही* = हे कृपानिधान! मुझे समझाकर कहिये, *एक राम अवधेस कुमारा* = एक राम तो अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र हैं, *तिन्ह कर चरित बिदित संसारा* = उनका चरित्र संसार जानता है, *नारि बिरहँ* = उन्होंने स्त्री के विरह में, *दुखु लहेउ अपारा* = बहुत दु:ख उठाया, *भयउ रोषु* = और उन्हें क्रोध आया, *रन रावनु मारा* = युद्ध में रावण को मार दिया।
प्रभु सोइ राम कि = हे प्रभु! ये वही राम हैं, *अपर कोउ* = कि दूसरे राम हैं, *जाहि जपत त्रिपुरारि* = जिन्हें शंकर जी जपते हैं, *सत्यधाम* = आप सत्य के धाम हैं, *सर्बग्य तुम्ह* = आप सब जानते हैं, *कहहु बिबेकु बिचारि* = ज्ञान विचारकर कहिये।

भरद्वाज मुनि के मन में राम जी के दो रूप हैं:
1. राम जो परब्रह्म का नाम है।
2. राम जो दशरथ पुत्र हैं। दो रूपों के कारण मन में संशय उत्पन्न हो रहा है, संशय का कारण है कि दशरथ पुत्र राम के चरित्र में कुछ दोष हैं। चरित्र शब्द इस प्रकार कहा गया है, मानों चरित्र में कुछ कमी है। यहाँ शंका के दो कारण हैं:
1. दशरथ पुत्र राम की स्त्री का हरण हो गया, उसके विरह में वे बहुत दु:खी हैं। जो स्वयं ही मोहजाल में फँसा हो, उसका नाम लेकर कोई कैसे मोहजाल से छूट सकता है?
2. जब दशरथ पुत्र राम को पता चला कि उनकी स्त्री को रावण ले गया है, तो उन्हें बहुत क्रोध आया। उन्होंने युद्ध करके रावण को मार डाला। इस प्रकार उनमें काम, क्रोध, हिंसा आदि विकार हैं।

इतना कहने के बाद अब भरद्वाज जी सीधा प्रश्न करते हैं कि हे याज्ञवल्क्य जी, आप कृपया विचार करके बताइये कि क्या ये दशरथ पुत्र राम ही हैं जिनका चरित्र इस प्रकार गाया गया है, जिन्हें, भगवान शंकर सदा जपा करते हैं? या अन्य कोई राम है?

शिवजी तीन पुरों से मुक्त कराते हैं, अतः त्रिपुरारि हैं

हमारे तीन शरीर हैं जिन्हें पुर कहते हैं–1. स्थूल शरीर 2. सूक्ष्म शरीर 3. कारण शरीर। इन्हीं तीनों शरीरों के संपर्क के कारण हम 24 घंटे भटकते रहते

हैं। कभी स्थूल शरीर से संपर्क करके जागृत अवस्था वाले पुर में रहते हैं, कभी सूक्ष्म शरीर के संपर्क के कारण स्वप्न अवस्था में रहते हैं तो कभी कारण शरीर की वजह से सुषुप्ति अवस्था में। इन तीनों शरीरों से मुक्त कराकर परब्रह्म का ज्ञान कराने वाले भोलेनाथ शंकर जी हैं। इसलिये ये त्रिपुरारि कहलाते हैं।

राम के संबंध में अनेक प्रश्नों का समाधान मानस में है

जैसें मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी ॥47:1॥

जैसें मिटै = जिस प्रकार से मिट जाये, *मोर भ्रम भारी* = मेरा यह भारी भ्रम, *कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी* = वही कथा विस्तार से सुनाइये।

भरद्वाज जी याज्ञवल्क्यजी से कहते हैं कि हे प्रभु जिस प्रकार से हमारा बड़ा भारी मोह और भ्रम मिट जाये वह बात विस्तार से समझाकर कहिये। राम के चरित्र के बारे में अनेक प्रश्नों को तुलसीदास जी ने कथा प्रारंभ करने के पूर्व ही भरद्वाज जी के मुख से, पार्वती जी के मुख से व गरुड़ जी के मुख से रखा है। उन सब प्रश्नों का समाधान भी दिया है। व्यक्ति यदि ध्यान पूर्वक श्रीरामचरितमानस का पाठ करे तो उसे सभी तरह के प्रश्नों का समाधान मिल जायेगा। फिर भी यदि कुछ प्रश्न रह जायें तो सद्‌गुरु के पास जाकर श्रद्धापूर्वक उनसे पूछें।

ज्ञानी भी अज्ञानी की तरह रामकथा सुनें

जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई ॥47:2॥
रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी ॥47:3॥
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा ॥47:4॥

जागबलिक बोले मुसुकाई = याज्ञवल्क्यजी मुस्कुराकर बोले, *तुम्हहि बिदित* = तुम जानते हो, *रघुपति प्रभुताई* = श्रीरघुनाथजी की प्रभुता को, *रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी* = तुम मन; वचन व कर्म से राम के भक्त हो, *चतुराई तुम्हारि मैं जानी* = तुम्हारी चतुराई को मैं जान गया, *चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा* = तुम रामजी के रहस्यमय गुणों को सुनना चाहते हो, *कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा* = इसी से तुमने ऐसा प्रश्न किया मानो तुम कुछ जानते ही न हो।

याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जी का प्रश्न सुनकर मस्कुराये। वे बोले तुम्हें तो राम की प्रभुता पता है, श्रीराम कैसे हैं, क्या हैं तुम्हें सब पता है। तुम मन, वाणी व कर्म से उनके भक्त हो। तुम जो प्रश्न कर रहे हो यह तुम्हारी चतुराई है। असल में तुम राम जी के गूढ़ रहस्यमय चरित्रों को सुनना चाहते हो और प्रश्न ऐसे किया जैसे कुछ जानते ही न हो। यहाँ पर तुलसीदासजी बता रहे हैं कि अज्ञानी को अपने संदेहों का निवारण तो करना ही चाहिये परंतु ज्ञानवान को भी भगवान के चरित्र सदा सुनते रहना चाहिये। भरद्वाज जी इस कथा को नित्य सुनना चाहते हैं इसलिये कहते हैं हमें विस्तार से सब बताइये। प्रभु राम भी सब जानते हैं पर वशिष्ठ जी से नियमित वेद पुराण आदि सुनते हैं। इसी प्रकार हमें भी शास्त्रों के श्रवण-अध्ययन को दैनिक जीवन का एक अंग बनाना चाहिये।

महिमा कहकर याज्ञवल्क्यजी कथा प्रारंभ करते हैं

तात सुनहु सादर मनु लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई ॥47:5॥
महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला ॥47:6॥
रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना ॥47:7॥

तात सुनहु सादर मनु लाई = हे तात तुम आदर पूर्वक; मन लगाकर सुनो, *कहउँ राम कै कथा सुहाई* = मैं श्रीराम की सुंदर कथा को तुम्हें सुनाता हूँ, *महामोहु* = बड़ा भारी अज्ञान, *महिषेसु बिसाला* = महिषासुर नामक राक्षस के समान विशाल है, *रामकथा कालिका कराला* = रामकथा काली देवी के समान शक्तिशाली है, *रामकथा ससि किरन समाना* = रामकथा चन्द्रमा की किरणों के समान है, *संत चकोर* = सज्जन चकोर के समान हैं, *करहिं जेहि पाना* = जो इसका रस पीना चाहते हैं।

यह नियम है कि कथा प्रारंभ करने से पूर्व उसकी महिमा कही जाती है, तभी पूरा लाभ मिलता है। याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि व्यक्ति का बड़ा भारी अज्ञान महिसाषुर नामक राक्षस के समान बहुत विशाल है और रामकथा उस महिषासुर का वध करने के लिये कालीजी के समान सामर्थ्यवान है। फिर कहते हैं रामकथा चन्द्रमा की किरणों की तरह मधुर व शीतल है और सज्जन लोगों को इसे सुनने से वही प्रसन्नता व आनंद मिलता है जो चकोर पक्षी को चन्द्र किरणों से मिलता है।

रामकथा के पहले शिव-पार्वती कथा

ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी ॥47:8॥

कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद ।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद ॥दोहा 47॥

ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी = ऐसा ही संदेह पार्वती जी ने किया था, *महादेव तब कहा बखानी* = तब शंकर जी ने विस्तार से समझाया था।
उमा संभु संबाद = शंकर जी व पार्वतीजी के बीच जो संवाद हुआ, *कहउँ सो मति अनुहारि अब* = उसे अब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सुनाता हूँ, *भयउ समय जेहि हेतु* = वह जिस समय व जिस हेतु हुआ, *जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद* = उसे सुनकर हे मुनि तुम्हारा विषाद मिट जायेगा।

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि ऐसे ही प्रश्न जब पार्वती जी ने शंकर जी से किये थे, तो शंकर जी ने जो उत्तर दिये वे बहुत महान् होंगे, परंतु हमारी बुद्धि में जो कुछ भी आये वह हम तुम्हें सुनायेंगे। अध्यात्म शास्त्र की यह परंपरा है कि जब कोई प्रश्न करता है तो उत्तर देने वाला अहंकार पूर्वक यह नहीं कहता कि मैं उत्तर देता हूँ। यहाँ पर तुलसीदास जी निरहंकारिता पूर्वक कहते हैं कि याज्ञवल्क्य जी ने जो कथा सुनाई वही हम कहेंगे, याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि शंकर जी ने जो कथा सुनाई वही हम कहेंगे, कागभुसुंडि जी कहते हैं लोमष ऋषि से प्राप्त कथा को हम सुनाते हैं।

2. शंकर जी सती के साथ अगस्त्य ऋषि के आश्रम में

(दोहा 48)
शंकर जी से जब प्रेम है तभी राम की कथा में मन लगता है, अत: रामकथा के पहले शंकर-पार्वती की कथा कहते हैं। यहाँ से शिव पार्वती कथा प्रारंभ करते हैं। शंकर जी एक बार सती जी के साथ अगस्त्य ऋषि के आश्रम में जाकर रामकथा कहते व सुनते हैं। कथा सुनकर वे वापस सती के साथ कैलास की ओर चलते हैं।

शंकर जी सती जी के साथ अगस्त्य ऋषि के यहाँ जाते हैं

एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गये कुंभज रिषि पाहीं ॥48:1॥
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी ॥48:2॥

एक बार त्रेता जुग माहीं = एक बार त्रेता युग में, *संभु गये* = शंकर जी जाते हैं, *कुंभज रिषि पाहीं* = अगस्त्य ऋषि के पास, *संग सती* = शंकर जी के साथ सती जी थीं, *जगजननि भवानी* = वे जगत जननी हैं व शंकर जी की पत्नी हैं, *पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी* = अगस्त्य ऋषि ने शंकर जी को समस्त जगत का स्वामी समझकर पूजा की।

प्रभु राम तो हर कल्प में त्रेता युग में अवतार लेते हैं। यहाँ पर एक बार का अर्थ है कि एक कल्प में जब त्रेता युग आया तो शंकर जी सती जी के साथ कैलास पर्वत से दंडक वन में अगस्त्य मुनि के आश्रम गये। मुनि ने शंकर जी का समस्त जगत के स्वामी के रूप में पूजन किया।

शंकर जी ने अगस्त्य ऋषि से रामकथा सुनी

रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी ॥48:3॥

रामकथा मुनिबर्ज बखानी = मुनिवर अगस्त्य जी ने राम कथा सुनायी, *सुनी महेस परम सुखु मानी* = कथा सुनकर शंकर जी बहुत प्रसन्न हुए।

अगस्त्य ऋषि ने रामकथा सुनाई और यह कथा सुनकर शंकर जी बहुत सुखी हुए। सतीजी भी उनके साथ गईं जरूर पर उन्होंने न कथा सुनी न प्रसन्न हुईं। उन्हें ज्ञान-भक्ति की बातों में रुचि नहीं आई। जितने दिन कथा चली सती जी आश्रम के विस्तृत प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण आश्रम में घूमती रहीं। कथा शंकर जी ने सुनी व उन्हें सुख मिला।

अगस्त्य ऋषि को शंकर जी ने भक्ति की महिमा सुनाई

रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई ॥48:4॥
कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा ॥48:5॥

रिषि पूछी हरिभगति सुहाई = अगस्त्य जी ने शंकर जी से राम जी की सुंदर भक्ति के बारे में पूछा, *कही संभु अधिकारी पाई* = शंकर जी ने ऋषि को योग्य समझकर भक्ति के बारे में बताया, *कहत सुनत रघुपति गुन गाथा* = राम जी के गुणों की कथा कहते व सुनते हुए, *कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा* = कुछ दिनों तक शंकर जी वहाँ रहे।

अगस्त्य ऋषि ज्ञान निधान हैं, उन्होंने ज्ञानस्वरूप राम की पूरी कथा शंकर जी को सुनाने के बाद उनसे पूछा हे प्रभो शंकर, हमें कृपा करके राम की सुंदर भक्ति के बारे में बताइये। शंकर जी ने उन्हें अधिकारी पाकर रामजी की भक्ति के बारे में सब बतलाया। कुछ दिनों तक इस प्रकार ज्ञान व भक्ति का सत्संग चला।

ऋषि से विदा ले शंकर जी कैलास की तरफ चलते हैं

मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी ॥48:6॥

मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी = फिर शिव जी मुनि से विदा माँगकर के, *चले भवन सँग दच्छकुमारी* = दक्ष की पुत्री सती के साथ कैलास की तरफ चल दिये।

कुछ दिन सत्संग चलने के बाद शंकर जी ने ऋषि से विदा माँगी, अगस्त्य ऋषि ने कृतज्ञता व्यक्त करते हुए शंकर जी को जाने की आज्ञा दी। वे सती के साथ कैलास की तरफ चलने लगे। इस प्रसंग से पता चलता है कि सती जी शंकर जी के साथ आईं व उन्हीं के साथ चल दीं। उन्होंने कथा नहीं सुनी।

3. वापसी में राम के दर्शन, दूर से प्रणाम करते हैं

(दोहा 49, 50)

जब शंकर जी कैलास की तरफ जा रहे थे, उसी समय उनके इष्ट प्रभु राम महाराज दशरथ के यहाँ अवतार लेकर दंडक वन में सीता हरण के बाद वियोग की लीला कर रहे थे। शंकर जी के मन में तीव्र लालसा थी कि उनका दर्शन हो जाये। प्रभु राम दिशा बदलकर दर्शन देते हैं। शंकर जी दूर से ही उन्हें जय सच्चिदानंद कहकर प्रणाम करते हैं।

प्रभु राम ने उसी समय अवतार लिया था

तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा ॥48:7॥

तेहि अवसर = उन्हीं दिनों, *भंजन महिभारा* = पृथ्वी का भार दूर करने के लिये, *हरि* = राम ने, *रघुबंस* = रघुकुल में, *लीन्ह अवतारा* = अवतार लिया था।

उन्हीं दिनों जब त्रेता युग में अगस्त्य ऋषि व शंकर जी का सत्संग चल रहा था, पृथ्वी का भार हरने के लिये राम ने रघुवंश में अवतार लिया था। जब लोग दुराचार में अधिक प्रवृत्त हो जाते हैं, पापकर्म बढ़ जाते हैं, उसे ही पृथ्वी का भार कहते हैं, उसे हरने के लिये भगवान अवतार लेते हैं इसलिये हरि कहलाते हैं।

प्रभु राम दण्डक वन में घूम रहे थे

पिता बचन तजि राजु उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी ॥48:8॥

पिता बचन = पिता की आज्ञा मानकर, *तजि राजु* = राज्य का त्याग करके, *उदासी* = तपस्वी के वेश में, *दंडक बन* = दंडक वन में, *बिचरत* = घूम रहे थे, *अबिनासी* = कभी नष्ट न होने वाले राम।

पिता की आज्ञा मानकर श्रीराम अयोध्या का राज्य छोड़कर लक्ष्मण जी व सीता जी के साथ वन में चले गये। यात्रा करते-करते दंडक वन में पहुँचे। यहाँ पर राम जी के लिये *'अबिनासी'* शब्द का प्रयोग करके तुलसीदास जी बता रहे हैं कि श्रीराम अनादि-अनंत तो पहले से हैं ही, अवतार लेने के बाद भी वे नाशवान् नहीं।

शंकर जी के मन में राम के दर्शन की इच्छा

हृदयँ बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ ॥दोहा 48 क॥

हृदयँ बिचारत जात हर = मन में सोचते हुए शंकर जी जा रहे थे, *केहि बिधि* = किस प्रकार से, *दरसनु होइ* = प्रभु राम के दर्शन हों, *गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु* = अपने को छिपा करके प्रभु ने अवतार लिया है, *गएँ* = मेरे जाने से, *जान सबु कोइ* = सब लोगों को यह पता चल जायेगा।

संकर उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ ।
तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची ॥सोरठा 48 ख॥

संकर उर = शंकर जी के हृदय में, *अति छोभु* = अत्यंत क्षोभ था, *सती न जानहिं* = परंतु सतीजी को पता नहीं था, *मरमु सोइ* = यह भेद, *तुलसी* =

तुलसीदासजी कहते हैं, *दरसन लोभु* = राम के दर्शन की लालसा में, *लोचन लालची* = नेत्र ललचा रहे थे, *मन डरु* = पर मन में डर था कि प्रभु राम का भेद खुल न जाये।

शंकर जी सोचते हैं इसी समय इसी वन में हमारे इष्ट राम घूम रहे हैं और किसी भी प्रकार उनके दर्शन हो जाते तो अच्छा होता। राम जी अपने ईश्वरत्व को छिपा करके मनुष्य के रूप में लीला कर रहे थे, शंकर जी को डर था हमारे मिलने से कहीं उनका गुप्त रूप प्रकट न हो जाये। यह सब सोचकर उनके मन में क्षोभ हो रहा था, सतीजी को शंकर जी के मन में चल रहे इस रहस्य का पता नहीं था। तुलसीदासजी कहते हैं कि शंकर जी के नेत्र दर्शन के लिये ललचा रहे थे और मन में डर भी था।

प्रत्येक चौपाई में शिव या राम नाम है

तुलसीदासजी की चौपाइयों व दोहों को ध्यान से समझें। प्रत्येक पंक्ति में भगवान के अनेकों नामों को पिरोया गया है। यहाँ पर शंभु, अखिलेश्वर, महेश, गिरिनाथ, त्रिपुरारी, हर इत्यादि शंकर जी के नाम हैं। राम, रघुपति, हरि, अबिनासी इत्यादि राम के नाम हैं। इसलिये चौपाइयों का यदि प्रेम से बस करते पाठ जायें तो ये मंत्र जैसे काम करती हैं।

ब्रह्मा जी का वरदान, रावण मनुष्य के हाथों मरेगा

रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा ॥49:1॥
जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा। करत बिचारु न बनत बनावा ॥49:2॥

रावन मरन = रावण ने अपनी मृत्यु, *मनुज कर* = मनुष्य के हाथ से, *जाचा* = माँगी थी, *प्रभु* = प्रभु राम, *बिधि बचनु* = ब्रह्मा जी के वरदान को, *कीन्ह चह साचा* = सच करना चाहते थे, *जौं नहिं जाउँ* = यदि मिलने नहीं जाता हूँ, *रहइ पछितावा* = तो मन में पछतावा रहेगा, *करत बिचारु* = इस प्रकार शिव जी विचार करते हैं, *न बनत बनावा* = पर कोई युक्ति सूझ नहीं रही थी।

रावण ने बहुत तपस्या करके ब्रह्मा जी से यह वरदान माँग लिया था कि उसे मनुष्य या वानरों के अतिरिक्त कोई नहीं मार सकता। रावण के अत्याचार भी

समाप्त हों और ब्रह्मा जी का वरदान भी सच हो, अत: राम ने मनुष्य रूप में अवतार लिया। शंकर जी के मन में द्वंद्व चल रहा है कि यदि प्रभु राम से नहीं मिलते तो बड़ा पछतावा रहेगा, और कोई उपाय नहीं समझ आ रहा था कि कैसे मिलें कि उनका भेद भी न खुले व दर्शन हो जाये।

उसी समय रावण दंडक वन पहुँचता है

एहि बिधि भए सोचबस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा॥49:3॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सोइ कपट कुरंगा॥49:4॥

एहि बिधि = इस प्रकार, *भए सोचबस ईसा* = शंकर जी सोच रहे हैं, *तेही समय जाइ दससीसा* = उसी समय रावण दंडक वन जाता है, *लीन्ह नीच मारीचहि संगा* = नीच मारीच को अपने साथ लेता है, *भयउ तुरत सोइ कपट कुरंगा* = मारीच तुरंत नकली हिरण बन जाता है।

भोलेनाथ यही सब सोच विचार-करते हुए दंडक वन में आगे बढ़ रहे हैं, उसी समय रावण ने नीच मारीच को अपने साथ लिया, मारीच कपट से सोने का मृग बन गया। उसे लेकर दंडक वन पहुँचा।

रावण के साथ नीच मारीच, हमारी मनोदशा भी मारीच जैसे

विश्वामित्र जी के आश्रम में यज्ञ की रक्षा करते समय राम जी ने मारीच को बिना फर का बाण मारा था तो वह जाकर समुद्र के उस पार गिरा था, उसे राम की शक्ति का पता तो चल गया था, वह नाम स्मरण तो करने लगा परंतु राम की शरण में नहीं गया। यही गलती हम भी कर बैठते हैं, भजन कीर्तन तो करते हैं पर भगवान की शरण में जाने का अभ्यास नहीं करते। मारीच की तरह हम भी प्रभु से कपट करते रहते हैं, जैसे अंत समय में मारीच के मुँह से राम नहीं निकला वैसे ही हम अंत समय में राम-राम न कह करके माया-मोह को ही जपते रहते हैं। तुलसीदास जी यहाँ पर इसलिये मारीच के लिये नीच शब्द का प्रयोग करते हैं।

राम को मनुष्य समझकर रावण ने सीता हरण किया

करि छलु मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही ॥49:5॥

करि छलु मूढ़ हरी बैदेही = धोखा देकर मूर्ख रावण ने सीता जी का हरण कर लिया, *प्रभु प्रभाउ तस* = प्रभु राम का वास्तविक प्रताप, *बिदित न तेही* = उसे पता नहीं था।

रावण ने प्रभु राम को साधारण राजकुमार समझकर सीता जी का छल से हरण कर लिया। यही मुख्य बात थी कि रावण को यह पता न चलने पाये कि दशरथ पुत्र राम ही ब्रह्म के अवतार हैं।

विरह में राम व्याकुल हो सीता की खोज कर रहे हैं

मृग बधि बंधु सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जल छाए ॥49:6॥
बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई ॥49:7॥

मृग बधि = उस हिरण को मारकर, *बंधु सहित हरि आए* = अपने भाई के साथ राम वापस आते हैं, *आश्रमु देखि* = आश्रम में सीता को नहीं देखकर, *नयन जल छाए* = नेत्रों में आँसू आ जाते हैं, *बिरह बिकल रघुराई* = राम सीता के विरह में व्याकुल हैं, *नर इव* = मनुष्य की तरह, *खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई* = वन में सीता को खोजते हुए दोनों भाई फिर रहे हैं।

मारीच वध के पश्चात् राम और लक्ष्मण आश्रम को लौटे। उन्होंने देखा आश्रम खाली है, सीता नहीं हैं। राम की आँखों में आँसू आ गये। वे मनुष्य की तरह विलाप करते विरह में व्याकुल होते हुए भाई लक्ष्मण के साथ वन में सीता को खोज रहे हैं।

राम सर्वत्र हैं, इसलिये उन्हें न तो योग है न वियोग

कबहूँ जोग बियोग न जाकें। देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें॥49:8॥

कबहूँ जोग बियोग न जाकें = जिन्हें कभी योग या वियोग नहीं है, *देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें* = उनमें प्रत्यक्ष विरह का दु:ख देखा गया।

तुलसीदास जी की विशेषता है कि एक ही चौपाई में वेदों की गूढ़ बातें कह देते हैं। संयोग और वियोगे तो निर्गुण निराकार ब्रह्म को नहीं होता है, क्योंकि

वह समस्त जगत में विद्यमान है और समस्त जगत उसी परमात्मा में ही स्थित है। वह सर्वत्र है, हर काल में है तो उससे किसी व्यक्ति या वस्तु का न कभी संयोग होने की संभावना है, न कभी वियोग होने की संभावना है। वे मनुष्य लीला कर रहे हैं इसलिये विरह में दु:खी दिखाई देते हैं।

हम लोग भी उन्हीं के अंश हैं, मनुष्य की लीला कर रहे हैं

राम सदा ज्ञानस्वरूप हैं, जिस समय वे मनुष्य शरीर धारण करके लीलायें करते हैं तो वे अपने अंतर्मन में इस बात को समझते हैं कि मैं तो अविनाशी तत्त्व परमात्मा ही हूँ, परन्तु बाह्य जगत में व्यवहार मनुष्यों की तरह कर रहा हूँ। इसी प्रकार हमें भी पता होना चाहिये कि हमारा वास्तविक स्वरूप तो सच्चिदानन्दघन ब्रह्म का ही है, हम जीव भाव धारण करके मनुष्य शरीर में हैं, इसलिये हमें जगत में मनुष्य की तरह ही व्यवहार करना चाहिये। लेकिन यह न भूलें कि हम न जीव हैं न मनुष्य, हम तो उस परम आनन्द परमात्मा के अंश आत्मा ही हैं।

ज्ञानवान् व्यक्ति ही राम की लीला समझ सकता है

अति बिचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान ।
जे मतिमंद बिमोह बस हृदयँ धरहिं कछु आन ॥दोहा 49॥

अति बिचित्र रघुपति चरित = भगवान की लीला बहुत विचित्र है, *जानहिं परम सुजान* = बहुत ज्ञानवान् व्यक्ति ही उसे समझ सकता है, *जे मतिमंद* = जो कम बुद्धि वाले हैं, *बिमोह बस* = वे मोह के वश होकर के, *हृदयँ धरहिं कछु आन* = मन में कुछ दूसरी ही बात समझ बैठते हैं।

ज्ञानी ही समझ सकता है कि परमात्मा निर्गुण निराकार रूप में अकर्ता भी है और उसे कभी दु:ख-सुख नहीं होता है। लेकिन अवतार लेकर वह दु:ख-सुख जैसा अभिनय करता रहता है। इसी प्रकार मनुष्यों में भी ज्ञानवान व्यक्ति जिनका कर्ता-भोक्ता भाव समाप्त हो गया है वे भी अभिनय मात्र करते हैं। जो लोग मोह में होते हैं, कम बुद्धिवाले हैं वे लोग भ्रम में रहकर कुछ का कुछ समझ लेते हैं।

शंकर जी को उसी समय राम के दर्शन हो जाते हैं

संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा ॥50:1॥
भरि लोचन छबिसिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी ॥50:2॥

संभु समय तेहि = शिव जी ने उसी समय, *रामहि देखा* = राम को देखा, *उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा* = हृदय में अत्यधिक आनंद उत्पन्न हुआ, *भरि लोचन* = नेत्र भर करके, *छबिसिंधु निहारी* = शोभा के समुद्र राम को देखा, *कुसमय जानि* = अवसर ठीक न समझकर, *न कीन्हि चिन्हारी* = अपना परिचय नहीं दिया।

राम दंडक वन में सीता की खोज में दक्षिण की तरफ जा रहे हैं, शंकर जी उत्तर की तरफ कैलास पर्वत जा रहे हैं, विपरीत दिशा के कारण दर्शन की संभावना बहुत कम थी। प्रभु राम ने शंकर जी के मन की बात जानकर, अपनी दिशा बदलकर उन्हें दर्शन दे दिये। शंकर जी ने नेत्र भर करके अपने प्रभु राम के दर्शन किये। उनका मन प्रसन्नता से आनंदित हो उठा। पर समय ठीक न समझकर शिव जी ने अपना परिचय नहीं दिया।

जय सच्चिदानंद कहकर दूर से ही शंकर जी ने प्रणाम किया

जय सच्चिदानंद जग पावन। असि कहि चलेउ मनोज नसावन ॥50:3॥
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता ॥50:4॥

जय सच्चिदानंद जग पावन = हे सच्चिदानंद आप जगत् को पवित्र करने वाले हो; आपकी जय हो, *असि कहि* = ऐसा कहकर, *चलेउ मनोज नसावन* = कामदेव का नाश करने वाले शिव जी चल दिये, *चले जात सिव सती समेता* = शिव जी सती के साथ जा रहे हैं, *पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता* = बार-बार कृपानिधान शंकर जी का शरीर पुलकित हो रहा था।

शंकर जी ने दूर से ही राम जी को यह कहकर प्रणाम किया कि हे सत्, चित्, आनंदस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर आप संसार को पवित्र करने वाले हो, आपकी जय हो। यहाँ पर शिक्षा है कि दशरथ पुत्र राम का स्मरण हमें सगुण रूप में करना है, पर उनके ब्रह्म के लक्षणों को ध्यान में रखे रहना है। प्रभु राम का स्मरण,

राम नाम जप, उनकी लीलायें, सभी हमें पवित्र करती हैं। राम के दर्शन करके शंकर जी मार्ग में सती के साथ बड़े प्रसन्न, मगन व पुलकित हुए चले जा रहे हैं।

4. राम के प्रति सती को संदेह, शंकर जी समझाते हैं

(दोहा 51)

प्रभु राम अवतार लेकर मनुष्य रूप में राजकुमार बनकर सीता विरह में रो रहे हैं, पर शंकर जी उन्हें परब्रह्म परमेश्वर कहकर प्रणाम करते हैं। यहीं से सती के मन में भगवान के अवतार के प्रति संदेह उत्पन्न हो जाता है। वास्तव में यह संदेह तो हम सबको भी हो जाता है, बहुत से लोग अवतार के सिद्धांत को मानते ही नहीं। सती जी मन में बहुत से तर्क करके इस निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि ये अवतार नहीं हैं। उनके तार्किक भावों को तुलसीदास जी ने ऐसे प्रस्तुत किया है कि ये प्रश्न हमारे अंदर भी सहज ही उठ जायेंगे। प्रश्न उठाकर उसका समाधान शंकर जी से करवाते हैं। शंकर जी सती को बहुत तरीके से समझाते हैं, पर उन्हें कुछ समझ नहीं आता।

सती जी के मन में संदेह उत्पन्न

सतीं सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी ॥50:5॥

सतीं सो दसा संभु कै देखी = सती ने शंकर जी की यह दशा देखी, *उर उपजा संदेहु बिसेषी* = उनके मन में संदेह उत्पन्न हो गया।

सती जी शंकर जी के मन की बात को समझ नहीं पायीं, उन्होंने केवल उनकी ऊपरी दशा देखी। वे मुस्कुरा रहे हैं, प्रसन्न होकर चल रहे हैं। यह देखकर सती के मन में संदेह उत्पन्न हो गया। आज भी हमें या अन्य लोगों को इसी प्रकार का संदेह जो जाता है।

संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा ॥50:6॥
तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा ॥50:7॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी ॥50:8॥

संकरु जगतबंद्य जगदीसा = शंकर जी सारे जगत के स्वामी व वंदनीय हैं, *सुर नर मुनि सब नावत सीसा* = देवता; मनुष्य व मुनि सब इन्हें प्रणाम करते हैं,

तिन्ह = इन्होंने, *नृपसुतहि* = राजा के पुत्र को, *कीन्ह परनामा कहि सच्चिदानंद परधामा* = यह कहकर कि आप सच्चिदानंद व परमधाम हो प्रणाम किया, *भए मगन छबि तासु बिलोकी* = व उनकी शोभा देखकर इतने प्रेम मग्न हो गये, *अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी* = और अब तक उनके हृदय में प्रेम रोके नहीं रुकता है।

सती जी मन में सोचती हैं कि शंकर जी सारे जगत के स्वामी हैं, इसलिये सब इनकी वंदना करते हैं। उन्होंने शंकर जी को अपनी तरफ से किसी की वंदना करते नहीं देखा था। चाहे देवता हों, मनुष्य हों या ऋषि-मुनि हों, सभी इन्हें प्रणाम करते हैं इनकी वंदना करते हैं। संदेह की बात यह है कि शंकर जी साधारण राजकुमार को सच्चिदानंद परमधाम कहकर प्रणाम कर रहे हैं। इन राजकुमारों की सुंदरता देखकर ये इतने आनंद में डूब गये हैं मानो यह कोई अद्‌भुत अलौकिक सुंदरता हो। ये प्रेम में ऐसे मगन हैं कि उछल-उछल कर चल रहे हैं।

संदेह का कारण: राम में ब्रह्म के लक्षण नहीं हैं

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ॥दोहा 50॥

ब्रह्म जो = ब्रह्म हैं, *ब्यापक* = सर्वव्यापक, *बिरज* = विकार रहित, *अज* = अजन्मा, *अकल* = सदा एक सा रहता है, *अनीह* = इच्छा रहित है, *अभेद* = कोई सीमा नहीं है, *सो कि देह धरि होइ नर* = वह ब्रह्म शरीर कैसे धारण कर सकता है, *जाहि न जानत बेद* = जिसे वेद भी पूर्ण रूप से नहीं जानते हैं।

सती जी के मन में संदेह हुआ कि शंकर जी ने इन राजकुमार को ब्रह्म कहकर प्रणाम किया पर इनमें ब्रह्म के लक्षण नहीं हैं। ब्रह्म के एक-एक लक्षण का स्मरण कर उनसे राजकुमार राम की तुलना इस प्रकार करती हैं:

1. सर्वव्यापकता नहीं – ब्रह्म तो सर्वव्यापक हैं, पर ये राजकुमार तो एकदेशीय हैं। समस्त जगत उसी ब्रह्म में स्थित है, वह छोटा सा कैसे हो सकता है।
2. इनमें विकार है – ब्रह्म विरज यानि विकार रहित है। ये राजकुमार रो रहे हैं, इनमें विकार है।

3. इनका जन्म हुआ है– ब्रह्म तो अजन्मा है। इन राम व लक्ष्मण ने तो अयोध्या में राजा दशरथ के यहाँ जन्म लिया है।
4. ये सदैव एक समान नहीं हैं– ब्रह्म सदैव एक समान है, वह घटता-बढ़ता नहीं है। ये राजकुमार पहले बालक थे, धीरे-धीरे बढ़कर इस अवस्था में पहुँचे हैं।
5. इनमें इच्छा है– ब्रह्म अनीह है यानि उसमें कोई इच्छा नहीं है। इनमें तो सीता से मिलने की इच्छा है।
6. ये अभेद नहीं हैं– अभेद मायने सर्वत्र विद्यमान है। ये अभेद होते तो इन्हें पता चल जाता सीता कहाँ हैं। इस प्रकार वन में रोते हुए न घूमते रहते।

संदेह का कारण: राम में विष्णु के लक्षण भी नहीं हैं

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी ॥51:1॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी ॥51:2॥

बिष्नु जो = विष्णु भगवान जो हैं, *सुर हित* = देवताओं के हित के लिये, *नरतनु धारी* = मनुष्य का शरीर धारण करते हैं, *सोउ सर्बग्य* = वे भी सब जानने वाले हैं, *जथा त्रिपुरारी* = शंकर जी की तरह, *खोजइ सो नारी* = क्या वे स्त्री को खोजेंगे, *कि अग्य इव* = एक अज्ञानी की तरह, *ग्यानधाम* = वे ज्ञान के भंडार, *श्रीपति* = श्री लक्ष्मीजी के पति हैं, *असुरारी* = असुरों के शत्रु हैं।

ब्रह्म के लक्षणों से तुलना करके सती जी ने यह धारणा बना ली कि ये ब्रह्म के अवतार नहीं हैं। अब वे सोचती हैं कि ब्रह्म की माया शक्ति जब प्रकट होकर कार्य करने लगती है तो वह ईश्वर कहलाती है। उस ईश्वर की शक्ति विष्णु के रूप में जगत का पालन करती है। विष्णु भगवान भी कई बार देवताओं के हित के लिये मनुष्य शरीर धारण कर लेते हैं। हो सकता है विष्णु जी ने राम के रूप में अवतार लिया हो। विष्णु जी के एक-एक लक्षण का स्मरण कर उनसे राजकुमार राम की तुलना इस प्रकार करती हैं:
1. विष्णु जी भी शंकर जी की तरह सर्वज्ञ हैं। यदि ये सर्वज्ञ हैं तो इन्हें पता होना चाहिये कि सीता जी को कौन ले गया है।
2. यदि ये वास्तव में विष्णु होते तो इस प्रकार अज्ञानी की तरह स्त्री को खोजते हुए, रोते हुए नहीं भटक रहे होते। विष्णु तो लक्ष्मीपति, ज्ञान के भंडार व असुरों का नाश करने वाले हैं।

संदेह का कारण: शंकर जी की बात भी असत्य नहीं हो सकती

संभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्बग्य जान सबु कोई ॥51:3॥

संभुगिरा पुनि = शंकर जी के वचन भी, *मृषा न होई* = झूठे नहीं हो सकते, *सिव सर्बग्य* = शिव जी सर्वग्य हैं, *जान सबु कोई* = यह सब जानते हैं।

इस प्रकार सती जी इस निष्कर्ष पर पहुँची कि ये राजकुमार न तो ब्रह्म हैं न ही विष्णु के अवतार हैं। दूसरी तरफ सोचती हैं कि शंकर जी ने जब इन्हें सच्चिदानंद कहकर प्रणाम किया है, तो शंकर जी को भ्रम हो नहीं सकता। उनकी बात झूठी नहीं हो सकती, वे तो सर्वज्ञ हैं, सब जानते हैं।

सती के मन के संदेह को शंकर जी जान गये

अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा ॥51:4॥
जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी ॥51:5॥

अस संसय = इस प्रकार का संदेह, *मन भयउ अपारा* = मन में बहुत सारे उत्पन्न हो गये, *होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा* = हृदय में किसी भी प्रकार से ज्ञान उत्पन्न नहीं हो रहा था, *जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी* = यद्यपि सती जी ने प्रकट कर कुछ नहीं कहा, *हर* = शंकर जी, *अंतरजामी* = अंतर्यामी हैं, *सब जानी* = वे सती के मन की बात जान गये।

सती जी के मन में भगवान के अवतार के संबंध में अपार संदेह हो गया। मन किसी भी प्रकार से मानने को तैयार नहीं कि ये राजा दशरथ के पुत्र राम ही भगवान के अवतार हैं। संदेह बराबर बना है, इन सब बातों को वे शंकर जी को नहीं बताती हैं। शंकर जी तो अंतर्यामी हैं, वे सब समझ गये कि सती के मन में क्या विचार आ रहे हैं।

संदेह दूर करने के लिये शंकर जी सती को समझाते हैं

सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ उर काऊ ॥51:6॥
जासु कथा कुंभज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई ॥51:7॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ॥51:8॥

सुनहि सती = हे सती सुनो, *तव नारि सुभाऊ* = तुम्हारा स्त्री स्वभाव है, *संसय अस* = इस प्रकार का संदेह, *न धरिअ उर काऊ* = कभी भी मन में न रखो, *जासु कथा कुंभज रिषि गाई* = जिनकी कथा अगस्त्य ऋषि ने कही, *भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई* = जिनकी भक्ति की कथा मैंने मुनि को सुनाई, *सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा* = ये वही मेरे इष्ट प्रभु राम हैं, *सेवत जाहि सदा मुनि धीरा* = जिनकी सेवा ज्ञानी मुनि सदा किया करते हैं।

मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं ।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ।
सोइ रामु ब्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी ।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी ॥छंद॥

मुनि धीर जोगी सिद्ध = मुनि; ज्ञानी; योगी; सिद्ध, *संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं* = निरंतर शुद्ध मन से जिनका ध्यान करते हैं, *कहि नेति निगम पुरान आगम* = वेद; पुराण और शास्त्र नेति नेति कहकर, *जासु कीरति गावहीं* = जिनकी कीर्ति गाते हैं, *सोइ रामु* = ये वही राम हैं, *ब्यापक ब्रह्म* = जो व्यापक ब्रह्म हैं, *भुवन निकाय* = जो चौदहों भुवन के स्वामी हैं, *पति माया धनी* = जो महामाया के स्वामी हैं, *अवतरेउ अपने भगत हित* = जिन्होंने अपने भक्तों के हित के लिये अवतार लिया है, *निजतंत्र* =अपनी इच्छा से, *नित रघुकुलमनी* = रघुवंश में अवतार लेकर मणि के समान प्रकाशित हैं।

शंकर जी सती को समझाते हैं। यह शिक्षा हम सबके लिये भी है। समाज में बहुत से लोग अवतारवाद के सिद्धांत को नहीं मानते हैं। उनके मन में भी सती के समान प्रश्न रहते हैं। शंकर जी उन्हीं प्रश्नों का समाधान कर रहे हैं।

1. हे सती, तुम प्रभु राम के बारे में ऐसा संदेह कर रही हो, यह तुम्हारा नारी स्वभाव है। ऐसा संशय मन में कभी आना ही नहीं चाहिये।
2. ये वही राम हैं जिनकी कथा अभी हम अगस्त्य मुनि से सुने हैं। मुनि बता रहे थे कि श्रीराम कैसे अवतार लेते हैं व कैसी लीला करते हैं। इन्हीं राम की भक्ति की कथा हमने मुनि को सुनायी थी।
3. ये ही मेरे इष्टदेव राम हैं। इनकी सेवा में सदा मुनि लोग लगे रहते हैं।
4. वही राम अपने स्वरूप को छिपाकर मनुष्य लीला कर रहे हैं।

5. ये वही राम हैं जिनका ज्ञानी, मुनि, योगी व सिद्ध लोग निरंतर अपने मन को शुद्ध करके ध्यान करते हैं।
6. वेद, पुराण व शास्त्र इन्हीं राम की महिमा 'इतनी ही नहीं, इतनी ही नहीं' कहकर गाते हैं।
7. ये समस्त सृष्टि के स्वामी व माया के भी स्वामी हैं।
8. उन्हीं राम ने अपने भक्तों के हित के लिये निराकार रूप से उतरकर मनुष्य रूप धारण किया है। जीव अपनी इच्छा से शरीर धारण नहीं कर सकता उसके कर्म शरीर धारण करवाते हैं, इसलिये वह परतंत्र कहलाता है। ब्रह्म निजतंत्र है, वह शरीर धारण करने के लिये स्वतंत्र है।
9. उसी ब्रह्म ने रघुवंश के महाराज दशरथ के यहाँ अवतार लिया और मणि की तरह प्रकाशवान हैं।

शंकर जी का उपदेश सती जी को समझ नहीं आया

लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु ।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ ॥सोरठा 51॥

लाग न उर उपदेसु = सतीजी के मन में उपदेश समझ नहीं आया, *जदपि कहेउ सिवँ बार बहु* = यद्यपि शंकर जी ने बार-बार समझाने की कोशिश की, *बोले बिहसि महेसु* = शंकर जी मुस्कुराकर बोले, *हरिमाया बलु जानि जियँ* = अपने हृदय में भगवान की माया का बल जानकर।

इस प्रकार शंकर जी ने सती जी को बार-बार उपदेश देकर समझाने का प्रयास किया परंतु उनके मन में संदेह यथावत् बना रहा। शंकर जी समझ गये कि भगवान् की माया बड़ी प्रबल है, वही माया बुद्धि को भी पलट देती है, उसके कारण सती की विपरीत बुद्धि हो गयी है। उनका भ्रम दूर नहीं हो रहा है।

5. सती जी सीता बनकर राम की परीक्षा लेती हैं

(दोहा 52 से 53)

जब शंकर जी ने देखा कि हमारे समझाने का सती पर कोई असर नहीं हुआ तो वे समझ गये ये जब तक स्वयं न जाँच लें तब तक इन्हें विश्वास नहीं होगा। राम की परीक्षा लेकर अपना भ्रम दूर करने की आज्ञा देते हैं। सती, सीता का वेष

बनाकर राम को ही भ्रम में डालने का प्रयास करती हैं। प्रभु राम के सामने कपट चलता नहीं, भेद खुल जाता है। सती को अपनी गलती पर बहुत दु:ख होता है।

शंकर जी कहते हैं राम की परीक्षा लेकर संदेह दूर कर लो

जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू ॥52:1॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं ॥52:2॥
जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी ॥52:3॥

जौं तुम्हरें मन अति संदेहू = तुम्हारे मन में जो बहुत संदेह है, *तौ किन जाइ परीछा लेहू* = तो तुम जाकर परीक्षा क्यों नहीं ले लेती? *तब लगि* = तब तक, *बैठ अहउँ बटछाहीं* = मैं इस वट के पेड़ के नीचे बैठा हूँ, *जब लगि* = जब तक, *तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं* = तुम लौटकर मेरे पास नहीं आ जाती, *जैसें जाइ मोह भ्रम भारी* = जिस प्रकार से तुम्हारा यह भारी मोह दूर हो, *करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी* = वही उपाय अच्छे से सोच-समझकर करो।

सती जी को बुद्धि का अभिमान था, शंकर जी ने सोचा कि बुद्धिमान् व्यक्ति स्वयं जाँच-परख करके ही कोई बात मानता है। इसलिये कहते हैं कि बहुत समझदारी से, विचार करके राम की परीक्षा लेकर अपने भ्रम को दूर कर लो। जब तक तुम लौटोगी हम इस पास वाले वटवृक्ष के नीचे बैठते हैं। हम यहीं मिलेंगे कहीं जायेंगे नहीं।

सती जी राम की परीक्षा लेने चल दीं

चलीं सती सिव आयसु पाई। करहिं बिचारु करौं का भाई ॥52:4॥

चलीं सती सिव आयसु पाई = शिव जी की आज्ञा पाकर सतीजी चल देती हैं, *करहिं बिचारु करौं का भाई* = मन में सोचने लगीं कि अरे भई अब मैं क्या करूँ?

शंकर जी की स्वीकृति पाकर सती जी परीक्षा लेने चल दीं। वे रास्ते में सोचती जा रही हैं क्या किया जाये। शंकर जी ने सती को स्वयं का भ्रम दूर करने का उपाय करने का आदेश दिया था, परंतु वे राम जी को भ्रम में डालने की योजना बनाने लगीं।

सती पर आने वाले संकट का अनुमान शंकर जी करते हैं

इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना ॥52:5॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं। बिधि बिपरीत भलाई नाहीं ॥52:6॥

इहाँ संभु अस मन अनुमाना = इधर शिवजी ने ऐसा अनुमान किया कि, *दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना* = दक्ष की पुत्री सती का अब कल्याण नहीं है, *मोरेहु कहें न संसय जाहीं* = जब मेरे कहने से भी संदेह दूर नहीं हुआ, *बिधि बिपरीत भलाई नाहीं* = मतलब विधाता ही उलटे हैं अब कुशल नहीं है।

यहाँ पर सती को 'दच्छसुता' कहकर उनके पिता दक्ष के गुणों के बारे में संकेत देते हैं। दक्ष को प्रजापति का पद मिलने के बाद इतना अभिमान आ गया था कि वे अपने को देवाधिदेव शंकर जी से भी बड़ा समझने लगे थे। उनमें बस तर्क प्रधान बुद्धि थी। शंकर जी सोचते हैं कि सती में भी अपने पिता के तर्क बुद्धि वाले गुण आ गये हैं, जिसके कारण इन्हें हमारी भी बात समझ में नहीं आ रही है। शंकर जी अध्यात्म विद्या के प्रथम गुरु हैं। जब ऐसे महान् गुरु की ही बात समझ नहीं आ रही है तो समझो विधाता ही विपरीत है, सती पर संकट आने वाला है। यहाँ पर समझने की बात है कि संकट कैसे आता है? पहले अज्ञान होता है, जिससे मोह उत्पन्न होता है, यह भ्रम और संशय को जन्म देता है, फिर बुद्धि विपरीत हो जाती है, जिससे व्यक्ति वह करने लगता है जो नहीं करना चाहिये, उसके कारण संकट आने लगता है।

जो राम ने सोचा है वही होगा, कहकर राम नाम जप करने लगे

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा ॥52:7॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा ॥52:8॥

होइहि सोइ जो राम रचि राखा = जो कुछ राम ने रच रखा है वही होगा, *को करि तर्क बढ़ावै साखा* = तर्क करके कौन बातों का विस्तार करे, *अस कहि लगे जपन हरिनामा* = ऐसा कहकर शिवजी राम जी का नाम जपने लगे, *गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा* = सती जी वहाँ चल दी जहाँ सुख के धाम श्रीराम थे।

शंकर जी कहते हैं यदि राम जी को सती की बुद्धि में मोह उत्पन्न करके संसार के कल्याण के लिये शिक्षा देनी है तो वही होगा जो राम जी ने सोचा है। प्रभु राम की माया के आगे हमारी विद्या कुछ नहीं कर पायेगी। अत: तर्क-वितर्क करने से विचार की नई-नई शाखायें निकलेंगी जिससे कोई लाभ नहीं होगा। ऐसा कहकर वे शांत बैठकर राम नाम जपने लगे। इतने में सती जी उस मार्ग तक पहुँच गयीं जिस ओर से सुख के धाम राम आ रहे थे।

सीता का रूप बनाकर सती राम के आगे हो गयीं

पुनि पुनि हृदयँ बिचारु करि धरि सीता कर रूप ।
आगें होइ चलि पंथ तेहिं जेहिं आवत नरभूप ॥दोहा 52॥

पुनि पुनि हृदयँ बिचारु करि = सती जी बार-बार मन में विचार करके, *धरि सीता कर रूप* = सीता जी का रूप धारण कर लेती हैं, *आगें होइ चलि पंथ तेहिं* = उस मार्ग की ओर आगे होकर चलीं, *जेहिं आवत नरभूप* = जिस तरफ से मनुष्यों के राजा राम आ रहे थे।

सती जी ने बार-बार अपने मन में परीक्षा लेने के तरीके के बारे में विचार करके अपनी माया शक्ति से सीता जी का ही रूप धारण कर लिया। फिर उस रास्ते में आगे होकर चलीं जिस तरफ से राजा राम आ रहे थे। उन्होंने सोचा यदि ये साधारण राजकुमार होंगे तो हमें पहचान नहीं पायेंगे और जब ये हमें सीता समझेंगे तब हम कह देंगे हम सीता नहीं सती हैं। इस प्रकार हम विजयी हो जायेंगे। इधर प्रभु राम ने जाना कि सती आ रही हैं तो अपने रोने की लीला बंद करके प्रसन्न होकर सहज राम रूप में आ गये।

सती को सीता वेष में देख लक्ष्मण जी चकित

लछिमन दीख उमाकृत बेषा। चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा ॥53:1॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा ॥53:2॥

लछिमन दीख उमाकृत बेषा = लक्ष्मण जी सती को सीता के वेष में देख, *चकित भए* = चकित हो गये, *भ्रम हृदयँ बिसेषा* = वे समझ गये कि सती जी के हृदय में विशेष भ्रम हो गया है, *कहि न सकत कछु* = वे कुछ बोले नहीं,

अति गंभीरा= चुप रहे व गंभीर हो गये, *प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा*= धीरबुद्धि वाले लक्ष्मण जी राम की माया के प्रभाव को जानते थे।

सती जी को सीता के वेष में देखकर लक्ष्मण जी पहचान गये ये तो सती हैं। वे समझ गये कि यह प्रभु राम की ही माया है जिससे सती जी जैसी ज्ञाननिधान व शंकर जी की पत्नी को भी भ्रम हो गया है, जिसके कारण उन्होंने इतनी बड़ी गलती की है। पर लक्ष्मण जी चुप रहे व गंभीर हो गये।

माया को जीवन में घटित होता दिखाकर बताते हैं

तुलसीदास जी ने माया की परिभाषा नहीं दी है, जगह-जगह लोगों के जीवन में घटित करके दिखाया है कि देखो माया ऐसे कार्य करती है। भगवान की माया ने सती की बुद्धि को कैसे पलट दिया इस प्रसंग में दिखा दिया। प्रभु की माया सारे जगत् को नचाती है, इसके अद्भुत प्रभाव को समझ पाना बहुत मुश्किल है।

अंतर्यामी प्रभु राम सती को पहचान गये

सती कपटु जानेउ सुरस्वामी। सबदरसी सब अंतरजामी ॥53:3॥
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना। सोइ सरबग्य रामु भगवाना ॥53:4॥

सती कपटु जानेउ सुरस्वामी = देवताओं के स्वामी राम जी सती के कपट को जान गये, *सबदरसी* = वे सब देखने वाले, *सब अंतरजामी* = सबके मन की बात जानने वाले हैं, *सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना*= जिसके स्मरण से अज्ञान मिट जाता है, *सोइ सरबग्य रामु भगवाना* = वही सर्वज्ञ भगवान राम हैं।

श्रीराम मायापति हैं, उन्हें माया नहीं घेरती है। वे सर्वज्ञ हैं, अंतर्यामी हैं, वे सती को पहचान गये कि ये सीता के वेष में हैं। जिसके स्मरण से अज्ञान मिट जाता है, वही सब जाननेवाले भगवान राम हैं।

राम से नारी का कपट; स्त्री निंदा नहीं, स्त्रैण एक स्वभाव

सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ ॥53:5॥

सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ = ऐसे प्रभु राम से सती छिपाव करना चाहती हैं, *देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ* = यही स्त्रैण स्वभाव का असर है।

सती जी ने स्त्री होने के कारण ऐसे सर्वज्ञ प्रभु राम से कपट किया है। यहाँ पर स्त्री की निंदा नहीं है। स्त्रैण एक स्वभाव है जो स्त्री या पुरुष किसी में भी हो सकता है। इस स्वभाव के लक्षण इस प्रकार हैं:

1. जिसे भौतिक संपति बहुत प्रिय हो, चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरूष हो।
2. जिसके ऊपर माया का बहुत प्रभाव है।
3. स्त्री स्वभाव मायने पराधीनता भी है। जो व्यक्ति किसी का संरक्षण खोजता है वह स्त्रैण स्वभाव का है।

राम स्वयं अपनी माया की महिमा देखते हैं

निज माया बलु हृदयँ बखानी। बोले बिहसि रामु मृदु बानी ॥53:6॥

निज माया बलु हृदयँ बखानी = राम जी ने अपनी ही माया की महिमा का मन में वर्णन किया, *बोले बिहसि रामु मृदु बानी* = फिर हँसकर मधुर वचन बोले।

राम मन में अपनी ही माया की महिमा गाते हैं कि देखो यह कितनी शक्तिशाली है कि इसने सती की बुद्धि को ही उलट दिया, ये सीता का रूप धारण करके आ गईं। प्रभु राम किसी को अज्ञान में डालने का आदेश अपनी माया को नहीं देते हैं। अज्ञान में डालना तो माया का स्वाभाविक कार्य है। अज्ञान में वे नहीं पड़ते जो राम की शरण में हैं।

राम अपना परिचय देकर सती से शंकर जी के बारे में पूछते हैं

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥53:7॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥53:8॥

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू = प्रभु राम ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया, *पिता समेत लीन्ह निज नामू* = पिता सहित अपना नाम बताया, *कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू* = फिर कहा कि शिव जी कहाँ हैं, *बिपिन* = जंगल में, *अकेलि फिरहु केहि हेतू* = अकेले किसलिये घूम रही हैं।

साधारण राजकुमार की तरह राम हाथ जोड़कर सती को प्रणाम करते हैं। अपना परिचय देते हैं कि हम महाराज दशरथ के पुत्र हैं और हमारा नाम राम है। पिता की आज्ञा मानकर हम वन में आये थे और यहाँ सीता का हरण हो गया। फिर मृदुवाणी में पूछते हैं कि यह तो बताइये कि शंकर जी कहाँ हैं? यहाँ वन में आप अकेली क्यों घूम रही हैं?

पहचान खुलने से सती के मन में संकोच, भय व चिंता

राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु ।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदयँ बड़ सोचु ॥दोहा 53॥

राम बचन मृदु गूढ़ सुनि= रामजी के कोमल व रहस्यमय वचन सुनकर, *उपजा अति संकोचु* = सती के हृदय में अत्यंत संकोच हुआ, *सती सभीत*= वे डरती हुई, *महेस पहिं चलीं* = शंकर जी के पास चल दीं, *हृदयँ बड़ सोचु* = उनके मन में बहुत चिंता हो गई।

गूढ़ वचन से तात्पर्य है प्रभु राम ने सती का अपमान नहीं किया। मधुर वचनों का तात्पर्य यह था कि आप भले ही सीता का वेष बनाओ लेकिन हमारे सामने यह कपट नहीं चल सकता, हम आपको पहचान गये हैं कि आप सती हैं। सती के पास भी माया शक्ति है जिससे उन्होंने सीता का वेष बना लिया पर राम की माया शक्ति उससे ज्यादा शक्तिशाली है। सती जी, राम जी से कुछ बोली नहीं, वे चुपचाप उस तरफ चल दीं जिधर शंकर जी थे। उनके मन में गलती होने का पश्चात्ताप है, और शंकर जी से कैसे बतायेंगे, इसका भय भी है।

6. राम अपने ब्रह्म रूप का दर्शन सती जी को करा देते हैं

(दोहा 54, 55)

राम जी ने जब देखा कि भेद खुल जाने से सती बहुत दु:खी हैं, तो उन्होंने अपने ब्रह्म होने का प्रमाण दिखा दिया। यहाँ पर तुलसीदास जी एक ही ब्रह्म को स्पष्ट रूप से चित्रित करके दिखाते हैं। अनेकों ब्रह्मांड हैं, प्रत्येक में राम व सीता विराजमान हैं, देवता उनकी सेवा कर रहे हैं। प्रत्येक ब्रह्मांड में ब्रह्मा, विष्णु व महेश के वेष तो अलग-अलग हैं पर राम जी का वेष एक ही है। इस

प्रसंग का पाठ करें जिससे प्रभु राम के प्रति सभी शंकायें समाप्त हों, उनके सगुण ब्रह्म रूप का दर्शन करके अपने को धन्य करें।

गलती का अहसास कर सती जी बहुत दु:खी होती हैं

मैं संकर कर कहा न माना। निज अग्यानु राम पर आना ॥54:1॥
जाइ उतरु अब देहउँ काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा ॥54:2॥

मैं संकर कर कहा न माना = मैंने शंकर जी का कहना नहीं माना, *निज अग्यानु* = अपनी अज्ञानता को, *राम पर आना* = राम पर थोप दिया, *जाइ उतरु अब देहउँ काहा* = अब मैं जाकर क्या जवाब दूँगी, *उर उपजा अति दारुन दाहा* = मन में अत्यंत दु:ख व क्षोभ उत्पन्न हो गया।

सती जी सोचति हैं कि मैनें शंकर जी की बातों पर विश्वास नहीं किया, और अपनी अज्ञानता को राम पर थोप दिया। अब, मैं शिव जी को कैसे बताऊँगी कि, सीता का वेष बनाया था। यह सब सोचते-सोचते मन में दु:ख व क्षोभ उत्पन्न हो गया।

हम लोगों के जीवन में भी यही होता है, हम गलती तो स्वयं करते हैं पर अपनी आँखों में अज्ञानता का चश्मा लगाये रहते हैं। उसी चश्मे से संसार को देखते हैं तो सब गड़बड़ दिखता है। चश्मा साफ कर लिया तो सब ठीक दिखने लगता है।

सती को आगे व पीछे राम, सीता व लक्ष्मण दिखने लगे

जाना राम सतीं दुखु पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा ॥54:3॥
सतीं दीख कौतुकु मग जाता। आगें रामु सहित श्री भ्राता ॥54:4॥
फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर बेषा ॥54:5॥

जाना राम सतीं दुखु पावा = श्रीराम जान गये कि सती को दु:ख हुआ है, *निज प्रभाउ कुछ* = अपने थोड़े से प्रभाव को, *प्रगटि जनावा* = प्रकट करके उन्हें दिखलाया, *सतीं दीख कौतुकु मग जाता* = सतीजी रास्ते में जाते हुए कौतुक देखती हैं, *आगें रामु सहित श्री भ्राता* = राम जी सीता व लक्ष्मण सहित उनके

आगे चल रहे हैं, *फिरि चितवा पाछें देखा* = फिर पीछे की ओर मुड़कर देखा, *प्रभु सहित बंधु सिय सुंदर बेषा* = वहाँ भी भाई लक्ष्मण व सीता के साथ प्रभु श्रीराम सुंदर वेष में दिखाई दिये।

राम जी ने सती जी को बहुत दु:खी देखकर अपना थोड़ा सा प्रभाव प्रकट किया जिससे सती को अपने आगे-आगे श्रीराम, सीता व लक्ष्मण जाते हुए दिखने लगे। वे जब पीछे मुड़कर देखती हैं तो वहाँ से भी श्रीराम, सीता व लक्ष्मण सुंदर वेष में आते हुए दिखने लगे।

चारों तरफ राम व उनकी सेवा में अनेकों ब्रह्मा, विष्णु, महेश

जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना ॥54:6॥
देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका ॥54:7॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा ॥54:8॥

जहँ चितवहिं = वे जिधर देखती हैं, *तहँ प्रभु आसीना* = वहाँ ही प्रभु राम बैठे दिखते हैं, *सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना* = चतुर मुनि लोग व सिद्ध उनकी सेवा कर रहे हैं, *देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका* = अनेकों शंकर; ब्रह्मा; विष्णु दिखने लगे, *अमित प्रभाउ एक तें एका* = जो एक से बढ़कर एक असीम प्रभाव वाले थे, *बंदत चरन करत प्रभु सेवा* = ये सब प्रभु राम की चरण वंदना व सेवा कर रहे थे, *बिबिध बेष देखे सब देवा* = तरह-तरह के वेष धारण किये सभी देवता दिखे।

देवताओं की शक्तियाँ जैसे सती, ब्रह्माणी व लक्ष्मी दिखीं

सती बिधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप ।
जेहिं जेहिं बेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप ॥दोहा 54॥

सती = शंकर की शक्ति सती, *बिधात्री* = ब्रह्मा की शक्ति ब्रह्माणी, *इंदिरा* = विष्णु की शक्ति लक्ष्मी, *देखीं अमित अनूप* = ये भी अनगिनत व अनुपम दिखीं, *जेहिं जेहिं बेष अजादि सुर* = जिस जिस वेष में ब्रह्मा आदि देवता थे, *तेहि तेहि तन अनुरूप* = उन्हीं के वेष के अनुरूप उनकी शक्तियाँ थीं।

जितने राम उतने ही देवता, अगणित ब्रह्मांड, अनेक प्राणी

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते ॥55:1॥
जीव चराचर जो संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा ॥55:2॥

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते = जितने स्थानों पर राम को देखा, *सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते* = शक्तियों सहित वहाँ उतने ही प्रकार के देवता भी दिखे, *जीव चराचर जो संसारा* = संसार में जितने भी जीव हैं, चर व अचर प्राणी हैं, *देखे सकल अनेक प्रकारा* = वे सब भी अनेक प्रकार के दिखे।

अनेक रूपों में देवता परंतु राम-सीता एक ही रूप में दिखे

पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा। राम रूप दूसर नहिं देखा ॥55:3॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे ॥55:4॥
सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता। देखि सती अति भईं सभीता ॥55:5॥

पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा = अनेक वेष धारण करके देवता प्रभु राम की पूजा कर रहे हैं, *राम रूप दूसर नहिं देखा* = परंतु राम जी का दूसरा रूप कहीं नहीं देखा, *अवलोके रघुपति बहुतेरे सीता सहित* = सीता जी सहित अनेक राम दिखे, *न बेष घनेरे* = परंतु उनके वेष अलग-अलग नहीं थे, *सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता* = सभी जगह राम सीता व लक्ष्मण एक से दिखे, *देखि सती अति भईं सभीता* = सती जी ऐसा देखकर बहुत डर गयीं।

तुलसीदास जी एक ही ब्रह्म को स्पष्ट रूप से चित्रित करके दिखाना चाहते हैं। कहते हैं जितने ब्रह्मांड हैं उतने ही तरह के त्रिदेव यानि ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं, पर श्रीराम, लक्ष्मण व सीता एक ही तरह के हैं। मुख्य बात है प्रभु राम का दूसरा रूप दिखाई नहीं देता है। त्रिदेवों की सीमा है वे अपने ही ब्रह्मांड में रहेंगे, दूसरे ब्रह्मांडों में उनकी गति नहीं है। लेकिन एक ही राम जो परब्रह्म परमेश्वर हैं सभी जगह व्याप्त हैं। जहाँ भी देखें राम बहुत से दिखाई देते हैं, लेकिन वेष एक ही थे। इस प्रकार प्रभु राम अपने ब्रह्म होने के प्रमाण का सती को दर्शन करा दिये। अपनी गलती पर पश्चात्ताप करके सती डर गईं।

ब्रह्म रूप देख सती भयभीत हो शंकर जी के पास चल दीं

हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूदि बैठीं मग माहीं ॥55:6॥
बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी ॥55:7॥
पुनि पुनि नाइ राम पद सीसा। चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा ॥55:8॥

हृदय कंप = हृदय काँपने लगा, *तन सुधि कछु नाहीं* = देह की सुध बुध खो गई, *नयन मूदि* = आँखें बंद करके, *बैठीं मग माहीं* = मार्ग में ही बैठ गईं, *बहुरि* = फिर, *बिलोकेउ नयन उघारी* = आँखें खोलकर देखा तो, *कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी* = वहाँ सती जी को कुछ नहीं दिखा, *पुनि पुनि नाइ राम पद सीसा* = बार-बार श्रीराम के चरणों में सिर नवाकर, *चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा* = शंकर जी के पास चल दीं।

श्रीराम की महिमा मनुष्य रूप के स्थान पर ब्रह्म रूप में देखकर सती भयभीत हो गईं। उन्होंने आँखें बंद कर ली व रास्ते में ही बैठ गईं। जब प्रभु ने अपनी महिमा को समेट लिया, तब सती ने आँखें खोलकर देखा तो वहाँ कुछ दिखाई नहीं दिया, बस वन ही दिख रहा था। सती जी समझ गयी कि श्री राम साधारण राजकुमार नहीं, ब्रह्म ही हैं। बार-बार उनके चरणों में प्रणाम करके उस वट वृक्ष की तरफ चल दीं जहाँ शंकर जी बैठे थे।

7. शंकर जी सती त्याग का संकल्प ले समाधि में बैठे

(दोहा 56 से दोहा 58)

शंकर जी के पूछने पर कि परीक्षा कैसे ली सती ने झूठ बोल दिया कि परीक्षा ली ही नहीं। शंकर जी ने ध्यान लगाकर देख लिया कि इन्होंने सीता का वेष बनाकर परीक्षा ली है। शंकर जी दु:खी हो राम का स्मरण करते हैं, उनकी प्रेरणा से सती के त्याग का संकल्प ले लेते हैं। फिर कैलास में आकर समाधि में बैठ जाते हैं।

शंकर जी कुशलता पूछकर कहते हैं परीक्षा कैसे ली?

गईं समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात ।
लीन्हि परीक्षा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात ॥दोहा 55॥

गईं समीप महेस तब = जब शंकर जी के पास पहुचीं, *हँसि पूछी कुसलात* = शंकर जी ने हँसकर कुशलता पूछी, *लीन्हि परीक्षा कवन बिधि* = किस तरह परीक्षा ली, *कहहु सत्य सब बात* = सभी बात सच बताओ।

सती जी जब शंकर जी के पास पहुँची तो शिव जी ने हँस कर पूछा कि हो गई परीक्षा? कहो कोई समस्या तो उत्पन्न नहीं हुई, सब कुशल से तो है? हमें सब सच-सच बताओ, किस प्रकार राम की परीक्षा ली?

सती जी कहती हैं कि परीक्षा न लेकर प्रणाम किया

सतीं समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ ॥56:1॥
कछु न परीक्षा लीन्हि गोसाईं। कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं ॥56:2॥
जो तुम कहा सो मृषा न होइ। मोरें मन प्रतीति अति सोई ॥56:3॥

सतीं समुझि रघुबीर प्रभाऊ = सती जी राम के प्रभाव को समझकर, *भय बस* = डर के मारे, *सिव सन* = शंकर जी से, *कीन्ह दुराऊ* = छिपाव किया, *कछु न परीक्षा लीन्हि गोसाईं* = कहती हैं, हे स्वामी! मैंने कुछ भी परीक्षा नहीं ली, *कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं* = आपकी ही तरह उन्हें प्रणाम किया, *जो तुम कहा* = आपने जो कहा था, *सो मृषा न होइ* = वह झूठ नहीं हो सकता, *मोरें मन प्रतीति अति सोई* = मेरे मन में यह बड़ा विश्वास है।

राम के सच्चिदानन्द रूप के दर्शन से सती जी को प्रसन्नता होनी चाहिये थी पर वे और अधिक दु:ख व भय में पड़ गईं। माया का प्रभाव भय व दु:ख को मिटने नहीं देता। सती जी को लगा कि यदि सब बात सच-सच बता देंगे तो हमारी निंदा होगी, इस भय से वे शंकर जी से छिपाव करती हैं। वे कहती हैं कि हमने कोई परीक्षा नहीं ली। आपकी ही तरह हमने भी उन्हें प्रणाम किया। भला आपका कहा झूठ कैसे हो सकता है? आपकी बात पर हमें विश्वास है। वे ब्रह्म ही हैं।

ध्यान में सच देख राम की माया को प्रणाम करते हैं

तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना ॥56:4॥
बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा ॥56:5॥
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना ॥56:6॥

तब संकर देखेउ धरि ध्याना = फिर शंकर जी ने ध्यान करके देखा, *सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना* = और सती जी ने जो किया था सब जान गये, *बहुरि* = फिर, *राममायहि* = रामजी की माया को, *सिरु नावा* = प्रणाम किया, *प्रेरि* = उसी माया ने प्रेरित करके, *सतिहि जेहिं झूँठ कहावा* = सती जी से झूठ कहलवाया, *हरि इच्छा भावी बलवाना* = राम जी की इच्छा ही सर्वोपरि है, *हृदयँ बिचारत संभु सुजाना* = ज्ञानवान शंकर जी इस प्रकार हृदय में विचार करते हैं।

सर्वज्ञ लोग सब कुछ जान सकते हैं, पर हर समय हर बात को जानते नहीं रहते। अभी तक शंकर जी बैठे हुए राम का नाम जप रहे थे। सती जी की बात पर जैसे ही शंकर जी ने ध्यान किया तो सती का किया हुआ सब जान गये। वे यह भी समझ गये कि सती का इस प्रकार का विचार, झूठ बोलना आदि सब राम की माया है, उसी का खेल है। सती स्वयं शंकर जी की माया शक्ति हैं, परंतु ब्रह्म की शक्ति जो सर्वोपरि है उसने इनके ऊपर भी अधिकार जमा लिया। कहते हैं कि राम की जो इच्छा होगी वही होगा।

सती ने सीता का वेष किया यह देख शंकर जी दुःखी!

सतीं कीन्ह सीता कर बेषा। सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा ॥56:7॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती ॥56:8॥

सतीं कीन्ह सीता कर बेषा = सती ने सीता जी का वेष धारण किया, *सिव उर* = शंकर जी के हृदय में, *भयउ बिषाद बिसेषा* = बहुत दुःख हुआ, *जौं अब करउँ* = यदि अब भी मैं करता हूँ, *सती सन प्रीती* = सती जी के साथ प्रेम, *मिटइ भगति* = भक्ति भाव मिट जायेगा, *पथु होइ अनीती* = मेरा मार्ग अनीति का हो जायेगा।

शंकर जी सोचते हैं कि सीता जी तो हमारी माता हैं। सती ने माँ का वेष धारण कर लिया, अब इनके साथ पत्नी भाव रखते हुए कैसे प्रेम कर सकता हूँ? यदि इनसे अब भी प्रेम करता हूँ तो भक्ति भाव मिट जायेगा, यह बहुत अनीति की बात हो जायेगी। यह विचार करके शंकर जी बहुत दुःखी होते हैं।

सती से प्रेम करें या राम की भक्ति बनाये रखें?

परम पुनीत न जाइ तजि किएँ प्रेम बड़ पापु ।
प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदयँ अधिक संतापु ॥दोहा 56॥

परम पुनीत = सती जी पतिव्रता हैं, *न जाइ तजि* = इसलिये इन्हें छोड़ते भी नहीं बनता, *किएँ प्रेम बड़ पापु* = और यदि प्रेम बनाये रखते हैं तो बड़ा पाप है, *प्रगटि न कहत महेसु कछु* = प्रकट करके शंकर जी कुछ नहीं कहते, *हृदयँ अधिक संतापु* = परंतु उनके मन में बहुत दु:ख है।

शंकर जी के मन में द्वंद्व उत्पन्न हो गया। सती जी को त्याग करना गलत होगा क्योंकि वे परम पुनीत हैं, पतिव्रता हैं। और इन्हें पत्नी रूप में मानना भी पाप होगा क्योंकि सीता जी जो माता हैं उनके रूप में भी इनका स्मरण होगा। शंकर जी प्रकट रूप में कुछ बोले नहीं, द्वंद्व के कारण हृदय में बहुत संताप हो रहा था।

शंकर जी राम का स्मरण कर सती त्याग का संकल्प लेते हैं

तब संकर प्रभु पद सिरु नावा। सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा ॥57:1॥
एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं ॥57:2॥
अस बिचारि संकरु मतिधीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा ॥57:3॥

तब संकर प्रभु पद सिरु नावा = फिर शंकर जी ने श्रीराम के चरणों में प्रणाम किया, *सुमिरत रामु* = राम जी का स्मरण करते ही, *हृदयँ अस आवा* = मन में यह भाव आया, *एहिं तन सतिहि* = सती जी के इस शरीर से, *भेट मोहि नाहीं* = मेरी भेंट नहीं हो सकती, *सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं* = शंकर जी ने ऐसा संकल्प मन में ले लिया, *अस बिचारि संकरु मतिधीरा* = स्थिर बुद्धि वाले शंकर जी ऐसा विचार करके, *चले भवन सुमिरत रघुबीरा* = राम का स्मरण करते हुए कैलास की तरफ चल दिये।

जैसे ही शंकर जी ने अपने इष्ट श्रीराम का स्मरण करके उनके चरणों में प्रणाम करके कहा कि हे प्रभो आप मेरे अंदर ही हैं, मार्गदर्शन दें अब क्या करें, तो उनके मन में यह भाव आया कि अब सती के इस शरीर से हमारी भेंट नहीं हो

सकती है। इस भाव के आते ही शंकर जी ने मन में सती के त्याग का संकल्प ले लिया। शंकर जी बहुत धैर्यवान और गंभीर हैं। इसलिये विचार करने के बाद जो निर्णय उन्होंने ले लिया उसे पक्का करके स्वीकार कर लिया। उसके बाद शंकर जी राम स्मरण करते हुए कैलास की तरफ चल दिये। साथ में सती भी हैं।

सिर्फ शरीर त्यागा, आंतरिक स्वरूप का त्याग नहीं किया

यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि जीव तो नित्य हैं परंतु शरीर बदलते रहते हैं। सती ने अपना शरीर बदलकर सीता का रूप धारण किया था। सती अपने आप में तो सती हैं ही, उन्होंने तात्त्विक अपराध नहीं किया, शारीरिक अपराध किया है। इसलिये, शंकर जी ने सती के आंतरिक स्वरूप का त्याग न करके सिर्फ शरीर का त्याग किया। आगे की कथा में आयेगा कि वे पार्वती रूप में फिर जन्म लेती हैं।

जब मन क्षुब्ध हो जाये तो इष्ट या गुरु का स्मरण करें

जब हमारा मन भी क्षुब्ध होता है तो हमें शांत बैठकर अपने इष्ट या गुरु का स्मरण करना चाहिये। इससे बुद्धि शांत हो जाती है और इष्ट या गुरु धीरे से हृदय में बोलते हैं। अब, इस शांत बुद्धि में जो मार्ग दिखाई दे वही सही मार्ग है। उसी में आगे चलते जायें।

आध्यात्मिक व भौतिक में एक चुनना हो तब क्या करें?

यहाँ पर यह भी शास्त्र का निर्णय है कि जब भौतिक व आध्यात्मिक में एक को चुनना हो और दोनों में तालमेल न बैठ रहा हो तो अध्यात्म को ही प्रधानता देनी चाहिये। सांसारिक कर्त्तव्यों के स्थान पर परमार्थ को प्रधानता दें।

आकाशवाणी– 'हे महेश आपकी भक्ति व संकल्प दृढ़ है'

चलत गगन भै गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढ़ाई ॥57:4॥
अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। रामभगत समरथ भगवाना ॥57:5॥

चलत गगन भै गिरा सुहाई = चलते समय सुंदर आकाशवाणी हुई, *जय महेस भलि भगति दृढ़ाई* = हे महेश आपकी जय हो, आपने भक्ति की अच्छी दृढ़ता की है, *अस पन* = इस प्रकार का प्रण, *तुम्ह बिनु* = आपके सिवाय, *करइ को*

आना = दूसरा और कौन कर सकता है, *रामभगत समरथ भगवाना* = आप भगवान राम के भक्त हैं इसलिये इतना सामर्थ्य है।

शंकर जी जैसे ही कैलास की तरफ थोड़ा चले तो आकाशवाणी हुई। हे महेश! आपकी जय हो! आपकी भक्ति बड़ी दृढ़ है, आपने जो प्रण किया है ऐसा प्रण आपके अतिरिक्त भला कौन कर सकता है। आप भगवान राम के इतने भक्त हो इसलिये आपके अंदर इतनी शक्ति आयी है।

संकल्प के बारे में सती पूछती हैं, शिव मौन रहते हैं

सुनि नभगिरा सती उर सोचा। पूछा सिवहि समेत सकोचा ॥57:6॥
कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीनदयाला ॥57:7॥
जदपि सतीं पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती ॥57:8॥

सुनि नभगिरा = इस आकाशवाणी को सुनकर, *सती उर सोचा* = सती जी के मन में चिंता हुई, *पूछा सिवहि समेत सकोचा* = और उन्होंने सकुचाते हुए शिव जी से पूछा, *कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला* = हे कृपालु आपने कौन सी प्रतिज्ञा की है, *सत्यधाम प्रभु दीनदयाला* = हे प्रभो आप सत्य के धाम और दीनदयाल हैं, *जदपि सतीं पूछा बहु भाँती* = यद्यपि सती जी ने बहुत प्रकार से पूछा, *तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती* = परंतु शिव जी ने कुछ नहीं बताया।

आकाशवाणी जब हुई तो शंकर जी ने सुना और सती ने भी सुना। सती जी को यह चिंता होने लगी कि शंकर जी ने क्या प्रतिज्ञा कर ली है? वे डरते-डरते शिव जी से प्रार्थना करते हुए बोलती हैं कि 'हे प्रभो आप तो सत्यधाम हैं, दीनदयाल हैं, कृपया अपनी प्रतिज्ञा की बात हमें बतलाइये'। शंकर जी मौन रहे तो सती जी ने अनेक प्रकार से फिर पूछा कि आकाशवाणी में आपकी कौन-सी प्रतिज्ञा की बात थी। तब भी शंकर जी कुछ नहीं बोले, संकल्प को मन में ही रखे रहे।

सती समझ गयीं कि शंकर जी सब जान गये हैं

सती हृदयँ अनुमान किय सबु जानेउ सर्बग्य ।
कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य ॥दोहा 57 क॥

सती हृदयँ अनुमान किय = सती ने हृदय में अनुमान लगा लिया कि, *सबु जानेउ सर्बग्य* = सर्वज्ञ शिवजी सब जान गये हैं, *कीन्ह कपटु मैं संभु सन* = मैंने शिवजी से कपट किया, *नारि सहज जड़ अग्य* = स्त्रैण स्वभाव के कारण और जड़ बुद्धि के कारण।

सती जी ने अनुमान लगाया कि शंकर जी से जो बात छिपाना चाहती थीं वह छिप नहीं पाई है। ये सर्वज्ञ हैं, हमारी बात को जान गये हैं। अब वे पश्चात्ताप करती हैं कि कपट से बात छुपा करके हमने अच्छा नहीं किया है। उन्हें अनुभव हो गया कि शंकर जी ने कोई प्रतिज्ञा कर ली है, इसलिये बात ही नहीं कर रहे हैं। शंकर जी का संकल्प धीरे-धीरे उनके व्यवहार से प्रकट होता है, वे कहते कुछ नहीं हैं।

जीवन में प्रेम का संबंध कपट से समाप्त हो जाता है

जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि ।
बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि ॥सोरठा 57 ख॥

जलु = पानी भी, *पय* = दूध के साथ मिलकर, *सरिस बिकाइ* = दूध के भाव ही बिकता है, *देखहु प्रीति कि रीति भलि* = प्रेम की सुंदर रीति देखिये, *बिलग होइ* = और फिर अलग हो जाता है यानि दूध फट जाता है, *रसु जाइ* = उसका स्वाद खतम हो जाता है, *कपट खटाई परत पुनि* = कपट रूपी खटाई के पड़ते ही।

याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जी को सती मोह की कथा सुनाते हुए एक उदाहरण से बताते हैं कि इस कथा से क्या शिक्षा मिलती है। जब पानी और दूध में प्रीति होती है, दोनों मिले होते हैं तो पानी भी दूध के भाव बिक जाता है। लेकिन दूध में यदि खटाई डाल दो तो फटकर पानी अलग और दूध अलग हो जाता है। फिर पानी किसी मूल्य का नहीं रहता है। दोनों बिना स्वाद के हो जाते हैं। इसी प्रकार दो व्यक्तियों या पति-पत्नी में बहुत प्रेम है पर यदि प्रेम में कपट या छिपाव आ गया तो दोनों के संबंध खराब हो जाते हैं।

सती ज्ञानवान हैं अतः उन्हें अपनी गलती समझ आ गयी

हृदयँ सोचु समुझत निज करनी। चिंता अमित जाइ नहिं बरनी ॥58:1॥

हृदयँ सोचु = मन में पछतावा है, *समुझत निज करनी* = अपने गलत कर्म का एहसास करके, *चिंता अमित* = अपार चिंता है, *जाइ नहिं बरनी* = इस चिंता का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

सती जी हृदय में शोक कर रही हैं, वे समझ गयीं कि हमने जो अपराध शंकर जी व राम जी के प्रति किया है, उसी के परिणाम में हमें दु:ख मिल रहा है। ज्ञान का पहला लक्षण यही है कि व्यक्ति की समझ में यह आये कि जीवन में भय, चिंता, दु:ख का कारण स्वयं के कर्मों का परिणाम है।

शंकर जी उदार हैं, अपने व्यवहार से दूसरों को दुःख नहीं देते

कृपासिंधु सिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा ॥58:2॥

कृपासिंधु सिव = शंकर जी बड़े कृपानिधान हैं, *परम अगाधा* = बड़े गंभीर हैं, *प्रगट न कहेउ* = स्पष्ट रूप से नहीं कहा, *मोर अपराधा* = मेरी गलती को

सती जी विचार करती हैं कि शंकर जी तो बहुत कृपानिधान और गंभीर हैं। अपने कृपालु स्वभाव के कारण ही उन्होंने स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा कि तुमने झूठ बोलकर अपराध किया है, तुम्हें इसकी सजा मिलेगी। वे हमें दु:ख नहीं देना चाहते हैं। शंकर जी का व्यवहार जीवन में अपनाना चाहिये, अपने व्यवहार से किसी को दु:ख न दें।

शंकर जी के व्यवहार से त्याग की बात समझ सती व्याकुल

संकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदयँ अकुलानी ॥58:3॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपइ अवाँ इव उर अधिकाई ॥58:4॥

संकर रुख अवलोकि भवानी = शंकर जी के व्यवहार को देखकर सती जी समझ गयीं कि, *प्रभु मोहि तजेउ* = प्रभु ने मेरा त्याग कर दिया है, *हृदयँ अकुलानी* = हृदय में व्याकुलता और बढ़ गयी, *निज अघ समुझि* = अपने पाप को समझकर, *न कछु कहि जाई* = कुछ कह नहीं सकतीं, *तपइ अवाँ* = जैसे कुम्हार का अँवा अंदर ही अंदर सुलगता है, *इव उर अधिकाई* = इसी प्रकार सती जी अंदर से व्याकुल हैं।

सती जी ने देखा कि शंकर जी आगे-आगे चुपचाप चले जा रहे हैं, न कुछ बोलते हैं, न कुछ पूछते हैं, वे समझ गयीं कि प्रभु ने हमें त्याग दिया है। यह समझते ही उनकी व्याकुलता और बढ़ गयी। अपनी गलती को जानकर वे कुछ कह नहीं पाती हैं। जैसे कुम्हार का अँवा भीतर ही भीतर सुलगता रहता है, धुँआ ऊपर से निकलता है लेकिन लपट बाहर नहीं निकलती है, उसी प्रकार सती जी बाहर से रो नहीं रही हैं लेकिन भीतर ही भीतर उनको अपनी गलती का महान दु:ख है।

रास्ते में कथा सुनाते हुए कैलास पहुँचे

सतिहि ससोच जानि बृषकेतू। कहीं कथा सुंदर सुख हेतू ॥58:5॥
बरनत पंथ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा ॥58:6॥

सतिहि ससोच = सती पछतावे में है, *जानि बृषकेतू* = यह बात शंकर जी जान गये, *कहीं कथा सुंदर सुख हेतू* = सती के सुख के लिये सुंदर कथा कहने लगे, *बरनत पंथ बिबिध इतिहासा* = रास्ते में इतिहास की बातें समझाते हुए, *बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा* = शंकर जी कैलास पर्वत पहुँच गये।

शंकर जी ने देखा कि सती के मन में पश्चात्ताप व दु:ख के भाव उठ रहे हैं। सती का दु:ख दूर करने के लिये वे सुंदर कथायें सुनाने लगे। इतिहास से उदाहरण देकर सती को समझाते हैं कि इस प्रकार की गलतियाँ प्राचीनकाल में भी लोगों से होती रही हैं। सती के मन को शांत करते हुए शंकर जी कैलास पहुँच गये।

कैलास में शंकर जी समाधि में बैठ गये

तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन। बैठे बट तर करि कमलासन ॥58:7॥
संकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा ॥58:8॥

तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन = कैलास पर फिर शंकर जी ने अपनी प्रतिज्ञा को याद करके, *बट तर* = वट वृक्ष के नीचे, *बैठे करि कमलासन* = पद्मासन लगाकर बैठ गये, *संकर सहज सरूपु सम्हारा* = शंकर जी ने अपना स्वाभाविक रूप स्मरण किया, *लागि समाधि*= उनकी समाधि लग गयी, *अखंड अपारा* = जो अखंड व अपार थी।

कैलास पहुंचकर शंकर जी ने सती को त्याग करने की अपनी प्रतिज्ञा को याद किया और उसे पूरा करने के लिये वट वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ गये। जब वे आँखें खोलेंगे नहीं तो सती का त्याग अपने आप हो गया। शंकर जी ने अपना सहज स्वरूप स्मरण किया। अपने को शरीर समझना तो बनावटी रूप है, हम सब का सहज स्वरूप तो आत्मा ही है। शंकर जी ने जैसे ही ध्यान में बैठकर आत्मा का स्मरण किया वैसे ही मन बुद्धि की वृत्तियाँ आत्मिक स्वरूप में लीन हो गयीं। केवल आत्म स्वरूप का बोध रहा, यही समाधि है। शंकर जी को समाधि में बैठने का अभ्यास था, अत: वे दिन रात निरंतर आत्म स्वरूप में लीन हो गये।

कैलास में यह बात किसी को नहीं पता

सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं ।
मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सिराहिं ॥दोहा 58॥

सती बसहिं कैलास तब = तब सती जी कैलास पर रहने लगीं, *अधिक सोचु मन माहिं* = उनके मन में बड़ा दु:ख था, *मरमु न कोऊ जान कछु* = इस रहस्य को कोई कुछ भी नहीं जानता था, *जुग सम* = एक एक युग के समान, *दिवस सिराहिं* = एक-एक दिन बीत रहा था।

शंकर जी तो समाधि में स्थित हो गये और सती जी कैलास पर रह रही हैं, उन्होंने तो समाधि लगायी नहीं वे तो उसी प्रकार व्यवहार में हैं। सती जी को पहले भी शोक था अब और अधिक शोक हो गया कि शंकर जी ने हमारा त्याग करके अपार समाधि लगा ली है, अब पता नहीं कब तक वियोग में रहना पड़े। कैलास में रहने वाले अन्य लोग जैसे शंकर जी के गण इत्यादि इस के बारे में कुछ नहीं जानते। सतीजी को एक-एक दिन एक युग के समान लंबा लग रहा है।

8. सती का पश्चात्ताप, पिता के यज्ञ में बिना बुलाये पहुँचीं

(दोहा 59 से 62)

सती जी पश्चाताप करके बहुत दु:खी होती हैं। अपने शरीर का त्याग करने का विचार करती हैं। प्रभु राम का स्मरण करती हैं। लंबे समय के बाद शंकर जी

राम राम कहते हुए समाधि से उठते हैं। सती जी उनके दर्शन के लिये जाती हैं। शंकर जी उन्हें बाँयी तरफ आसन न देकर सामने बैठने को कहते हैं। वे समझ गयीं कि हमारा परित्याग हो गया है। इतने में उनके पिता, प्रजापति का पद पाकर, अभिमान वश यज्ञ का आयोजन करते हैं। शंकर जी से वैर के कारण उन्हें नहीं बुलाते हैं। सती जी शंकर जी से पिता के घर बिना बुलाये ही जाने की आज्ञा माँगती हैं। शंकर जी बहुत समझाते हैं, पर असर नहीं होता, वे जाने की हठ किये रहती हैं। भविष्य निश्चित है, यह सोचकर शंकर जी उनके जाने की तैयारी करके विदा करते हैं।

देवता सुख व दुःख लंबे समय तक भोगते हैं।

नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहउँ दुख सागर पारा ॥59:1॥

नित नव = रोज नया, *सोचु सती उर भारा* = सती जी के मन में भारी शोक है, *कब जैहउँ दुख सागर पारा* = मैं इस समुद्र के समान दुःख से कब पार जाऊँगी।

सती बार-बार मन में सोचती रहती हैं कि हम इस दुःख के समुद्र से कब पार होंगे? कब हमें शांति मिलेगी? ऐसे ही महीने-महीने वर्ष-वर्ष बीतते जा रहे हैं, 87 हजार वर्ष तक शंकर जी की समाधि लगी रही, तब तक सती जी को अपनी गलती का दुःख भोगना पड़ा। कहते हैं कि देवता या तो पाप करते नहीं, यदि उनसे पाप हो जाये तो उसका उद्धार बहुत समय बाद होता है। इसी प्रकार मनुष्यों में भी साधारण स्तर के व्यक्ति पाप करते रहते हैं और उनके फल भी भोगते रहते हैं। लेकिन साधु स्वभाव के व्यक्ति से यदि पाप हो जाये तो उन्हें बहुत ज्यादा दुःख देता है। देवता सुख भी लंबे समय तक भोगते रहते हैं।

गलती का फल भोग लिया, विधाता से शरीर त्याग की प्रार्थना

मैं जौ कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पतिबचनु मृषा करि जाना ॥59:2॥
सो फलु मोहि बिधाताँ दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा ॥59:3॥
अब बिधि अस बूझिअ नहिं तोही। संकर बिमुख जिआवसि मोही ॥59:4॥

मैं जौ कीन्ह रघुपति अपमाना = मैंने जो राम जी का अपमान किया, *पुनि पतिबचनु* = फिर अपने पति की बात को, *मृषा करि जाना* = झूठा माना, *सो*

फलु मोहि बिधाताँ दीन्हा = उसी का फल विधाता हमें दे रहा है, *जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा* = जो उचित था वही विधाता ने किया, *अब बिधि* = परंतु हे विधाता अब, *अस बूझिअ नहिं तोही* = तुम्हारे लिये यह उचित नहीं है, *संकर बिमुख* = शंकर जी से विमुख होने पर भी, *जिआवसि मोही* = मुझे जीवित रखे हैं।

सती जी अपने अपराध का स्मरण करती हैं कि हमने सीता जी का रूप धारण करके भगवान राम का अपमान किया, शंकर जी की कही बात को झूठा माना उसी का फल विधाता हमें दु:खों के रूप में दे रहा है। विधाता से प्रार्थना करती हैं कि हमने दु:ख भोग लिया है, अब हमारा छुटकारा करो। शंकर जी ने हमारा त्याग कर दिया है, अब इतनी कृपा करो कि हमें जीवित मत रखो।

सती जी अब श्रीराम का स्मरण करती हैं

कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महुँ रामहि सुमिर सयानी ॥59:5॥

कहि न जाइ कछु हृदय गलानी = सती के मन में जो अपार ग्लानि है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है, *मन महुँ रामहि सुमिर सयानी* = समझदार सती जी हृदय में श्रीराम का स्मरण करती हैं।

सयानी से आशय समझदार से है। सती जी के मन में इतनी अधिक ग्लानि व पश्चात्ताप है कि उसे कहा नहीं जा सकता है। सब तरफ से विचार करके सती को समझ में आया कि सर्वसमर्थ तो एकमात्र प्रभु राम ही हैं, उन्हीं की शरण में जाना चाहिये। समझदार व्यक्ति से अपराध हो गया, उसने दण्ड पाया, दण्ड भोगने के बाद उसका चित्त शुद्ध हुआ, बुद्धि ठीक हुई तब उसे लगता है कि भगवान की शरण में जाना चाहिये। अब सती जी राम से प्रार्थना करती हैं।

राम से विनती–यह शरीर शीघ्र छूटे

जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन बेद जसु गावा ॥59:6॥
तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी। छूटउ बेगि देह यह मोरी ॥59:7॥
जौं मोरें सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू ॥59:8॥

जौं प्रभु दीनदयालु कहावा = हे प्रभु आप दीनदयाल कहलाते हैं, *आरति हरन* = आप दु:खों को दूर करने वाले है, *बेद जसु गावा* = वेद भी ऐसा ही कहकर आपका यश गाते हैं, *तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी* = मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करती हूँ, *छूटउ बेगि देह यह मोरी* = हमारा यह शरीर जल्दी छूट जाये, *जौं मोरें सिव चरन सनेहू* = यदि मेरा शिव जी के चरणों में प्रेम है, *मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू* = और यदि यह मेरा प्रेम का व्रत मन, वचन व कर्म से सत्य है।

तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ ।
होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ ॥दोहा 59॥

तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु = तो हे सर्वदर्शी प्रभो सुनिये, *करउ सो बेगि उपाइ* = जल्दी ही वह उपाय कीजिये, *होइ मरनु जेहिं* = जिससे मेरा मरण हो, *बिनहिं श्रम* = और बिना ही परिश्रम के, *दुसह बिपत्ति बिहाइ* = यह भारी दु:ख दूर हो जाये।

सती जी राम से प्रार्थना करती हैं कि हे प्रभु आप दीनदयाल कहलाते हो तो हम जैसे दीन दुखियों पर कृपा करो। दु:ख तो जीवन में आ जाते हैं, उसे हरण करने वाले आप हैं। हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि ऐसा उपाय करें जिससे शीघ्र ही यह शरीर छूट जाये। यदि शिव जी के चरणों में हमारा सत्य प्रेम है और मन, वाणी व कर्म से हम सत्य हैं तो अवश्य ही आप हमारे पुण्य का फल प्रदान करें, जिससे इस दु:ख से हमारा छुटकारा हो। सती जी समझती हैं कि अपराध तो शरीर से हुआ है और यदि शरीर ही न रहेगा तो शंकर जी त्यागेंगे किसे?

दु:ख का कारण हम स्वयं हैं, इसमें कुतर्क न करें

शास्त्र का मत है कि यदि व्यक्ति दु:ख भोग रहा है तो यह निश्चय ही उसके पापों का फल है। पाप और पुण्य की यह विशेषता है कि कितने ही जीवन बीत जायें तो भी वे अपने कर्मों का फल दिये बिना नष्ट नहीं होते हैं। जैसे भिन्न-भिन्न प्रकार के बीज जमने के लिये अलग-अलग समय लेते हैं उसी प्रकार पाप-पुण्य हमारे भीतर बीज बनकर पड़े रहते हैं और जब अनुकूल वातावरण आता है चाहे इस जन्म में या कई जन्मों बाद तो कर्मों के फल के रूप में उनका प्रस्फुटन हमारे जीवन में अवश्य होता है। यदि हम कहें कि

हमने कोई पाप नहीं किया फिर भी दु:ख भोग रहे हैं तो यह हमारा अज्ञान है। इसमें कुतर्क करने से कोई लाभ नहीं।

राम नाम कहते हुए शंकर जी समाधि से उठे

एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी ॥60:1॥
बीतें संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी ॥60:2॥
राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सतीं जगतपति जागे ॥60:3॥

एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी = इस प्रकार प्रजापति की पुत्री सती दु:खी हैं, *अकथनीय दारुन दुखु भारी* = भारी दु:ख का वर्णन नहीं किया जा सकता, *बीतें संबत सहस सतासी* = सतासी हजार वर्ष बीत जाने पर, *तजी समाधि संभु अबिनासी* = अबिनासी शिव जी ने समाधि खोली, *राम नाम सिव सुमिरन लागे* = शंकर जी राम नाम का स्मरण करने लगे, *जानेउ सतीं जगतपति जागे* = सतीजी समझ गयीं कि संसार के स्वामी शंकर जी समाधि से उठ गये हैं।

प्रजापति दक्ष की पुत्री सती जी इस प्रकार से बहुत दु:खी हैं। उनका दु:ख इतना ज्यादा है कि कहते नहीं बनता। इसी प्रकार 87 हजार वर्ष व्यतीत हो गये, तब शंकर जी ने समाधि छोड़ी, आँखें खोलीं और राम नाम बोलने लगे। जैसे ही सती जी ने राम नाम ध्वनि सुनीं वे समझ गईं शंकर जी समाधि से उठ गये हैं। जिसके हृदय में भगवान की भक्ति होगी वह उठते साथ ही भगवान का नाम लेगा। यह शिक्षा है कि सुबह उठते ही भगवान का नाम लेना चाहिये। पौराणिक भाषा में हजार वर्ष से आशय लंबे समय से है।

सती पहुंचीं, अपने बांये न बैठाकर, सामने बैठाते हैं

जाइ संभु पद बंदनु कीन्हा। सनमुख संकर आसनु दीन्हा ॥60:4॥
लगे कहन हरि कथा रसाला। दच्छ प्रजेस भए तेहि काला ॥60:5॥
देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक ॥60:6॥

जाइ संभु पद बंदनु कीन्हा = सती जी शंकर जी के पास जाकर उनकी वंदना करती हैं, *सनमुख संकर आसनु दीन्हा* = शंकर जी उन्हें अपने सामने बैठाते हैं, *लगे कहन* = शंकर जी कहने लगे, *हरि कथा* = भगवान की कथा,

रसाला = जो कि रसों से भरी है, *दच्छ प्रजेस भए तेहि काला* = उसी समय दक्ष प्रजापति हो गये, *देखा बिधि बिचारि सब लायक* = ब्रह्मा जी ने सब प्रकार से योग्य देख-समझकर, *दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक* = दक्ष को प्रजापतियों का नायक बना दिया।

सती जी शंकर जी के पास जाकर वंदना करती हैं। शंकर जी ने उनका त्याग किया था इसलिये पत्नी की तरह से वाम भाग में आसन नहीं दिया वरन् अपने सामने बैठाया। भारतीय संस्कृति में पत्नी को बाँयी तरफ बैठाते हैं।

शंकर जी यह तो जान ही रहे थे कि सती जी दु:खी हैं, इसलिये उन्हें सुखी करने के लिये रसों से भरी भगवान की सुंदर कथा कहते हैं।

सती के पिता दक्ष प्रजापति बन गये

ब्रह्माजी ने देखा कि दक्ष तेजस्वी हैं, योग्य हैं तो उनको प्रजापति का पद दे दिया। ब्रह्मा जी सृष्टि की रचना करते हैं, पहले मानस पुत्रों की रचना की, उनसे सृष्टि बढ़ी नहीं। फिर शारीरिक सृष्टि की रचना की, जैसे वशिष्ठ जी, भृगु, अंगिरा और स्वयम्भू मनु आदि। इनके नायक के पद को प्रजापति कहते हैं, जो सती के पिता दक्ष को प्राप्त हुआ।

प्रजापति पद से दक्ष के अंदर बहुत अभिमान आ गया

बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमानु हृदयँ तब आवा ॥60:7॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥60:8॥

बड़ अधिकार दच्छ जब पावा = जब दक्ष ने इतना बड़ा अधिकार पाया, *अति अभिमानु हृदयँ तब आवा* = तब उनके मन में बहुत अभिमान आ गया, *नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं* = जगत् में ऐसा कोई नहीं पैदा हुआ, *प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं* = जिसे प्रभुता पाकर मद न हुआ हो।

यहाँ पर याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जी को कथा सुनाते हुए कहते हैं कि दुनियाँ में आज तक कोई ऐसा पैदा नहीं हुआ है, जिसको बड़ा पद प्राप्त होने पर मद और अभिमान न हो। यह एक प्रकार की स्वाभाविक बात है। यही बात दक्ष में हो गई। अभिमान से छूटने का एकमात्र उपाय है कि हम भगवान को स्मरण

करते रहें, उनका नाम लेते रहें। यदि मद व अभिमान न हों तो जीवन सरल व मधुर बना रहता है। अभिमान से बुद्धि की क्षमता भी नष्ट होती है।

अभिमान में दक्ष द्वारा यज्ञ का आयोजन

दच्छ लिये मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग ।
नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग ॥दोहा 60॥

दच्छ लिये मुनि बोलि सब = दच्छ ने सब मुनियों को बुला लिया, *करन लगे बड़ जाग* = और विशाल यज्ञ करने लगे, *नेवते सादर सकल सुर* = उन सभी देवाताओं को आदरपूर्वक निमंत्रित किया, *जे पावत मख भाग* = जो यज्ञ का भाग पाते हैं।

दक्ष ने प्रजापति का पद प्राप्तकर अभिमान में भरकर कुत्सित लक्ष्य से एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया। इसमें सब मुनियों को बुलाया गया। सब देवताओं को आदरपूर्वक निमंत्रण देकर बुलाया गया जो यज्ञ में भाग पाते हैं।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश के अलावा सब देवता वायुमार्ग से चल दिये

किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा ॥61:1॥
बिष्नु बिरंचि महेसु बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई ॥61:2॥

किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा = किन्नर; नाग; सिद्ध; गंधर्व, *बधुन्ह समेत* = अपनी पत्नियों के साथ, *चले सुर सर्बा* = सब देवता चल दिये, *बिष्नु बिरंचि महेसु बिहाई* = विष्णु; ब्रह्मा और शंकर जी को छोड़कर, *चले सकल सुर* = सब देवता चल दिये, *जान बनाई* = अपना विमान सजाकर।

देवताओं की अनेक कोटियाँ हैं। किन्नर में नाचने वाले हैं। इनका शरीर मनुष्य व घोड़े का मिला जुला रूप होता है। गंधर्व देवताओं की सभा में गाने वाले लोग हैं। सिद्ध में वे लोग आते हैं जो देवताओं के उपासकों की प्रार्थनायें देवताओं तक पहुँचाते हैं और उनका आशीर्वाद व्यक्तियों तक पहुँचाते हैं। इन्हें सिद्धि प्रदाता भी कहते हैं। सब देवताओं के अपने-अपने सामर्थ्य, रूप,

शक्तियाँ, कार्य आदि हैं। ये सब देवता यज्ञ में आमंत्रित किये गये। ये अपनी पत्नियों यानि शक्तियों के साथ वायु मार्ग से चल दिये।

शंकर जी को नहीं बुलाया, ब्रह्मा विष्णु भी नहीं गये

शंकर जी को नहीं बुलाया गया तो विष्णु जी व ब्रह्मा जी भी नहीं गये। ये त्रिदेव आपस में बैर नहीं रखते, ये तीनों एकमत होकर यज्ञ से दूर रहे। दक्ष ने भी सोचा कि त्रिदेव न आयें तो क्या, हमारे घर में हजारों देवता तो आ ही रहे हैं।

पिता के घर यज्ञ की बात सुनकर सती जी प्रसन्न

सतीं बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुंदर बिधि नाना ॥61:3॥
सुर सुंदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना ॥61:4॥
पूछेउ तब सिवँ कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी ॥61:5॥

सतीं बिलोके = सती जी ने देखा, *ब्योम बिमाना जात चले* = आकाश में जाते विमान को, *सुंदर बिधि नाना* = अनेक प्रकार के सुंदर, *सुर सुंदरी* = देव सुंदरियाँ या देव पत्नियाँ, *करहिं कल गाना* = मधुर गान कर रही हैं, *सुनत श्रवन* = इन्हें श्रवण करने से, *छूटहिं मुनि ध्याना* = मुनियों का ध्यान छूट जाता है। *पूछेउ* = सतीजी ने पूछा, *तब सिवँ कहेउ बखानी* = तब शिव जी ने सब बातें बतायीं, *पिता जग्य सुनि* = पिता जी ने यज्ञ किया है यह सुनकर, *कछु हरषानी* = सती जी कुछ प्रसन्न हुईं।

सती जी ने जब शंकर जी से पूछा ये सब गाना गाती स्त्रियाँ व देवता लोग विमानों में कहाँ जा रहे हैं, तब शंकर जी ने वर्णन करके बता दिया कि तुम्हारे पिता दक्ष यज्ञ करने जा रहे हैं, उसमें मुनि लोगों को बुलाया गया है। मुनियों ने देवताओं का आवाहन किया है तो ये सब देवता लोग यज्ञ में अपना-अपना भाग पाने जा रहे हैं। यज्ञ की आहुतियाँ देवताओं का भोज है। पिता के घर यज्ञ की बात सुनकर सती जी प्रसन्न हो जाती हैं।

सती सोचती हैं कुछ दिन पिता के घर चले जायें

जौं महेसु मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं ॥61:6॥
पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी। कहइ न निज अपराध बिचारी ॥61:7॥

जौं महेसु मोहि आयसु देहीं = यदि शंकर जी मुझे आज्ञा देते हैं, *कछु दिन जाइ रहौं* = कुछ दिन जाकर रहें, *मिस एहीं* = इसी बहाने से, *पति परित्याग* = पति के परित्याग का, *हृदयँ दुखु भारी* = हृदय में बहुत भारी दु:ख है, *कहइ न* = कहने में संकोच लगता है, *निज अपराध बिचारी* = अपना अपराध सोचकर।

सती जी मन में विचार करती हैं कि, यदि शंकर जी स्वीकृति दे दें तो यज्ञ के बहाने कुछ दिन पिता जी के घर रह लेंगे, तो हमारे दु:ख का समय कट जायेगा। सती जी के मन में शंकर जी द्वारा त्याग किये जाने का भारी दु:ख तो है ही, पर अपना अपराध सोच करके उन्हें शंकर जी से आज्ञा माँगने की भी हिम्मत नहीं हो रही है।

विनम्रता से पिता के घर जाने की आज्ञा शंकर जी से माँगती हैं

बोली सती मनोहर बानी। भय संकोच प्रेम रस सानी ॥61:8॥

बोली सती मनोहर बानी = सतीजी सुंदर वाणी में बोली, *भय संकोच प्रेम रस सानी* = वाणी में भय, संकोच व प्रेम था।

पिता भवन उत्सव परम जौं प्रभु आयसु होइ ।
तौ मैं जाउँ कृपायतन सादर देखन सोइ ॥दोहा 61॥

पिता भवन उत्सव परम = मेरे पिता जी के घर में बहुत बड़ा उत्सव है, *जौं प्रभु आयसु होइ* = यदि हे प्रभु आप आज्ञा दें, *तौ मैं जाउँ कृपायतन सादर देखन सोइ* = तो हे कृपानिधान मैं भी आदरपूर्वक उस उत्सव को देखने चली जाउँ।

सती जी को शंकर जी से आज्ञा मांगने में भय लग रहा है कि कहीं वे डाँट न दें, संकोच भी लग रहा है, फिर भी विनम्रतापूर्वक मधुर वाणी में कहती हैं, हे प्रभो, पिताजी के घर बड़ा भारी उत्सव हो रहा है, यदि आपकी स्वीकृति मिल जाये तो हे कृपानिधान वहाँ उस उत्सव को देखने के लिये मैं भी आदरपूर्वक चली जाउँ।

शंकर जी ने कहा बिना बुलाये जाना उचित नहीं

कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा ॥62:1॥
दच्छ सकल निज सुता बोलाईं। हमरें बयर तुम्हउ बिसराईं ॥62:2॥
ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना। तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना ॥62:3॥

कहेहु नीक = बात तो अच्छी कही, *मोरेहुँ मन भावा* = यह मेरे मन को भी पसंद आयी, *यह अनुचित* = यह अनुचित है, *नहिं नेवत पठावा* = उन्होनें न्यौता नहीं भेजा, *दच्छ सकल निज सुता बोलाईं* = दक्ष ने अपनी सभी पुत्रियों को बुलाया है, *हमरें बयर तुम्हउ बिसराईं* = हमारे वैर के कारण तुमको भी नहीं बुलाया, *ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना* = एक बार ब्रह्मा जी की सभा में हमसे अप्रसन्न हो गये थे, *तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना* = उसी कारण से अब भी अपमान करते हैं।

शंकर जी ने कहा तुम्हारी यह बात हमें भी पसंद आयी कि पिता के घर यज्ञ में जाना चाहिये। लेकिन तुम्हारे पिता दक्ष ने निमंत्रण नहीं भेजा है, यह अनुचित है। इसलिये वहाँ तुम्हारा जाना उचित नहीं है। दक्ष ने तुम्हारे अलावा अपनी सभी पुत्रियों को बुलाया है। शंकर जी कहते हैं कि एक बार ब्रह्मा जी की सभा में उनको हमारा व्यवहार अच्छा नहीं लगा था, इसीलिये तब से अब तक हमसे विरोध मानते हैं और अपमान करते हैं। इसी वैर के कारण से हमें नहीं बुलाया और तुम्हें भी नहीं बुलाया है।

बिना बुलाये जाने से शील, स्नेह व मर्यादा भंग होगी

जौं बिनु बोलें जाहु भवानी। रहइ न सीलु सनेहु न कानी ॥62:4॥

जौं बिनु बोलें = यदि बिना बुलाये, *जाहु भवानी* = हे भवानी तुम जाती हो, *रहइ न सीलु सनेहु न कानी* = न शील रहेगा, न स्नेह और न मर्यादा रहेगी।

तब शंकर जी कहते हैं कि हे भवानी, नीति की बात सुनो। यदि तुम बिना बुलाये पिता के घर जाओगी तो:

1. मर्यादा नहीं रहेगी– वहाँ तुम्हारा अपमान होगा, व्यक्ति को अपने सम्मान की रक्षा करनी चाहिये वह ऐसा न करे कि उसका अपमान हो।
2. स्नेह नहीं रहेगा– प्रेम भाव तो अब है नहीं, वहाँ जाने से वैर भाव ज्यादा बढ़ जायेगा, यह स्नेह की हानि होगी।
3. शील नष्ट होगा– मायने व्यक्ति शांत रहे, दया, क्षमा, संतोष रखे, वहाँ जाने से ये गुण भी समाप्त हो जायेंगे।

वैरभाव में बिना बुलाये पिता, मित्र, मालिक के यहाँ भी न जायें

जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा ॥62:5॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यानु न होई ॥62:6॥

जदपि मित्र प्रभु पितु गुर = यद्यपि मित्र; मालिक; पिता और गुरु के, *गेहा* = घर में, *जाइअ बिनु बोलेहुँ* = बिना बुलाये जाया जा सकता है, *न सँदेहा* = इसमें संदेह नहीं है, *तदपि* = फिर भी, *बिरोध मान जहँ कोई* = जहाँ कोई वैर मानता हो, *तहाँ गएँ* = वहाँ जाने से, *कल्यानु न होई* = कल्याण नहीं होता है।

सती जी ने कहा होगा कि वह तो हमारे पिता का ही घर है वहाँ बिना बुलाये जाने में कौन सी गलत बात है? तो शंकर जी फिर से नीति की बात कहते हैं। मित्र, मालिक, पिता व गुरु इन चारों के घर बिना बुलाये जाया जा सकता है। इन चारों जगह जब भी पहुँचोगे तो स्वागत है, इसमें कोई संदेह नहीं है। परन्तु कहीं पर कोई विरोध मानता है तो वहाँ बिना बुलाये नहीं जाना चाहिये। यदि फिर भी जाते हो तो बात बिगड़ेगी।

भावी वश, शंकर जी की बातें, सती जी के समझ नहीं आतीं

भाँति अनेक संभु समुझावा। भावी बस न ग्यानु उर आवा ॥62:7॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाएँ। नहिं भलि बात हमारे भाएँ ॥62:8॥

भाँति अनेक संभु समुझावा = अनेक प्रकार से शंकर जी ने समझाया, *भावी बस न ग्यानु उर आवा* = पर होनहार वश सती के मन में ज्ञान नहीं आया, *कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाएँ* = फिर भी शिव जी ने कहा कि यदि तुम बिना बुलाये जाओगी, *नहिं भलि बात हमारे भाएँ* = तो हमारी समझ में अच्छी बात नहीं होगी।

शंकर जी ने इस प्रकार नीति की बातें समझायीं और पुराना इतिहास भी समझा दिया लेकिन सती जी के चित्त में यह ज्ञान चढ़ा ही नहीं, क्योंकि उनका समय अब शरीर छोड़ने का आ गया था, भावी में यही निश्चित था। सती जी हठ किये रहीं कि पिता के घर हम जायेंगे ही। शंकर जी कहने लगे बिना बुलाये तुम जाती हो तो जाओ पर हमारे विचार से तो ठीक नहीं है। उचित मत बताकर शंकर जी ने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया।

शंकर जी ने पूरी तैयारी के साथ सती को विदा किया

कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छकुमारि ।
दिए मुख्य गन संग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ॥दोहा 62॥

कहि देखा = कहकर देख लिया, *हर* = शंकर जी ने, *जतन बहु* = अनेक प्रकार से, *रहइ न दच्छकुमारि* = सती जी किसी भी प्रकार नहीं रुकती हैं, *दिए मुख्य गन संग* = अपने मुख्य गणों को साथ में देकर, *तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि* = त्रिपुरारि शंकर ने उन्हें विदा किया।

शंकर जी ने बहुत समझाया-बुझाया पर दक्ष-पुत्री रोके न रुकीं। वे तो जाने का हठ करती ही रहीं। अपनी इच्छा उन पर न थोपकर शंकर जी ने सती के जाने की तैयारी करवा दी। सवारी बुला दी, नंदी बुला दिये, और अपने मुख्य गण साथ में कर दिये। ये गण अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण थे। शंकर जी पहले ही जानते थे कि वहाँ पर झगड़ा फसाद हो सकता है। साथ में देखभाल करने वाले नौकर, सामान आदि भेजा। इस प्रकार की तैयारी से भेजा कि वहाँ पर किसी को ऐसा न लगे कि ये शंकर जी की बात न मानकर चुपचाप अकेले आ गयी हैं।

9. शंकर जी का निरादर देख, सती शरीर भस्म करती हैं

(दोहा 63 से 65)

पिता के घर पहुँचने पर सती का स्वागत नहीं होता है, बहनें व्यंग्य भरी नजरों से देखती हैं, पिता गुस्से से देखते हैं, केवल माँ प्रेम से मिलती हैं। यज्ञशाला में जाने से उन्हें पता चला कि यहाँ शंकर जी की निंदा की गई है। यज्ञ में सब देवताओं के आसन हैं, पर शंकर जी का अपमान करके उन्हें न तो बुलाया, न ही आसन रखा है। यह सब देखकर वे वहाँ उपस्थित सभी मुनियों, देवताओं, अपने पिता को शिव की महिमा बताती हैं व शिव निंदा का फल भुगतने की चेतावनी देती हैं। वे सोचती हैं कि हमारा संबंध इन पिता से शरीर के कारण ही है, इसलिये शरीर त्याग का संकल्प लेती हैं। शंकर जी का स्मरण करके योग की अग्नि में अपने शरीर को भस्म कर लेती हैं। यज्ञ में हाहाकार मच जाता है। शंकर जी कुपित होकर वीरभद्र को भेजते हैं, जो सबको दण्ड देते हैं।

पिता के घर पहुँची, स्वागत नहीं हुआ

पिता भवन जब गईं भवानी। दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी ॥63:1॥

पिता भवन जब गईं भवानी = जब सतीजी पिताजी के घर जाती हैं, *दच्छ त्रास* = दक्ष के डर से, *काहुँ न सनमानी* = किसी ने उनसे बात नहीं की।

कैलास से विदा होकर सती जी दक्ष के घर पहुँची। वहाँ पर सब को पता था कि दक्ष का शंकर जी से वैर है। दक्ष के भय के कारण किसी ने सती से बात नहीं की। कोई घर आता है तो उसका सम्मान करते हैं, ठहरने का स्थान आदि दिखलाते हैं, परंतु सती को ऐसा कोई सम्मान नहीं मिला। उन्हें यहीं से शंका हो गई क्या बात है? हमको कोई पूछ क्यों नहीं रहा है?

माँ प्रेम से मिलीं, बहनें व्यंग्यात्मक मुस्कान के साथ

सादर भलेहिं मिली एक माता। भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता ॥63:2॥

सादर भलेहिं मिली एक माता = केवल माँ ही आदर के साथ मिलीं, *भगिनीं* = बहनें, *मिलीं बहुत मुसुकाता* = बहुत मुस्कुराती हुई मिलीं।

सती जी फिर माँ के पास पहुँची, आदर के साथ, भलाई के साथ केवल माता ही मिलीं। माता निडर थीं, उनका नाम प्रसूती था, वे मनु शतरूपा की पुत्री थीं। माँ ने कहा आ गई तो अच्छा किया। सती की 23 बहने थीं वे सब व्यंग्यात्मक मुस्कान के साथ मिलीं। मानो एक प्रकार से अपमान करके कह रही हों कि ये बिना बुलाये ही आ गयी हैं। समाज में आज भी इस प्रकार की घटनायें होती रहती हैं।

दक्ष ने कुशल तो पूछी नहीं, पर क्रोध से देखा

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ॥63:3॥

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता = दक्ष ने तो उनकी कुशल तक नहीं पूछी, *सतिहि बिलोकि* = सतीजी को देखकर, *जरे सब गाता* = दक्ष के सब अंग जल उठे यानि वे क्रोधित हो गये।

दक्ष जब सामने पड़े तो उन्होंने सती से कुशल भी नहीं पूछी। तिरछी आँखों से सती की तरफ ऐसे देखा कि जैसे कह रहे हों कि तुम बिना बुलाये कैसे आ गई? उनका रौद्र रूप देखकर सती समझ गयीं कि पिता हमसे नाराज हो गये हैं।

यज्ञ में शंकर जी का भाग न देखकर अपमान समझीं

सतीं जाइ देखेउ तब जागा। कतहुँ न दीख संभु कर भागा ॥63:4॥
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ ॥63:5॥

सतीं जाइ देखेउ तब जागा = जब सती ने जाकर यज्ञ देखा, *कतहुँ न दीख* = कहीं भी दिखाई नहीं दिया, *संभु कर भागा* = शंकर जी का भाग, *तब चित चढ़ेउ* = तब उनकी समझ में आया, *जो संकर कहेऊ* = जो शंकर जी ने कहा था, *प्रभु अपमानु समुझि* = अपने स्वामी का अपमान समझकर, *उर दहेऊ* = हृदय जल उठा।

दक्ष के घर के मैदान में जहाँ यज्ञशाला बनाई गई थी, सती वहाँ पहुँची कि यज्ञ भगवान के दर्शन कर लें। वहाँ देखा कि ब्रह्मा व विष्णु के यज्ञ भाग रखे हैं, अन्य सब देवता आये हुए हैं, उन्हें अपना-अपना भाग प्राप्त हुआ है। परंतु शंकर जी की गिनती दक्ष ने देवताओं में की ही नहीं है, उनका यज्ञ में कोई भाग भी नहीं रखा गया है। यह देखकर शंकर जी ने वैर वाली जो बात कही थी वह अब समझ में आयी। अपने स्वामी का यज्ञ में अपमान देखकर बहुत दु:ख हुआ।

शंकर जी के परित्याग से भी बड़ा दुःख यहाँ लगा

पाछिल दुखु न हृदयँ अस ब्यापा। जस यह भयउ महा परितापा ॥63:6॥
जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सब तें कठिन जाति अवमाना ॥63:7॥

पाछिल दुखु = पिछला दु:ख, *न हृदयँ अस ब्यापा* = मन में इतना नहीं हुआ था, *जस यह भयउ महा परितापा* = जितना महान दु:ख इस समय हुआ, *जद्यपि जग दारुन दुख नाना* = यद्यपि संसार में अनेक प्रकार के दु:ख हैं, *सब तें कठिन* = सबसे कठिन, *जाति अवमाना* = जाति का अपमान है।

याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जी को कथा सुनाते हुए समझाते हैं कि पति के परित्याग किये जाने का उतना दु:ख सती को नहीं हुआ था, जितना यहाँ पर शंकर जी

का अपमान देखकर हुआ। यद्यपि संसार में बहुत प्रकार के भीषण दु:ख होते हैं परंतु सबसे बड़ा दु:ख तब है जब अपनी जाति के लोग बैठे हों और उस सभा में व्यक्ति का अपमान कर दिया जाये। यहाँ पर सब देवता एकत्र हैं और देवताओं की जाति के बीच में यह अपमान बहुत दु:खदायी है।

सती जी को बहुत क्रोध आया, वे चिल्लाकर बोलीं

समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। बहु बिधि जननीं कीन्ह प्रबोधा ॥63:8॥

सिव अपमानु न जाइ सहि हृदयँ न होइ प्रबोध ।
सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध ॥दोहा 63॥

समुझि सो सतिहि = यह समझकर सती जी को, *भयउ अति क्रोधा* = बहुत अधिक क्रोध आ गया, *बहु बिधि* = अनेक प्रकार से, *जननीं कीन्ह प्रबोधा* = माँ ने उन्हें समझाया।
सिव अपमानु न जाइ सहि = परंतु उनसे शिव जी का अपमान सहा नहीं गया, *हृदयँ न होइ प्रबोध* = मन में सांत्वना नहीं हो रही थी, *सकल सभहि* = सारी सभा को, *हठि हटकि तब* = तब हठपूर्वक डाँटकर, *बोलीं बचन सक्रोध* = क्रोध भरे बचन बोलीं।

दक्ष के घर में हुए अपमान से सती को दु:ख तो हुआ ही, मुख्य रूप से क्रोध आया। क्रोध में वे बड़बड़ाने लगीं तो माँ ने उन्हें बहुत प्रकार से शांत करने की, समझाने की कोशिश की परन्तु सांत्वना नहीं मिली। शंकर जी का अपमान देखकर सती का हृदय बहुत जल रहा था। यज्ञशाला के सभी देवताओं को संबोधित करके सतीजी बड़े जोर से चिल्लाकर क्रोधपूर्वक बोलने लगीं।

शिव-निंदा का फल सबको मिलेगा, पिता भी पछतायेंगे

सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। कही सुनी जिन्ह संकर निंदा ॥64:1॥
सो फलु तुरत लहब सब काहूँ। भली भाँति पछिताब पिताहूँ ॥64:2॥

सुनहु सभासद सकल मुनिंदा = हे सभासदों और सब मुनीश्वरों सुनो, *कही सुनी जिन्ह संकर निंदा* = जिन लोगों ने यहाँ शिव जी की निंदा कही है या

सुनी है, *सो फलु* = उसका फल, *तुरत लहब* = तुरंत ही मिलेगा, *सब काहूँ* = सभी लोगों को, *भली भाँति पछिताब पिताहूँ* = और मेरे पिता भी पछतायेंगे।

यज्ञस्थल में जाने पर सती जी को पता चला कि यहाँ पर उनके पिता दक्ष ने शंकर जी की निंदा की है व उनमें अनेक दोष बताकर शिव जी का स्थान हटा दिया है। वहाँ बैठे मुनियों ने भी दक्ष का समर्थन कर दिया है। इस प्रकार वहाँ पर शंकर जी की निंदा करने वाले व सुनने वाले दोनों ही प्रकार के लोग थे। सतीजी क्रोध में तिरस्कार पूर्वक उन सभी को संबोधित करते हुए कहती हैं कि सभी मुनियों व सभासदों सुनो, जिन लोगों ने यहाँ पर शंकर जी की निंदा की है या सुनी है उनको उसका परिणाम तुरंत भोगना पड़ेगा। और मेरे पिता भी बाद में पछतायेंगे।

अपराधी का समर्थन करने वाला भी अपराधी

इस सभा में मुनि लोग थे जो बहुत ज्ञानी व विचारवान होते हैं। इसी प्रकार वहाँ पर देवता थे जो गुणी थे। पर ये सब ऐसा कार्य कर रहे थे जिससे दक्ष इनके अनुकूल रहे। मुनि चाहते हैं कि हमें यज्ञ में आदर मिले और देवता चाहते हैं आहुतियाँ। इस प्रलोभन में ये सब दक्ष की अनीतिपूर्वक, गलत बात का मौन समर्थन करते हैं। इसलिये सती उपस्थित सभी लोगों को फल भुगतने की बात कहती हैं। मुनियों को सम्मानपूर्वक 'मुनीन्द' न कहकर तिरस्कार से 'मुनिंदा' कहती हैं।

संतों या भगवान की निंदा न करें न सुनें

संत संभु श्रीपति अपबादा। सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा ॥64:3॥
काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूदि न त चलिअ पराई ॥64:4॥

संत = संतों की, *संभु* = शिव जी की, *श्रीपति* = लक्ष्मीपति विष्णु जी की, *अपबादा* = निंदा, *सुनिअ जहाँ* = जहाँ पर सुनी जाये, *तहँ असि मरजादा* = वहाँ ऐसा नियम है कि, *काटिअ तासु जीभ* = उसकी जीभ काट ली जाये, *जो बसाई* = यदि अपना वश चले तो, *श्रवन मूदि न* = नहीं तो कान बंद करके, *त चलिअ पराई* = वहाँ से भाग जाये।

यहाँ पर सती जी नीति की बात कहती हैं। जहाँ पर भी कोई संत की या शिव जी की या विष्णु जी की निंदा करता है या उन्हें दोष देता है तो यह नियम है

कि यदि आपका वश चले तो निंदा करने वाले की जीभ काट दें। यदि उसके ऊपर आपका बस न चले, वह बहुत शक्तिशाली हो तो तुरंत अपने कानों को बंद करके वहाँ से चले जायें। यहाँ पर शिक्षा है कि अपनी निंदा तो आप सुनिये पर संत की या भगवान की निंदा मत सुनिये। आध्यात्मिक मार्ग में चलने वाले साधक को तो किसी की निंदा न करनी चाहिये न सुननी चाहिये।

निंदा में पाप का क्रम

साधारण जीव को मारना भी हत्या है, पर जैसे-जैसे जीव उच्चतम शरीरधारी होगा उसको मारने का पाप अधिक है। मनुष्य को मारना बड़ा पाप है। मनुष्यों में भी सदाचारी, धर्मात्मा, परोपकरी को मारना और बड़ा पाप है। ज्ञानी को मारना और भी बड़ा पाप है। इसी प्रकार साधारण मनुष्य की निंदा भी पाप है। पर संत, शंकर जी, विष्णु जी की निंदा महापाप है।

शंकर जी की निंदा न करने के सती जी पाँच कारण कहती हैं

जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी ॥64:5॥

जगदातमा = संपूर्ण जगत की आत्मा है, *महेसु* = देवताओं के देवता, *पुरारी* = जो त्रिपुर दैत्य को मारने वाले हैं, *जगत जनक* = वे संसार के पिता हैं, *सब के हितकारी* = वे सबका हित करने वाले हैं।

शंकर जी की निंदा क्यों नहीं करें इसके लिये सती शंकर जी के 5 लक्षण बताती हैं:

1. सबकी आत्मा हैं– शंकर जी सबकी आत्मा हैं। जब सबकी आत्मा हैं तो निंदा करने वाले की भी आत्मा है, निंदा करके वह अपनी ही आत्मा की निंदा करता है। इसलिये वह मूर्ख है।
2. महेश हैं– यानि महा-ईश, सब देवताओं के देवता हैं। इसलिये भी उनकी निंदा न करें।
3. त्रिपुरारि हैं– त्रिपुरासुर बहुत ही शक्तिशाली राक्षस था, सब देवताओं ने कोशिश की पर उसे मार न सके। सब देवताओं ने शंकर जी से उसके वध की प्रार्थना की। शंकर जी ने उसका वध करके सब देवताओं को उसके त्रास से मुक्ति दिलायी इसलिये वे त्रिपुरारि भी कहलाते हैं। यही देवता अब शंकर जी की निंदा सुन रहे हैं।

4. जगत पिता– शंकर जी सारे जगत के पिता हैं। अपने पिता की निंदा न करें।
5. वे सबका हित करने वाले हैं। अपने हितैषी की निंदा न करें।

पिता मंदमति हैं इसलिये शंकर जी की निंदा की है

पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही ॥64:6॥

पिता मंदमति = मेरे पिता मन्दबुद्धि हैं, *निंदत तेही* = इसलिये शिव जी की निंदा करते हैं, *दच्छ सुक्र* = दक्ष के शुक्र से ही, *संभव यह देही* = मेरा यह शरीर उत्पन्न हुआ है।

हमारे पिता को ऐसे महान् शंकर जी के गुण न दिखकर दोष दिख रहे हैं इसलिये वे मंदमति हैं। शंकर जी में दोष नहीं है, दक्ष फिर भी उनमें दोष देख रहे हैं। मेरे पिता ने बहुत बड़ा अपराध किया है।

पिता दक्ष से संबंध तो मात्र शरीर से ही है

सती जी कहती हैं कि दक्ष के शुक्र से ही इस शरीर की प्राप्ति हुई है। अत: दक्ष से संबंध शरीर का है। यह पिता भाव शरीर के कारण ही है, अन्यथा ये हमारे पिता नहीं हैं, यदि शरीर छोड़ देंगे तो इनसे हमारा संबंध समाप्त हो जायेगा। जब तक शरीर है तब तक इन्हें पिता मानना पड़ता है।

शरीर के माता-पिता हैं जीव के नहीं

यहाँ पर संकेत दे देते हैं कि सारे संबंध शरीर के कारण ही हैं। जीव के पिता कोई पुरुष नहीं हैं जीव की माता कोई स्त्री नहीं है, ये सब तो शरीर के ही माता-पिता हैं। शरीरधारण किये हैं तो सब संबंधों का निर्वाह करना अनिवार्य है।

शंकर जी का स्मरण कर शरीर त्याग का निर्णय लेती हैं

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू ॥64:7॥

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू = इसलिये मैं अपने इस शरीर का तुरंत त्याग कर दूँगी, *उर धरि* = हृदय में शिव जी को धारण करके, *चंद्रमौलि* = जिनके ललाट पर चन्द्रमा है, *बृषकेतू* = और जो धर्म का ध्वज धारण किये हैं।

सती जी कहती हैं कि अपने पिता दक्ष से संबंध समाप्त करने के लिये, मैं धर्मध्वज शंकर जी जो ललाट में चन्द्रमा धारण किये हैं को हृदय में स्थापित कर यह शरीर त्याग दूँगी। सती ने सोचा कि हम पिता का दिया हुआ शरीर धारण करे रहें और पिता का त्याग कर दें यह भी उचित नहीं, अत: शरीर ही त्याग दो।

योग की अग्नि में सती जी शरीर भस्म कर लेती हैं

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा ॥64:8॥

अस कहि = ऐसा कहकर, *जोग अगिनि* = योग की अग्नि में, *तनु जारा* = अपना शरीर भस्म कर दिया, *भयउ सकल मख हाहाकारा* = पूरी यज्ञशाला में हाहाकार मच गया।

यज्ञशाला में ही सती जी पद्मासन में बैठ गयीं। अपने शरीर के सारे प्राणों को संचित करके प्राण व अपान को नाभि कुंड में ले गयीं। अपान वायु से दोनों को मस्तक के भ्रूमध्य भाग में स्थापित किया। जब सारे शरीर के प्राण भ्रूमध्य भाग में एकत्र हो गये फिर अग्नि का स्मरण किया। इस अवस्था में व्यक्ति जिस तत्त्व का स्मरण करेगा वही तत्त्व प्रधान हो जायेगा। पंचतत्त्व शरीर में ही है, अग्नि तत्त्व भी विद्यमान है। अग्नि की प्रधानता हो गयी। उस अग्नि तत्त्व ने सारे शरीर को जला दिया। इस प्रकार योग के द्वारा उत्पन्न की हुई अग्नि योगाग्नि कहलाती है।

सती जी परमात्मा की परमशक्ति के रूप में विद्यमान रहीं। पिता का दिया हुआ भौतिक शरीर ही समाप्त हुआ।

यज्ञ में हाहाकार मच गया

जिस यज्ञशाला में कोई अपना शरीर त्याग दे वह यज्ञ दूषित हो गया, खण्डित हो गया। सब चिल्लाने लगे, यह क्या हो गया? सब चिंतित भी हो गये क्योंकि सती जी ने कहा था कि सबको परिणाम भी भुगतना होगा। सब सोचने लगे कि दक्ष अब हमें बचा पायेंगे कि नहीं।

शंकर जी के गण यज्ञ विध्वंस करने लगे

सती मरनु सुनि संभु गन लगे करन मख खीस ।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस ॥दोहा 64॥

सती मरनु सुनि = सती जी का मरण सुन करके, *संभु गन* = शिव जी के गण, *लगे करन मख खीस* = यज्ञ का विध्वंस करने लगे, *जग्य बिधंस बिलोकि* = यज्ञ विध्वंस होते हुए देखकर, *भृगु मुनीस* = मुनीश्वर भृगु ने, *रच्छा कीन्हि* = यज्ञ की रक्षा की।

शंकर जी के गण जिन्हें शंकर जी ने सती के साथ भेजा था, वे सब यहीं थे, उन्होंने जब सुना कि सती जी ने यज्ञशाला में योगाग्नि से अपना शरीर भस्म कर दिया है तो वे यज्ञ विध्वंस करने में लग गये। यज्ञ को विध्वंस होते देखकर मुनिराज भृगु यज्ञ की रक्षा करने की कोशिश करने लगे।

वीरभद्र यज्ञ विध्वंस कर सबको दण्ड देते हैं

समाचार सब संकर पाए। बीरभद्रु करि कोप पठाए ॥65:1॥
जग्य बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा। सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा ॥65:2॥
भै जगबिदित दच्छ गति सोई। जसि कछु संभु बिमुख कै होई ॥65:3॥
यह इतिहास सकल जग जानी। ताते मैं संक्षेप बखानी ॥65:4॥

समाचार सब संकर पाए = ये सब समाचार शंकर जी को मिले, *बीरभद्रु* = वीरभद्र को, *करि कोप* = गुस्सा होकर, *पठाए* = भेजा, *जग्य बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा* = उसने जाकर यज्ञ को विध्वंस कर दिया, *सकल सुरन्ह* = सभी देवताओं को, *बिधिवत* = यथोचित, *फलु दीन्हा* = दण्ड दिया, *भै जगबिदित दच्छ गति सोई* = दक्ष की संसार में प्रसिद्ध वही गति हुई, *जसि कछु संभु बिमुख कै होई* = जो शिव द्रोही की हुआ करती है, *यह इतिहास सकल जग जानी* = यह इतिहास सारा संसार जानता है, *ताते मैं संक्षेप बखानी* = इसलिये मैंने संक्षेप में वर्णन किया है।

भागवत में यह कथा विस्तार से आती है इसलिये तुलसीदास जी कहते हैं कि हमने संक्षेप में कह दी सब जानते हैं इस कथा को। सती के साथ यज्ञ में हो रही यह सब घटना देखकर नारदजी कैलास पर्वत जाकर शंकर जी को सम्पूर्ण बात बताते हैं कि सती जी ने शरीर भस्म कर दिया, आपके गण यज्ञ विध्वंस करने लगे तो भृगु मुनि ने रक्षा की अब वे दोबारा यज्ञ करने जा रहे हैं। ये सब बातें सुनकर शंकर जी को तुरन्त क्रोध आ गया और उन्होंने वीरभद्र को भेजा

जिसने वहाँ जाकर सम्पूर्ण रूप से यज्ञ का विध्वंस कर दिया। जितने देवता आदि थे उन्हें मारा तो नहीं जा सकता था, उन्हें वहाँ से भगा दिया यही उनके लिये यथोचित दण्ड हो गया। जैसी गति शंकर जी का विरोध करने वाले की होती है वैसे ही गति दक्ष की हुई। भगवान का विरोध अहंकारी ही करता है। दक्ष भी अहंकार के कारण ही शिव जी का विरोध करते थे। अहंकारी व्यक्ति की दुर्गति होती ही है। अहंकार के कारण ही दक्ष को अपना सिर खोना पड़ा, बाद में बकरे का सिर लगाया गया।

सतीजी के चरित्र में दोष न देखें, यह लीला शिक्षा है

यह प्रसंग सती मोह कहलाता है। आगे तुलसीदास जी कहते हैं कि शंकर जी की शक्ति ही सती जी हैं। शंकर जी भी कहते हैं कि तुम नित्य ज्ञान स्वरूपा हो तुम्हें मोह हो ही नहीं सकता है। वास्तव में यह मोह की कथा सती की लीला ही है। इसमें यह शिक्षा है कि स्त्री यदि पति का कहना न मानकर गलत कार्य करेगी, उससे छिपाव करेगी या पुरुष भी उल्टे कार्य करेगा तो उसके परिणाम अच्छे नहीं होंगे। भगवान जब लीला करते हैं तो ऐसा लगता है मानो वे भी हमारे जैसे साधारण मनुष्य हों। पर वे सदैव सत् चित आनंद स्वरूप में ही रहते हैं।

एक योगी की महासमाधि

महान् योगी परमहंस सत्यानंद जी माता सती की चिताभूमि रिखिया में वर्ष 1989 से 2009 तक, 20 वर्ष रहे। उन्होंने 05 दिसंबर, 2009 की मध्यरात्रि को रिखिया में अपने शरीर का त्याग ध्यान की अवस्था में स्वेच्छा से किया जैसे माता सती ने किया था। वे योगी की भाँति गये, पद्मासन में ध्यानमग्न होकर। जैसे उन्होंने वर्षों पहले कहा था– एक गहरी श्वास लूँगा, प्राणों को खींचूँगा और हरि ॐ तत्सत्।

स्वामी जी ने खुद कहा था कि 'जब मैं शरीर छोड़ूँगा, मेरी यात्रा सरकारी बस से नहीं होगी। मैं तो फर्स्ट क्लास जेट प्लेन से सीधा जाऊँगा, कोई स्टॉप नहीं। और हाँ रिटर्न टिकिट लेकर जाऊँगा, क्योंकि मुझे यहाँ वापस आना है। मुझे न तो राज्य चाहिये न ही ऐशो आराम। मुझे जन्म-मृत्यु से भी मुक्ति नहीं चाहिये। मैं यहाँ बार-बार वापस आना चाहता हूँ ताकि मैं दीन-दु:खियों की मदद कर सकूँ।'

10. हिमाचल के घर पार्वती रूप में जन्म

(दोहा 65 से 66)

माता सती ने योग से अपने शरीर का त्याग करते समय यह भाव रखा कि फिर से जन्म हो, और शंकर जी के चरणों में प्रेम बना रहे। इसलिये उनका पुनर्जन्म हिमालय पर्वत के अधिष्ठाता देवता हिमाचल के घर होता है। रामचरितमानस में पुनर्जन्म व कर्म के सिद्धांत का भी वर्णन किया गया है। पुण्यात्मा के जन्म लेते ही हिमाचल के यहाँ सुख, समृद्धि व मंगल छा जाता है। पर्वत की पुत्री होने के कारण उन्हें पार्वती कहते हैं। जब पार्वती किशोरी अवस्था तक बड़ी हो गई तब नारद जी आते हैं। हिमाचल उनका बहुत स्वागत व आदर करते हैं।

पार्वती के रूप में हिमाचल के घर जन्म

सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा ॥65:5॥
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जनमीं पारबती तनु पाई ॥65:6॥

सतीं मरत= सतीजी ने मरते समय, *हरि सन*= राम जी से, *बरु मागा*= वरदान माँगा कि, *जनम जनम सिव पद अनुरागा*= मेरा प्रत्येक जन्म में शिव जी के चरणों में प्रेम रहे, *तेहि कारन*= इसी कारण से, *हिमगिरि गृह जाई*= हिमाचल के घर में, *जनमीं*= जन्म लिया, *पारबती तनु पाई*= उन्हें पार्वती का शरीर प्राप्त हुआ।

शरीर छोड़ते समय सती जी ने राम जी से वरदान माँगा कि हमारा जन्म होता रहे और प्रत्येक जन्म में शंकर जी के चरणों में हमारा प्रेम बना रहे। शरीर छोड़ते समय जो भाव होता है, उसी के अनुसार जीव की गति होती है। तुलसीदास जी कहते हैं कि इसी कारण सती जी ने हिमाचल के घर जाकर जन्म लिया और पर्वत पुत्री होने के कारण वे पार्वती कहलाईं। हिमालय पर्वत है, वह पत्थर है, उनके यहाँ कैसे जन्म ले सकती हैं? इसे इस प्रकार समझें कि हिमालय पर्वत के अधिष्ठाता देवता का नाम हिमाचल है। उन्हीं के यहाँ जन्म हुआ।

उमा के जन्म से सुख-समृद्धि छा गई

जब तें उमा सैल गृह जाईं। सकल सिद्धि संपति तहँ छाईं ॥65:7॥

जब तें उमा सैल गृह = जब से पार्वती जी ने हिमाचल के घर, *जाईं* = जन्म लिया, *सकल सिद्धि संपति तहँ छाईं* = वहाँ सारी सिद्धियाँ व संपत्तियाँ छा गईं।

यहाँ पर यह बतलाया गया है कि पुण्यात्मा जीव जहाँ पर जाते हैं वहाँ सुख समृद्धि की वृद्धि होती है।

मुनियों ने आश्रम बनाये, उन्हें उचित स्थान दिया गया

जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे। उचित बास हिम भूधर दीन्हे ॥65:8॥

जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे = मुनियों ने जहाँ-तहाँ सुन्दर आश्रम बना लिये, *उचित बास* = रहने के लिये उचित स्थान, *हिम भूधर दीन्हे* = बर्फ के पर्वत हिमाचल ने प्रदान किया।

बर्फ से ढके रहने वाले हिमालय पर्वत ने मुनियों को रहने के लिये उनकी आवश्यकता के अनुसार उचित स्थान दिया। जैसे यज्ञ करने वालों को ऐसा स्थान दिया जिससे उन्हें यज्ञ की सामग्री आसानी से प्राप्त होती रहे। जो आत्म केन्द्रित होकर साधना करने वाले थे, उन्हें छोटा व एकांत स्थान दे दिया। जो मुनि लोक कल्याण का कार्य करने वाले थे, शिष्यों का समुदाय था, उन्हें बड़ा स्थान दिया।

वृक्ष सदा फूल-फल व पर्वत मणियाँ देने लगे

सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति ।
प्रगटीं सुंदर सैल पर मनि आकर बहु भाँति ॥दोहा 65॥

सदा सुमन फल सहित = सदा फूल व फल से भरे रहने लगे, *सब द्रुम* = सभी वृक्ष, *नव नाना जाति* = जो नये-नये व अनेकों प्रकार के थे, *प्रगटीं* = प्रकट हो गयीं, *सुंदर सैल पर* = उस सुंदर पर्वत पर, *मनि आकर बहु भाँति* = बहुत प्रकार के मणियों की खानें।

वृक्ष बारह महीने फल व फूल देने लगे। तब तो मुनियों को खाने के लिये फल व पूजा के लिये पुष्प मिलेंगे। पर्वत के ऊपर मणियों की खानें प्रकट हो गईं।

मणियाँ छिपी रहती हैं, पार्वती जी के जन्म के बाद वे प्रकट हो गईं। हिमालय का भवन भी सुंदर हो गया, सजावट सुंदर हो गयी। जैसे ज्ञान अपने अंदर छिपा रहता है, अनुकूल वातावरण व सत्संग से प्रकट हो जाता है।

नदियों में पवित्र जल, सब परस्पर प्रेम से रहने लगे

सरिता सब पुनीत जलु बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं ॥66:1॥
सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा ॥66:2॥

सरिता सब पुनीत जलु बहहीं = सारी नदियों में पवित्र जल बहने लगा, *खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं* = पक्षी; पशु; भौरें सभी सुखी रहने लगे, *सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा* = सभी प्राणियों ने स्वाभाविक वैर भाव छोड़ दिया, *गिरि पर सकल करहिं अनुरागा* = पर्वत पर सब लोग प्रेम से रहने लगे।

नदियों में पवित्र जल बहने लगा। पक्षी, पशु, भौरें व सब प्राणियों ने सहज वैर त्याग दिया। ये सब आपस में बहुत प्रेम से रहने लगे।

हिमालय का घर राम भक्त के समान सुंदर हो गया

सोह सैल गिरिजा गृह आएँ। जिमि जनु राम भगति के पाएँ ॥66:3॥
नित नूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू ॥66:4॥

सोह सैल गिरिजा गृह आएँ = पार्वती जी के जन्म लेने से पर्वत ऐसा सुंदर लग रहा है, *जिमि जनु राम भगति के पाएँ* = जैसे कोई राम भक्ति पाकर सुंदर लगे, *नित नूतन मंगल गृह तासू* = हिमाचल के घर नित्य नये-नये मंगल कार्य हो रहे हैं, *ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू* = ब्रह्मा इत्यादि देवता जिसका यश गाते हैं।

पार्वती जी ने शंकर जी की भक्ति के लिये ही अवतार लिया है। वे इस समय भक्ति स्वरूपा हैं। उनके आने से आसपास का वातावरण भी भक्तिमय बन गया। इसलिये कहते हैं जैसे राम भक्ति पाने से व्यक्ति सुंदर हो जाता है उसी प्रकार पार्वती जी के आने से पूरा हिमालय पर्वत ही शोभायमान हो गया। वहाँ नित्य मंगल कार्य होने लगे। ब्रह्मा इत्यादि देवता इनका यश गाने लगे।

नारद जी को पता चला, वे अचानक आ जाते हैं

नारद समाचार सब पाए। कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए ॥66:5॥

नारद समाचार सब पाए = जब नारदजी ने सब समाचार सुना, *कौतुकहीं* = कौतूहलवश, *गिरि गेह सिधाए* = हिमाचल के घर पधार गये।

पार्वती जी का जन्म हुआ, बाल्यकाल हुआ और जब वे किशोरी अवस्था तक पहुँच गयीं तब हिमालय पर्वत की घटनायें नारद जी को पता चलीं। उन्हें पता चला कि हिमालय में मणि की खानें प्रकट हुईं, वातावरण भक्ति से परिपूर्ण हो गया है, किसी में वैर भाव नहीं है। तब ध्यान करके देखा तो समझ गये कि हिमाचल के यहाँ सती ने पार्वती के रूप में जन्म ले लिया है। वे बिना किसी प्रयोजन के घूमते-घूमते हिमाचल के घर पहुँच जाते हैं।

हिमाचल, नारद जी का बहुत सम्मान व आदर करते हैं

सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि बर आसनु दीन्हा ॥66:6॥
नारि सहित मुनि पद सिरु नावा। चरन सलिल सबु भवनु सिंचावा ॥66:7॥
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना ॥66:8॥

सैलराज बड़ आदर कीन्हा = पर्वतराज ने नारद जी का बड़ा आदर किया, *पद पखारि* = चरण धोकर, *बर आसनु दीन्हा* = उत्तम आसन में बैठाया, *नारि सहित* = अपनी स्त्री सहित, *मुनि पद सिरु नावा* = मुनि के चरणों में सिर नवाया, *चरन सलिल* = उनके चरणोदक को, *सबु भवनु सिंचावा* = पूरे घर में छिड़कवाया, *निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना* = हिमाचल ने अपने सौभाग्य का बहुत वर्णन किया, *सुता बोलि* = अपनी पुत्री को बुलाकर, *मेली मुनि चरना* = मुनि के चरणों में प्रणाम करवाया।

पर्वतराज हिमालय नारद जी का बहुत आदर करते हैं, उन्हें ऊँचे आसन पर बैठाते हैं। हिमाचल की पत्नी का नाम मैना था। वे अपनी पत्नी सहित नारद जी के चरणों में सिर रखकर प्रणाम करते हैं। नारद जी के चरणों को थाली में रखकर जल से धोते हैं। इस जल को पूरे घर में इस भाव से छिड़कवाते हैं कि पूरा वातावरण पवित्र हो जायेगा। ये सब आदर-सत्कार करने के बाद वाणी से

सम्मान करते हैं। कहते हैं 'हम बहुत भाग्यशाली हैं कि आप हमारे घर पधारे हैं, हमारे ऊपर आपकी बहुत कृपा है।'

पार्वती को बुलाकर नारद जी के चरणों प्रणाम करवाते हैं

मुनि का स्वयं सम्मान करने के साथ ही पत्नी व अपने बच्चों से भी सम्मान करवाना भारतीय संस्कृति है। हिमाचल, पुत्री पार्वती को बुलवाकर कहते हैं कि ये नारद मुनि हैं, इनके चरणों में प्रणाम करो। पार्वती पूरे आदर के साथ प्रणाम करती हैं।

11. नारद जी कहते हैं– शंकर ही वर होंगे, पार्वती तप करें

(दोहा 67 से 70)

इस प्रसंग में तुलसीदास जी, नारद जी का ज्योतिषी व पार्वती जी के गुरु रूप में वर्णन करते हैं। पर्वतराज जब पार्वती का भविष्य पूछते हैं तो नारद जी कहते हैं कि इस कन्या में तो गुण ही गुण हैं, 9 तरह के दोष तो इसके वर में हैं। पार्वती जी दोषों को सुनकर तुरंत समझ जाती हैं कि ये तो शंकर जी के गुण हैं, मेरे वर तो शंकर ही होंगे पर वे भारतीय संस्कृति का पालन करते हुए चुप रहती हैं। नारद जी बाद में समझ पाते हैं कि ये तो जगदंबा का अवतार हैं। शंकर ही उनके वर होंगे। हिमाचल, वर के दोषों के निवारण का उपाय पूछते हैं, नारदजी कहते हैं कि शंकर जी को वर रूप में पाने के लिये ये तप करें। जो दोष बताये गये हैं वे सब शंकर जी में हैं, पर वे इतने महान् हैं कि उनके दोषों का महत्त्व ही नहीं है। जैसे गुरु का कार्य है कि वह अपने शिष्य के अंदर भगवान के प्रति विश्वास उत्पन्न करे, उसे ठीक-ठीक ज्ञान कराये वैसे ही नारद जी, पार्वती जी को शंकर जी के प्रति एकनिष्ठ होकर साधना करने का उपदेश देकर चले जाते हैं।

हिमाचल, नारद जी से पार्वती का भविष्य पूछते हैं

त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सर्बत्र तुम्हारि ।
कहहु सुता के दोष गुन मुनिबर हृदयँ बिचारि ॥दोहा 66॥

त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह = आप तो तीनों कालों की सब बात जानने वाले हैं, *गति सर्बत्र तुम्हारि* = आप कहीं भी जा सकते हो, *कहहु सुता के दोष गुन* =

मेरी पुत्री के भविष्य की अच्छी व खराब बातें कहिये, *मुनिबर हृदयँ बिचारि* = हे मुनि अपने हृदय में विचार करके।

नारद जी के कई रूप हैं। वे भक्त हैं, ज्योतिषी हैं, देवताओं के समाचार संवाहक हैं। यहाँ पर उनके ज्योतिषी रूप का वर्णन तुलसीदास जी करते हैं। हिमाचल कहते हैं हे मुनिवर! मेरी पुत्री का भविष्य बताइये।

नारद जी हँसकर, प्रेम से, गूढ़ शब्दों में भविष्य बताते हैं

कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी ॥67:1॥

कह मुनि बिहसि = नारद जी हँसकर बोले, *गूढ़ मृदु बानी* = कोमल पर गूढ़ वचन, *सुता तुम्हारि सकल गुन खानी* = तुम्हारी पुत्री में सभी गुण हैं।

नारद जी, हिमाचल की बात सुनकर हँसते हैं, फिर बहुत कोमल वाणी बोलते हैं। गूढ़ वचन मायने जब गंभीरता से विचार करो तभी उसका अर्थ पता चले। शब्दों को देखने से अर्थ पता न चले। कहते हैं– हे हिमाचल, तुम्हारी पुत्री में तो गुण ही गुण हैं।

नारद जी कन्या के तीन गुण व तीन नाम बताते हैं

सुंदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी ॥67:2॥

सुंदर सहज सुसील सयानी = यह स्वभाव से ही सुंदर है, सुशील है व समझदार है, *नाम उमा अंबिका भवानी* = इसका नाम उमा, अंबिका व भवानी है।

कहते हैं इनमें तीन स्वाभाविक गुण हैं:

1. सहज सुंदर– सहज मायने बनावटी नहीं, मेकअप से नहीं, ये अपने आप सुंदर हैं। इनमें दिव्य सौंदर्य है।
2. सहज सुशील– जिस व्यक्ति के आंतरिक गुण विकसित हों उसी में बिना प्रयास के अपने आप सुशीलता आती है। सुंदरता स्थित है, शील उसका आचरण है, व्यवहार है।

3. सहज सयानी– सयानी मतलब ज्ञानवान। ये बहुत बुद्धिमान हैं। ऐसा मत समझो कि ये उम्र में छोटी हैं तो कुछ जानती नहीं हैं।
   फिर नारद जी भूत,वर्तमान व भविष्य को देखते हुए तीन नाम बताते हैं।
1. अंबिका– यह नाम प्राचीनकाल से चला आ रहा है।
2. उमा– वर्तमान में इनका नाम उमा है।
3. भवानी– शंकर जी से विवाह होने पर इनका नाम भवानी हो जायेगा।
   इस प्रकार नारद जी अपने त्रिकालज्ञ होने का परिचय देते हैं।

अचल सुहाग, पति को सदा प्रिय, माता-पिता का यश करेंगी

सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पिआरी ॥67:3॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि तें जसु पैहहिं पितु माता ॥67:4॥

सब लच्छन संपन्न कुमारी = यह कन्या सब लक्षणों से संपन्न है, *होइहि संतत पियहि पिआरी* = यह अपने पति को सदा प्रिय होगी, *सदा अचल एहि कर अहिवाता* = इसका सुहाग सदा अचल रहेगा, *एहि तें जसु पैहहिं पितु माता* = इससे इसके माता-पिता यश पायेंगे।

तुम्हारी पुत्री सर्वगुण संपन्न है। अपने पति को ये सदा प्रिय रहेंगी। पति से झगड़ा नहीं होगा। इनके पति दीर्घजीवी होंगे, कभी उनके मृत्यु होने की संभावना नहीं है। ये स्वयं तो गुणवान हैं ही, इनके गुणों का प्रभाव एक ओर तो पति पर पड़ेगा कि उसकी अकाल मृत्यु नहीं होगी, दूसरी ओर माता-पिता पर भी पड़ेगा कि वे यशस्वी होंगे।

पूजा के समय पार्वती जी के गुणों का स्मरण करें

होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं ॥67:5॥
एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा ॥67:6॥

होइहि पूज्य सकल जग माहीं = सारे संसार में इनकी पूजा होगी, *एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं* = इनकी सेवा से कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा, *एहि कर नामु सुमिरि* = इनके नाम का स्मरण करके, *संसारा त्रिय* = संसार में स्त्रियाँ, *चढ़िहहिं पतिब्रत* = पतिव्रत का पालन करेंगी, *असिधारा* = जो तलवार की धार के समान कठिन है।

नारद जी कहते हैं कि यह कन्या संसार में पूजनीय होगी। इनका स्मरण करने से, पूजा करने से कुछ भी पाना असंभव नहीं है। स्त्रियों के लिये तो ये आदर्श हैं, जो स्त्री इनका स्मरण करेगी उसके अंदर पतिव्रत धर्म पालन करने की योग्यता आ जायेगी। पार्वती जी की जब पूजा करें तो इनके गुणों का स्मरण करें, इन चौपाइयों को याद कर लें। जो व्यक्ति जिसकी पूजा करता है या आदर करता है उसी के गुण उसके अंदर आ जाते हैं।

नारद जी कहते हैं– कन्या के वर में 9 दोष हैं

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी ॥67:7॥
अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना ॥67:8॥

सैल = हे पर्वतराज, *सुलच्छन सुता तुम्हारी* = तुम्हारी पुत्री में तो सब अच्छे गुण हैं, *सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी* = अब इनके जो कुछ दोष हैं वे भी सुन लो, *अगुन अमान* = कन्या का वर गुणरहित व मान सम्मान रहित होगा, *मातु पितु हीना* = उसके माता-पिता नहीं होंगे, *उदासीन सब संसय छीना* = न तो वह कुछ करता होगा न ही उसे कोई अज्ञान होगा।

जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष ।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख ॥दोहा 67॥

जोगी जटिल = वह योगी व जटायें रखे होगा, *अकाम मन* = उसके मन में कामना नहीं होगी, *नगन अमंगल बेष* = वह वस्त्र नहीं पहनता होगा और उसका वेष भी अशुभकारी होगा, *अस स्वामी* = ऐसा पति, *एहि कहँ मिलिहि* = इस कन्या को मिलेगा, *परी हस्त असि रेख* = हाथ की रेखाओं में ऐसा ही लिखा है।

नारदजी कहते हैं– हे हिमाचल, तुमने पुत्री के गुण-दोष के बारे में पूछा था, तो इसमें गुण ही गुण हैं, जो कुछ दोष है वह इसके वर में है। हाथ की रेखायें देखकर नारद जी वर के 9 अवगुण बताते हैं।

1. अगुण– इसके पति में कोई गुण नहीं होगा।
2. अमान– उसकी कहीं पूछ-परख न होगी, मान सम्मान न होगा।
3. मातु-पितु हीना– यदि माता-पिता की मृत्यु हो गई हो तो ठीक है, पर इसके पति के माता-पिता का पता ही नहीं है। वंश व परंपरा ही नहीं है।

4. उदासीन– ऐसा पति जो कुछ करता न हो, उसकी कोई आमदनी न हो।
5. संशय छीना– जिसे मोह-माया ही न हो। व्यवहार में यह अवगुण है।
6. योगी– जिसका पति समाधि में ही बैठा रहे, योग ध्यान में ही लीन रहे उससे शादी करने से क्या फायदा।
7. जटाधारी– इनका पति जटायें रखेगा। मायने बाल लंबे होंगे पर तेल व कंघी न करके उनकी जटा बनाये रखेगा।
8. कामनारहित– जिसमें कोई कामना ही न हो तो संसार के लिये तो दुर्गुण है। ऐसे व्यक्ति के साथ विवाह का प्रयोजन ही नहीं है।
9. अमंगल वेष– जो वस्त्र न पहने। वेष अच्छा न हो। कहीं सर्प लटके हैं, तो शरीर में भभूति लपेट ली। बाघ का चमड़ा कमर में बाँध लिया।

वर के दोष सुनकर सब दुःखी पर पार्वती हर्षित

सुनि मुनि गिरा सत्य जियँ जानी। दुख दंपतिहि उमा हरषानी ॥68:1॥
नारदहूँ यह भेदु न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना ॥68:2॥

सुनि मुनि गिरा= नारद मुनि की वाणी सुनकर, *सत्य जियँ जानी*= हृदय में सत्य जानकर, *दुख दंपतिहि*= हिमाचल व मैना दुःखी हुए, *उमा हरषानी*= उमा को प्रसन्नता हुई, *नारदहूँ यह भेदु न जाना*= नारद जी भी इस रहस्य को नहीं समझ पाये, *दसा एक*= सबकी बाहरी दशा एक पर, *समुझब बिलगाना*= पर सबने अर्थ अलग-अलग लगाये।

सकल सखीं गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना ॥68:3॥
होइ न मृषा देवरिषि भाषा। उमा सो बचनु हृदयँ धरि राखा ॥68:4॥

सकल सखीं= सारी सखियाँ, *गिरिजा*= पार्वती जी, *गिरि मैना*= हिमाचल व उनकी पत्नी मैना, *पुलक सरीर*= सबके शरीर पुलकित थे, *भरे जल नैना*= आँखों में अश्रु आ गये, *होइ न मृषा देवरिषि भाषा*= देवर्षि नारद के वचन असत्य नहीं हो सकते, *उमा सो बचनु हृदयँ धरि राखा*= यह सोचकर उमा ने इन वचनों को मन में धारण कर लिया।

यह सब सुनकर परिवार के लोग दुःखी हो गये कि अरे! नारद जी यह आपने क्या बता दिया? नारद जी कहने लगे कि हम क्या करें, हाथ की रेखा में जो

लिखा है हमने बता दिया। प्रारब्ध इसका ऐसा है। इस रहस्य को अभी नारद जी भी नहीं समझ पाये। तुलसीदास जी कहते हैं कि वहाँ दो पक्ष हो गये, एक तरफ हिमाचल-मैना, परिवार के लोग व सखियाँ हैं तो दूसरी तरफ पार्वती जी हैं। नारद जी की बात असत्य नहीं हो सकती यह सोचकर प्रथम पक्ष दु:खी है तो उमा प्रसन्न होकर वर के दोषों को मन में बैठा लेती हैं।

दोषों को 9 गुण समझ शंकर जी के प्रति प्रेम, पर चुप रहीं

उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू ॥68:5॥
जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। सखी उछँग बैठी पुनि जाई ॥68:6॥

उपजेउ सिव पद कमल सनेहू = उन्हें शिव जी के चरण कमल में स्नेह उत्पन्न हो गया, *मिलन कठिन* = पर उनका मिलना कठिन है, *मन भा संदेहू* = मन में यह संदेह उत्पन्न हुआ, *जानि कुअवसरु* = समय ठीक न जानकर, *प्रीति दुराई* = प्रेम को छिपा लिया, *सखी उछँग* = सखी की गोद में, *बैठी पुनि जाई* = फिर से जाकर बैठ गयीं।

नारदजी ने वर के जो अवगुण बताये थे उन्हें सुनकर पार्वती जी समझ गयीं कि ये सब तो शंकर जी के गुण हैं। शंकर जी ही पति होंगे, इसलिये उनके मन में प्रेम उत्पन्न हो गया। पर अभी उनका मिलना कठिन है, इसलिये प्रेम प्रकट करने का यह सही समय नहीं है। वे प्रेम को मन में ही छिपाकर, सखी की गोद में जाकर बैठ जाती हैं।

पार्वती जी वर के दोषों को शंकर जी के गुण इस प्रकार समझती हैं:

1. अगुण– पार्वती ने इसे निर्गुण समझा। शंकर जी का यह लक्षण है।
2. अमान– अभिमान रहित, यह बहुत बड़ा गुण है।
3. मातु-पितु हीना– शंकर जी अजन्मा है, उनका यह गुण है।
4. उदासीन– निंदा-स्तुति में सम भाव रखने वाले हैं।
5. संशय छीना– उन्हें कोई भ्रम या अज्ञान नहीं है।
6. योगी– शंकर जी तो महान योगीराज हैं।
7. जटाधारी– शंकर जी की जटायें हैं।
8. कामनारहित– वे अपने आप में पूर्ण है, उन्हें सब कुछ प्राप्त है।
9. अमंगल वेष– सर्प लटके हैं, शरीर में भभूति लपटी है, बाघम्बर पहने हैं।

हिमाचल पूछते हैं– वर के दोष दूर हों, इसका उपाय बतायें

झूठि न होइ देवरिषि बानी। सोचहिं दंपति सखीं सयानी ॥68:7॥
उर धरि धीर कहइ गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिअ उपाऊ ॥68:8॥

झूठि न होइ देवरिषि बानी = देवर्षि की वाणी झूठी नहीं होगी, *सोचहिं दंपति सखीं सयानी* = यह सोचकर हिम, मैना व चतुर सखियाँ चिंता करने लगीं, *उर धरि धीर* = मन में धैर्य धारण करके, *कहइ गिरिराऊ* = पर्वतराज ने कहा, *कहहु नाथ का करिअ उपाऊ* = हे नारद जी अब उपाय बताओ क्या करें?

नारदजी की वाणी झूठी न होगी यह सोचकर हिम, मैना व सखियाँ चिंतित हो जाती हैं। पार्वती के पिता पर्वतराज हिमाचल मन में धैर्य धारण करके नारद जी से कहते हैं कि हे नाथ, इन दोषों को दूर करने का उपाय बतायें।

नारद जी कहते हैं प्रारब्ध बदल नहीं सकता, शिव से विवाह हो तो बात बन जायेगी

कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार ।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार ॥दोहा 68॥

कह मुनीस हिमवंत सुनु = नारद जी ने कहा हे हिमवान् सुनो, *जो बिधि लिखा लिलार* = विधाता ने माथे पर जो लिख दिया है उसको, *देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार* = देवता, दानव, मनुष्य, नाग या मुनि कोई मिटा नहीं सकते हैं।

तदपि एक मैं कहउँ उपाई। होइ करै जौं दैउ सहाई ॥69:1॥
जस बरु मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं। मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं ॥69:2॥

तदपि एक मैं कहउँ उपाई = तो भी एक उपाय मैं बताता हूँ, *होइ* = काम बन जायेगा, *करै जौं दैउ सहाई* = यदि देव भी सहायता कर दें, *जस बरु मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं* = तुम लोगों से जिस प्रकार के वर का वर्णन किया है, *मिलिहि उमहि* = उमा का वर तो वैसा ही रहेगा, *तस संसय नाहीं* = उसमें कोई संदेह नहीं है।

जे जे बर के दोष बखाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने ॥69:3॥
जौं बिबाहु संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सबु कोई ॥69:4॥

जे जे बर के दोष बखाने = मैंने वर के जो जो दोष बताये हैं, *ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने* = मेरा अनुमान है कि वे सभी शंकर जी में हैं, *जौं बिबाहु संकर सन होई* = यदि इसका विवाह शंकर जी के साथ हो जाता है, *दोषउ गुन सम* = दोष को भी गुण के समान ही, *कह सबु कोई* = सब लोग कहेंगे।

नारदजी कहते हैं, हे हिमवान! विधाता ने जो प्रारब्ध में लिख दिया है, उसे कोई मिटा नहीं सकता है। जैसे वर का मैंने वर्णन किया है उमा को वर तो वैसा ही मिलेगा इसमें कोई संदेह नहीं है। मेरे अनुमान से वर के जो दोष बताये हैं, वे सब शंकर जी में हैं। तो अब एक ही उपाय है कि इस कन्या का विवाह शंकर जी से हो जाये तो सारे दोष भी गुण के समान हो जायेंगे। यह तभी संभव है जब भगवान सहायता करें। पार्वती जी तुरंत समझ गयीं थीं, पर नारद जी को अब समझ आया।

महान् लोगों के दोष भी गुण कहलाते हैं– चार उदाहरण

जौं अहि सेज सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं ॥69:5॥
भानु कृसानु सर्ब रस खाहीं। तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं ॥69:6॥

जौं अहि सेज = जैसे सर्प के बिस्तर पर, *सयन हरि करहीं* = विष्णु जी सोते हैं, *बुध* = बुद्धिमान लोग भी, *कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं* = उन्हें कोई दोष नहीं देते, *भानु* = सूर्य, *कृसानु* = अग्नि, *सर्ब रस खाहीं* = सभी चीजें खाते हैं, *तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं* = उन्हें कोई भी दोष नहीं देता है।

सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई ॥69:7॥
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं ॥69:8॥

सुभ अरु असुभ = अच्छा व गंदा, *सलिल* = पानी, *सब बहई* = सब बहता है, *सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई* = फिर भी गंगा जी को कोई अपवित्र नहीं कहता है, *समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं* = समर्थवान को कोई दोष नहीं देता है, *रबि पावक सुरसरि की नाईं* = सूर्य, अग्नि व गंगा जी की तरह से।

पार्वती के वर में जो दोष हैं वे शंकर जी में हैं, नारद जी उदाहरण देकर समझाते हैं कि महान् लोगों के दुर्गुणों का कोई महत्त्व नहीं है।

1. **विष्णु** शेषनाग का बिस्तर बनाकर उसके ऊपर ही सोते हैं। सामान्य व्यक्ति के लिये तो साँप पर लेटना बहुत बड़ा दोष है पर विष्णु जी को बुद्धिमान लोग भी दोष नहीं देते।
2. **अग्नि** में गंदी वस्तुयें भी जलती हैं यानि वह सभी रसों का भक्षण कर लेती है पर वह कहलाती सदा पवित्र है, पूजनीय है।
3. **सूर्य** की किरणें अच्छी वस्तुओं पर व बुरी वस्तुओं पर पड़ती हैं, पर बुरी चीजों के कारण सूर्य वैसा ही रहता है उसमें कोई दोष नहीं आता।
4. **गंगा** में भी अच्छा व गंदा सभी तरह का पानी आकर मिलता रहता है, गंदा पानी भी उसमें मिलकर पवित्र हो जाता है, गंदे पानी से गंगा जी कभी अपवित्र नहीं होती हैं।

जीव कितना भी महान् हो उसके दोष, दोष ही कहलायेंगे

जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान ।
परहिं कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईस समान ॥दोहा 69॥

जौं अस हिसिषा = इस प्रकार से अपनी तुलना, *करहिं नर जड़* = यदि कोई मूर्ख मनुष्य करता है, *बिबेक अभिमान* = अपने ज्ञान के अभिमान से, *परहिं कलप भरि नरक महुँ* = तो वह एक कल्प तक नर्क में वास करता है, *जीव कि ईस समान* = जीव कभी भी ईश्वर के समान नहीं हो सकता है।

ये सब बातें तो देवता कोटि के या ईश्वर के समान लोगों के लिये हैं, यदि जीव में इनमें से कोई दोष हों और वह अपने ज्ञान के अभिमान के कारण अपनी तुलना ईश्वर से करके अपने को दोषरहित माने तो यह ठीक नहीं। उसका बुरा परिणाम जीव को भोगना होगा। नारद जी कहते हैं कि जीव कभी भी ईश्वर के समान नहीं हो सकता है। जीव में ईश्वर का अंश है पर वह ईश्वर नहीं है।

जीव ईश्वर से बना है फिर भी दूषित ही माना जाता है

सुरसरि जल कृत बारुनि जाना। कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना ॥70:1॥
सुरसरि मिलें सो पावन जैसें। ईस अनीसहि अंतरु तैसें ॥70:2॥

सुरसरि जल = यदि गंगा जी के पानी से, *कृत बारुनि* = शराब बनायी जाये, *जाना* = यह जानकर भी, *कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना* = सज्जन लोग उस शराब को कभी नहीं पियेंगे, *सुरसरि मिलें सो* = और वही शराब यदि गंगा नदी में डाल दी जाये, *पावन जैसें* = तो वह गंगा के समान ही पवित्र मानी जाती है, *ईस अनीसहि अंतरु तैसें* = इसी प्रकार का अंतर ईश्वर व जीव में है।

गंगा नदी जल से ही बनी है, उनका जल पवित्र माना जाता है। शराब भी जल से बनती है, पर उसमें सड़ा जल है इसलिये उसे अपवित्र मानते हैं। नारद जी कहते हैं कि यदि शराब को गंगा जी के पवित्र जल से बनाया जाये तो भी वह दूषित ही मानी जायेगी, गंगा जल से बनी शराब का भी सज्जन लोग सेवन नहीं करेंगे। इसी प्रकार जीव भी ईश्वर से ही बना है, पर जब तक वह जीव भाव में रहता है, अशुद्ध कर्मों में बँधा है, तो वह जीव गंगा जल से बनी शराब के समान ही निंदनीय है। उसमें ईश्वर जैसी पवित्रता या महानता नहीं है।

यदि जीव ईश्वर भाव को प्राप्त कर ले तो पवित्र हो जाता है

इसी उदाहरण को समझाते हुए नारद जी कहते हैं कि यदि दूषित शराब को गंगा नदी में फेंक दो तो उसके सारे दोष समाप्त हो गये। वह गंगा के समान ही पवित्र हो गयी, पर गंगा जी अपवित्र नहीं हुई। इसी प्रकार, जीव भी यदि भगवान की आराधना करता रहे, अपने अंदर, धीरे-धीरे प्रयास करके ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव विकसित करे तो उसके सारे दोष समाप्त हो जायेंगे। जीव जब ईश्वर से मिलता है, तो वह निर्मल हो जाता है, पवित्र हो जाता है, और ईश्वर अशुद्ध नहीं होता है, वह जैसा है वैसा बना रहता है। ये सब बातें इसी जन्म में, इसी शरीर में ही समझने की हैं। हम अपने आप को गुरु के सेवा कार्य में लगाकर व प्रभु के नाम का स्मरण करके पवित्र बना सकते हैं।

शिव से विवाह हो तो कन्या का सब प्रकार से कल्याण

संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना ॥70:3॥

संभु सहज समरथ भगवाना = शंकर जी भगवान हैं इसलिये सहज ही समर्थ हैं, *एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना* = इस विवाह से सब प्रकार का कल्याण है,

नारदजी कहते हैं शंकर जी समर्थ हैं, उनमें जो दोष प्रतीत होते हैं, या कहे जाते हैं वे कोई दोष नहीं हैं, इसलिये पार्वती का भगवान शंकर से विवाह होने पर सब प्रकार से कल्याण है।

शंकर जी को पाना कठिन, हाँ तप से जल्दी प्रसन्न होते हैं

दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू ॥70:4॥

दुराराध्य पै अहहिं महेसू = दुर (कठिन है) + आराध्य (पूजा करना) = पर शंकर जी को पूजा करके प्राप्त करना कठिन है, *आसुतोष पुनि* = आसु (शीघ्र) + तोष (प्रसन्न होना) = लेकिन वे बहुत जल्दी संतुष्ट हो जाते हैं, *किएँ कलेसू* = तपस्या करने से।

नारद जी कहते हैं, शंकर जी बहुत मुश्किल से प्रसन्न होते हैं, लेकिन वे बहुत जल्दी प्रसन्न होते हैं। दोनों बातें कैसे एक साथ हो सकती हैं? जो स्वार्थ, महत्त्वाकांक्षा एवं अहंकार में लिप्त हैं उनके लिये शंकर जी कठिन हैं, और जो तपस्वी हैं, समर्पित भक्त हैं, जो मुक्ति को जानते हैं उनके लिये शीघ्र प्रसन्न होने वाले हैं। इसलिये उनका नाम *'दुराराध्य'* नहीं है, *'आसुतोष'* है। कई बार हमें भी लगता है कि इतने दिनों से भगवान शंकर जी की पूजा कर रहे हैं पर कुछ होता नहीं है, इसका मतलब है कि कहीं हमारी पूजा की विधि में कमी है, कहीं तप में कमी है, प्रेम में कमी है, समर्पण में कमी है। इस पर विचार करना चाहिये।

कन्या तप करे, शंकर जी प्रारब्ध को भी बदल सकते हैं

जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी ॥70:5॥

जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी = यदि तुम्हारी कन्या तप करे, *भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी* = तो शंकर जी प्रारब्ध को भी बदल सकते हैं।

नारदजी कहते हैं कि तुम्हारी कन्या तप करके शंकर जी को प्रसन्न करे। जब शंकरजी त्रिपुरारि नामक राक्षस का वध कर सकते हैं तो उनके लिये भविष्य को बदलना कौन-सी बड़ी बात है।

शिव जी की आराधना से ही मनचाहा वरदान प्राप्त होता है

जद्यपि बर अनेक जग माहीं। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं ॥70:6॥
बर दायक प्रनतारति भंजन। कृपासिंधु सेवक मन रंजन ॥70:7॥
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें ॥70:8॥

जद्यपि बर अनेक जग माहीं = यद्यपि संसार में अनेक वर हैं, *एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं* = पर इस कन्या के लिये शिव को छोड़कर दूसरा वर नहीं है, *बर दायक* = शिवजी वर देने वाले, *प्रनतारति भंजन* = शरण में आये हुए के दु:ख नष्ट करने वाले, *कृपासिंधु* = कृपा के समुद्र, *सेवक मन रंजन* = भक्तों के मन को प्रसन्न करने वाले हैं, *इच्छित फल* = अपनी इच्छा के अनुसार फल, *बिनु सिव अवराधें* = शंकर जी की आराधना किये बिना, *लहिअ न* = प्राप्त नहीं होता है, *कोटि जोग जप साधें* = भले ही आप करोड़ योग, जप व साधनायें करो।

संसार में बहुत से वर हैं पर इस कन्या के लिये शंकर जी को छोड़कर दूसरा नहीं है। नारद जी यहाँ पर पार्वती जी के गुरु बनकर उनके मन में शंकर जी के प्रति अनन्य भाव ला रहे हैं। कहते हैं कि शंकर जी वर देने में सक्षम हैं। शरण में आये व्यक्ति के दु:खों को दूर कर देते हैं। सब पर कृपा करते रहते हैं, उनकी कृपा कभी समाप्त नहीं होती है। वे अपने भक्तों को सुख प्रदान करते रहते हैं। अंत में नारदजी निष्कर्ष बताते हैं कि हम कोई भी तपस्या, योग, ध्यान कितना भी कर लें पर जब तक शंकर जी की उपासना नहीं करते तब तक मन में जिस चीज को पाने की इच्छा है वह प्राप्त नहीं हो सकती है।

पार्वती जी को आशीर्वाद देकर नारद जी चले जाते हैं

अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस ।
होइहि यह कल्यान अब संसय तजहु गिरीस ॥दोहा 70॥

अस कहि नारद = ऐसा कहकर नारद जी, *सुमिरि हरि* = राम का स्मरण करके, *गिरिजहि दीन्हि असीस* = पार्वती जी को आशीर्वाद देते हैं, *होइहि यह कल्यान अब* = अब इस कन्या का कल्याण होगा, *संसय तजहु गिरीस* = हे पर्वतराज आप संदेह का त्याग करिये।

कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ ॥71:1॥

कहि अस = ऐसा कहकर, *ब्रह्मभवन मुनि गयऊ* = नारद मुनि ब्रह्मा जी के घर चले गये, *आगिल चरित* = आगे की कथा, *सुनहु जस भयऊ* = जैसी हुयी उसे सुनो।

इस प्रकार से नारद जी ने पार्वती जी को उपदेश दिया, श्रीराम का स्मरण करके उन्हें आशीर्वाद दिया। उनके पिता हिमाचल से कहा कि तुम सब संदेह का त्याग करो, भविष्य में क्या होगा इसकी चिंता छोड़ो, अब तुम्हारी कन्या का कल्याण ही होगा। नारद जी ब्रह्मा जी के पुत्र हैं, इसलिये उनका अपना घर ब्रह्मलोक में है वे वहीं चले गये। अब कहते हैं कि आगे की कथा सुनो।

12. पार्वती तप करती हैं, ब्रह्मवाणी– 'शिव ही वर होंगे'

(दोहा 71 से 75)

प्रत्येक माँ चाहती है कि पुत्री को अच्छा वर मिले। मैना भी नारद जी की बातों से चिंतित हो कहती हैं कि हम अयोग्य वर से कन्या का विवाह नहीं करेंगे। पति कहते हैं कि पुत्री को समझाओ कि वह तप करे ताकि शंकर जी वर हों। वे सब प्रकार से योग्य व समर्थ हैं। मैना समझाने जाती हैं पर बोल नहीं पाती, पार्वती जी स्वप्न की बात कहकर बात सँभालती हैं। माता-पिता की अनुमति से वन में जाती हैं। शिव जी के साथ पति का रिश्ता मन में जोड़ती हैं फिर प्रसन्नता से कठोर तप करते हुए शिव के नाम का जप करती हैं। ब्रह्मा जी प्रसन्न होकर आकाशवाणी करते हैं कि अब तप समाप्त करो, शंकर जी वर होंगे, पिता के बुलाने पर घर चली जाना, सप्तऋषियों का मिलना इसकी सत्यता का प्रमाण होगा। पार्वती जी अत्यंत रोमांचित व हर्षित होती हैं। हम भी भगवान से रिश्ता जोड़ें जिससे भाव उत्पन्न हो फिर प्रसन्नता से उनके नाम का स्मरण करें।

मैना कहती हैं पार्वती के योग्य वर मिलेगा तभी विवाह करेंगे

पतिहि एकांत पाइ कह मैना। नाथ न मैं समुझे मुनि बैना ॥71:2॥
जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा ॥71:3॥
न त कन्या बरु रहउ कुआरी। कंत उमा मम प्रानपिआरी ॥71:4॥

पतिहि एकांत पाइ = पति को एकांत में पाकर, *कह मैना* = मैना कहती है, *नाथ न मैं समुझे मुनि बैना* = हे नाथ मैं नारद मुनि की बात नहीं समझ पायी, *जौं घरु*

बरु कुलु होइ अनूपा = यदि घर; वर व कुल कन्या के अनुसार अनुकूल होगा, *करिअ बिबाहु* = तभी विवाह करेंगे, *सुता अनुरूपा* = कन्या के अनुसार ही, *न त कन्या* = नहीं तो कन्या, *बरु रहउ कुआरी* = चाहे कुँवारी ही रह जाये, *कंत उमा मम प्रानपिआरी* = हे नाथ उमा मुझे प्राणों के समान प्रिय है।

तुलसीदास जी माँ की ममता का चित्रण करते हैं। मैना पार्वतीजी की माँ हैं। जब नारद जी पार्वती जी का भविष्य बता रहे थे तो उन्होंने भी सुना कि इसके वर में बहुत से दोष हैं। वे अपने पति को अकेले में पाकर कहती हैं कि ये नारद जी क्या कह गये? हमें कुछ समझ नहीं आया। बस, हम इतना जानते हैं कि जब तक हमारी पुत्री के अनुकूल घर, वर व कुल नहीं मिलेगा हम विवाह नहीं करेंगे, भले ही उमा कुँवारी ही रह जाये। हमारी पुत्री सुंदर है, राजकन्या है, हमारा घर भी सुंदर है, कुल भी सुंदर है इसी के अनुरूप जब सब मिलेगा तभी विवाह करेंगे।

अयोग्य वर से विवाह करने पर सब हँसेंगे, हमें भी दुःख होगा

जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू। गिरि जड़ सहज कहिहि सबु लोगू ॥71:5॥
सोइ बिचारि पति करेहु बिबाहू। जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू ॥71:6॥
अस कहि परी चरन धरि सीसा। बोले सहित सनेह गिरीसा ॥71:7॥

जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू = यदि वर गिरिजा के अनुरूप नहीं होगा, *गिरि जड़ सहज* = पर्वत स्वभाव से ही जड़ होते हैं, *कहिहि सबु लोगू* = सब लोग ऐसा कहेंगे, *सोइ बिचारि* = ऐसा विचार करके ही, *पति करेहु बिबाहू* = हे पतिदेव विवाह करना है, *जेहिं न बहोरि* = जिससे बाद में, *होइ उर दाहू* = मन में दु:ख न हो, *अस कहि* = ऐसा कहकर मैना, *परी चरन धरि सीसा* = पति के चरणों में मस्तक रखकर गिर पड़ी, *बोले सहित सनेह गिरीसा* = तब हिमवान् ने प्रेम से कहा।

पार्वतीजी का स्वभाव बचपन से ही सुंदर था। माता को भी उमा प्रिय थीं। मैना कहने लगीं कि यदि इसके अनुकूल वर नहीं होगा और हम अयोग्य से शादी कर देंगे तो लोग निंदा करेंगे। कहेंगे अरे हिमालय तो पत्थर है, जड़ बुद्धि है, इसने मूर्खता का काम किया। इसलिये ऐसे विचार करके विवाह करना ताकि

बाद में दु:खी न होना पड़े। ऐसा कहकर मैना ने अपने पति हिमाचल के चरणों में प्रणाम करके विनती की, कि उनकी बात मान ही ली जाये। तब हिमवान् प्रेम से मैना को समझाते हैं।

हिमाचल समझाते हैं भगवान का नाम लो, सब ठीक होगा

बरु पावक प्रगटै ससि माहीं। नारद बचनु अन्यथा नाहीं ॥71:8॥

प्रिया सोचु परिहरहु सबु सुमिरहु श्रीभगवान ।
पारबतिहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान ॥दोहा 71॥

बरु = यदि, *पावक प्रगटै* = अग्नि बरसने लगे, *ससि माहीं* = चन्द्रमा से, *नारद बचनु अन्यथा नाहीं* = पर नारद के वचन झूठे नहीं हो सकते।
प्रिया सोचु परिहरहु सबु = हे प्रिये! तुम सब चिंता को छोड़ो, *सुमिरहु श्रीभगवान* = भगवान का स्मरण करो, *पारबतिहि निरमयउ जेहिं* = जिन्होंने पार्वती जी को रचा है, *सोइ करिहि कल्यान* = वे ही कल्याण करेंगे।

हिमवान् मैना को बड़े प्रेम से समझाने लगे कि तुम इतनी चिंता क्यों करती हो? क्यों इतनी व्याकुल हो? देखो, चाहे चन्द्रमा शीतलता की जगह आग बरसाने लगे पर नारदजी के वचन झूठे नहीं हो सकते। उन्होंने जैसा कहा है वैसा ही होगा। शंकर जी ही इसे वर रूप में मिलेंगे, दूसरा नहीं। तुम सब सोच छोड़कर भगवान का नाम जपो। जिसने पार्वती जी की रचना की है वही कल्याण करेगा।

एकमात्र उपाय, पार्वती को शंकर जी के लिये तप करने भेजो

अब जौं तुम्हहि सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावनु देहू ॥72:1॥
करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू। आन उपायँ न मिटिहि कलेसू ॥72:2॥

अब जौं तुम्हहि = अब यदि तुम्हें, *सुता पर नेहू* = पुत्री से प्रेम है, *तौ अस जाइ सिखावनु देहू* = तो जाकर उसे यह शिक्षा दो, *करै सो तपु* = ताकि वह तप करे, *जेहिं मिलहिं महेसू* = जिससे उसे शंकर जी मिलें, *आन उपायँ* = दूसरे किसी उपाय से, *न मिटिहि कलेसू* = कष्ट दूर नहीं होगा।

माँ अपनी पुत्री से सब तरह की बातें कर सकती है, पिता नहीं कर सकते। इसलिये हिमाचल स्वयं न कहकर मैना से कहलवाते हैं। कहते हैं कि यदि तुम्हें पार्वती से बहुत प्रेम है, तो उसे समझाओ कि वह शंकर जी को वर रूप में पाने के लिये, शिव नाम का जप करे, तप करे। जो क्लेश है, कष्ट है उनसे बचने का यही एकमात्र उपाय है।

नारद वचन सत्य है, शंकर जी गुणनिधान व दोषरहित हैं

नारद बचन सगर्भ सहेतू। सुंदर सब गुन निधि बृषकेतू ॥72:3॥
अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका। सबहि भाँति संकरु अकलंका ॥72:4॥

नारद बचन = नारद जी की वाणी, *सगर्भ* = रहस्यमयी है, *सहेतू* = उसका कारण भी है, *सुंदर सब गुन निधि बृषकेतू* = शंकर जी सभी सुंदर गुणों के भंडार हैं, *अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका* = यह सब सोच करके तुम शंका का त्याग करो, *सबहि भाँति संकरु अकलंका* = शंकर जी सभी तरह से दोष रहित हैं।

हिमाचल अपनी पत्नी मैना को समझाते हुए कहते हैं कि नारद जी की बातें रहस्य से भरी हैं, वे सबकी समझ में नहीं आयेंगी। उन्होनें किसी कारण से ही कहा है कि पार्वती तप करे शंकर जी वर होंगे। शंकर जी में सब प्रकार के गुण हैं, उनमें कोई भी दोष नहीं है। ये सब बातें विचार करके शंका का त्याग करो।

मैना प्रसन्न हो पार्वती के पास जाती है

सुनि पति बचन हरषि मन माहीं। गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं ॥72:5॥

सुनि पति बचन = पति की बातें सुनकर, *हरषि मन माहीं* = मैना प्रसन्न हो गयीं, *गई तुरत उठि* = तुरंत उठकर जाती हैं, *गिरिजा पाहीं* = पार्वती जी के पास।

हिमाचल की बातें मैना को समझ आ गयीं। उनका संदेह, शोक मिट गया। उन्हें प्रसन्नता हुयी कि शंकर जी वर होंगे, पार्वती का कल्याण होगा। वे पार्वती जी को तप करने की सलाह देने के लिये तुरंत जाती हैं।

उमा को देख मैना भावुक, तप के लिये बोल ही नहीं पायी

उमहि बिलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी ॥72:6॥
बारहिं बार लेति उर लाई। गदगद कंठ न कछु कहि जाई ॥72:7॥

उमहि बिलोकि = उमा को देखकर, *नयन भरे बारी* = मैना की आँखों में आँसू आ गये, *सहित सनेह गोद बैठारी* = प्रेम के साथ उमा को गोद में बैठाया, *बारहिं बार लेति उर लाई* = बार-बार उमा को हृदय से लगाने लगीं, *गदगद कंठ* = मैना का गला भर आया, *न कछु कहि जाई* = कुछ बोल ही नहीं पाईं।

मैना जब उमा के पास पहुँचती हैं, तो कम उम्र, सुकुमार शरीर देखकर वे भावुक हो जाती हैं। बुद्धि काम नहीं करती। उमा को गोद में बैठाकर हृदय से लगाकर प्यार करने लगीं। आँखों में आँसू आ गये, गला भर आया, वे उमा से कुछ बोल नहीं पाती हैं। कहने की हिम्मत नहीं हुई कि तुम तप करो।

उमा, समस्या को समझकर, समाधान के लिये सपना सुनाती हैं

जगत मातु सर्बग्य भवानी। मातु सुखद बोलीं मृदु बानी ॥72:8॥

जगत मातु = जगत की माता, *सर्बग्य* = सब जानने वाली, *भवानी* = शंकर जी की पत्नी, *मातु सुखद* = माँ मैना को सुख देने वाली, *बोलीं मृदु बानी* = मधुर वचन बोलती हैं।

सुनहि मातु मैं दीख अस सपन सुनावउँ तोहि ।
सुंदर गौर सुबिप्रबर अस उपदेसेउ मोहि ॥दोहा 72॥

सुनहि मातु = हे माँ सुनो, *मैं दीख अस सपन* = मैंने एक सपना देखा है, *सुनावउँ तोहि* = जो तुम्हें बताती हूँ, *सुंदर गौर सुबिप्रबर* = एक सुंदर; गौर वर्ण के विप्र ने, *अस उपदेसेउ मोहि* = ऐसा उपदेश मुझे दिया है।

तुलसीदास जी कहते हैं कि पार्वती जी तो जगत की माता हैं, वे सब जानती हैं, शंकर जी उन्हें वर रूप में मिलेंगे इसलिये वे भवानी हैं। पार्वती जी व्यवहार में कुशल हैं, बुद्धि की तेज हैं। बुद्धिमान व्यक्ति समस्या का समाधान तुरंत कैसे करता है, यह बात समझने की है। माँ मैना के दु:ख दूर हों इसलिये सुख देने

वाले मधुर वचन में वे एक सपना सुनाती हैं। पार्वती झूठ नहीं बोल रही हैं, सपना देखा था, अनुकूल समय आने पर बताती हैं। कहती हैं स्वप्न में एक सुंदर, ज्ञानवान, गौरवर्ण, सदाचारी विप्र ने मुझे उपदेश दिया है।

विप्र ने कहा कि माता-पिता चाहते हैं कि तुम तप करो

करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी ॥73:1॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा ॥73:2॥

करहि जाइ तपु सैलकुमारी = हे शैल पुत्री तुम जाकर तप करो, *नारद कहा सो सत्य बिचारी* = नारदजी ने जो कहा है वह सत्य समझो, *मातु पितहि पुनि यह मत भावा* = फिर यह बात तुम्हारे माता-पिता को भी अच्छी लगी है, *तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा* = तप से सुख की प्राप्ति व दु:ख दोष समाप्त होते हैं।

स्वप्न में उस विप्र ने कहा कि हे पार्वती तुम नारद जी की बातें सत्य समझ कर तपस्या करो। पार्वती जी ने विप्र से पूछा होगा कि माता-पिता कैसे तैयार होंगे? कहती हैं कि विप्र ने यह भी बताया कि नारद जी की बातें माता-पिता को भी स्वीकार हैं। वे भी चाहते हैं कि तुम तप करो। तप सुख प्रदान कर व्यक्ति के दु:ख व दोषों को दूर करता है।

विप्र ने तप की महिमा भी बतायी

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता। तपबल बिष्नु सकल जग त्राता ॥73:3॥
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा ॥73:4॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जियँ जानी ॥73:5॥

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता = तप के बल से ब्रह्मा संसार को रचते हैं, *तपबल बिष्नु सकल जग त्राता* = तप के बल से विष्णु जगत् का पालन करते हैं, *तपबल संभु करहिं संघारा* = तप के बल से शंकर जी संहार करते हैं, *तपबल सेषु धरइ महिभारा* = तप के बल से शेषनाग पृथ्वी को धारण करते हैं, *तप अधार सब सृष्टि भवानी* = हे भवानी सारी सृष्टि तप के आधार पर ही है, *करहि जाइ तपु अस जियँ जानी* = ऐसा समझकर तुम जाकर तप करो।

इस सृष्टि का आधार तप ही है, इस बात को समझाते हुए विप्र ने तप की महिमा के चार उदाहरण दिये :

1. ब्रह्मा सृष्टि की रचना तप के बल से करते हैं– पौराणिक कथा के अनुसार पहले ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई, उन्होंने देखा चारों तरफ जल ही जल भरा है, कहीं कोई है ही नहीं। यह भी समझ में न आये कि हम कहाँ हैं, क्या प्रयोजन है। तब आकाशवाणी हुई कि ब्रह्मा जी तुम तप करो फिर जगत की रचना करो। ब्रह्मा जी ने बहुत समय तक तप करके शक्ति अर्जित की फिर सृष्टि की रचना की।
2. विष्णु सृष्टि का पालन तप के बल से करते हैं– जगत् बना रहे, उसकी रक्षा हो, पालन हो इसके लिये विष्णु की शक्ति आयी। वे भी तप के बल से ही जगत् का पालन करते हैं।
3. शंकर जी जगत् का विनाश तप से करते हैं– जब जगत् पुराना होता जाता है, विकृत होता है, तो उसे नष्ट भी होना चाहिये। इस दूषित जगत् के विनाश का कार्य शंकर जी तप के बल से ही करते हैं।
4. शेषनाग पृथ्वी को तप के बल से धारण किये हैं– शेषनाग ने इतना तप किया कि उसके बल से वे इस सृष्टि को अपने फन पर धारण किये रहते हैं।

क्या हम भी तप से जीवन में सफलता पा सकते हैं?

बोलचाल की भाषा में तप का अर्थ शरीर को कष्ट देना होता है। जब हम शरीर को कष्ट देंगे तब कार्य होगा। मकान बनवायेंगे तो खड़े रहना होगा, तभी बनेगा। छात्र सुबह उठे, लिखे, पढ़े, मेहनत करे तब अच्छे अंक प्राप्त होंगे। खेल में सफलता के लिये खिलाड़ी अपने शरीर को बहुत तपाते हैं, अभ्यास करते हैं, तब सफल होते हैं। सभी महान् कार्य तप के बल से ही होते हैं।

स्वामी सत्यानंद जी के रिखिया सत्संग से

जीवन में तप कैसे करें?

गुरुदेव स्वामी सत्यानंदजी ने गृहस्थ जीवन में रहकर तप करने की अद्‌भुत शिक्षा दी है। एक बार रामचरितमानस की एक कथाकार ने स्वामीजी से पूछा कि 'जब मैं अपने छोटे बच्चे को साथ लेकर कथा करने जाती हूँ तो मेरी सास बहुत गुस्सा करती है, क्या मुझे कथा करना छोड़ देना चाहिये?' स्वामीजी ने कहा 'तुम किसी जंगल में जाकर तो तपस्या नहीं करोगी, रहना तो घर में ही है। इसलिये

भगवान तुम्हें तप का एक मौका दे रहे हैं। यदि तुमने अपनी सास के गुस्से को सह लिया और फिर भी तुम उनसे उतना ही प्यार करती रही, और उनकी सेवा करती रही, तो तुम्हारा घर में बैठे-बैठे ही तप हो जायेगा और तुम्हारा तप तुम्हें सिद्धि देगा।' भगवान हमें भी यदि तप का मौका दे तो चूकना नहीं चाहिये।



स्वप्न सुन मैना अचंभित, हिमाचल को सब बताती है

सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी ॥73:6॥

सुनत बचन = ये बातें सुनकर, *बिसमित महतारी* = माँ को बहुत आश्चर्य हुआ। *सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी* = हिमवान् के पास जाकर मैना, उमा का सपना सुनाती हैं।

स्वप्न की बातें सुनकर मैना आश्चर्यचकित हो गईं, उन्हें लगा कि जो बात हम कहने आये थे वह कह नहीं पाये, उमा ने स्वयं ही स्वप्न में वह सब देख लिया। वे तुरंत हिमाचल के पास जाकर सब बातें बताती हैं।

भारतीय संस्कृति में पुत्री अपने विवाह की बात सीधे नहीं करती

इस प्रसंग में भारतीय संस्कृति के दो उदाहरण हैं। पुत्री को तप व विवाह की बात समझाने के लिये पिता स्वयं बात नहीं करते, वे माँ से कहलवाते हैं। माँ यदि पुत्री को समझाये तो अच्छा रहता है। दूसरी बात, पुत्री स्वयं अपने विवाह की बात सीधे-सीधे नहीं करती। उमा अपनी माँ से यह नहीं कह सकती कि नारद जी हमसे कह गये हैं तपस्या करने के लिये, मैं तो तपस्या करके अपने लिये अच्छा वर प्राप्त करूँगी। इसलिये वे सपना सुनाती हैं। उन्होंने सपना देखा था पर आज अनुकूल समय आने पर बताती हैं।

सबको समझाकर उमा प्रसन्नता से तप हेतु चल दीं

मातु पितहि बहुबिधि समुझाई। चलीं उमा तप हित हरषाई ॥73:7॥

मातु पितहि बहुबिधि समुझाई = माता-पिता को बहुत प्रकार से समझाकर, *चलीं उमा तप हित हरषाई* = उमा प्रसन्नता से तप के लिये जाती हैं।

यदि बच्चे विलक्षण प्रतिभा के होते हैं तो वे अपने माता-पिता को समझाते हैं। पार्वती जी ने समझाया कि नारद जी कह गये हैं, स्वप्न में विप्र ने कहा है और आपकी भी सहमति है तो हमें तप के लिये जाना चाहिये। तप में कष्ट उठाना होगा पर उमा का अपने लक्ष्य के प्रति समर्पण है, इसलिये वे प्रसन्नता से जाती हैं।

सब व्यथित, वेदशिरा मुनि के समझाने से संतुष्ट हुए

प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए बिकल मुख आव न बाता ॥73:8॥

प्रिय परिवार पिता अरु माता = माता-पिता व परिवार के सभी लोग, *भए बिकल मुख आव न बाता* = व्याकुल हो गये कोई कुछ बोल नहीं पाता है।

बेदसिरा मुनि आइ तब सबहि कहा समुझाइ ।
पारबती महिमा सुनत रहे प्रबोधहि पाइ ॥दोहा 73॥

बेदसिरा मुनि आइ तब = उसी समय वेदशिरा मुनि आये, *सबहि कहा समुझाई पारबती महिमा* = मुनि ने सबको पार्वती जी की महिमा समझाकर बतायी, *सुनत रहे प्रबोधहि पाइ* = जिसे सुनकर सब संतुष्ट हो गये।

पार्वती जी जब तपस्या के लिये चल दीं, तब परिवार के लोग व माता-पिता को बहुत दु:ख होने लगा कि यह कैसे तपस्या करेगी, इतनी सुकुमार है। उसी समय वेदशिरा मुनि आते हैं, वे कहते हैं कि पार्वती जी को सुकुमार, सुंदर व कोमल ही मत समझो, वे देवकोटि की हैं व बहुत शक्तिमान भी हैं। मुनि की बातों से सब संतुष्ट हो गये।

पति रूप में शंकर जी को हृदय में धारण कर तप करती हैं

उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना ॥74:1॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू ॥74:2॥
नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा ॥74:3॥

उर धरि उमा प्रानपति चरना = उमा अपने हृदय में शंकर जी को पति रूप में स्मरण करके, *जाइ बिपिन लागीं तपु करना* = वन में जाकर तप करने लगीं।

अति सुकुमार न तनु तप जोगू = उनका शरीर तप के योग्य नहीं, *पति पद सुमिरि* = पति के चरण का स्मरण करके, *तजेउ सबु भोगू* = सभी भोगों का त्याग कर दिया, *नित नव चरन उपज अनुरागा* = उनके हृदय में नित्य भक्ति बढ़ती ही जाती है, *बिसरी देह* = शरीर भूल गयीं, *तपहिं मनु लागा* = मन तप में लग गया।

भगवान शंकर को अपना प्राणपति जानकर हृदय में उन्हें धारण कर उमा तप करने लगीं। पार्वती जी की किशोरी अवस्था है, ज्यादा उम्र नहीं है, शरीर से सुकुमार हैं फिर भी तपस्या करती हैं। पति के प्रति, अपने लक्ष्य के प्रति समर्पण भाव है इसलिये उन्हें सुकुमार शरीर की चिंता नहीं है। भोगों और आकांक्षाओं का त्याग कर दिया। पार्वती जी के मन में शंकर जी के प्रति बहुत भक्ति थी, जैसे-जैसे तपस्या करती हैं भक्ति भाव बढ़ता जाता है। तपस्या में इतना मन लग गया कि शरीर की सुधि ही भूल गयी। पार्वती जी के तप करने के तरीके से दो बातें अपने जीवन में अपनाने योग्य हैं:

1. **प्रसन्नता से पूजा करें–** हम लोग तो वन में नहीं जा सकते हैं, इसलिये घर में ही पूजा करें, उपासना करें, व्रत करें, गुरु की बतायी साधना करें। अपने मन की प्रसन्नता को बनाये रखते हुए व बिना तनाव के पूजा करें। दु:खी मन से न करें। जैसे-जैसे साधना में आगे बढ़ें प्रेम भाव, भक्ति भाव व प्रसन्नता भी बढ़नी चाहिये।
2. **भगवान से रिश्ता जोड़ें–** पार्वती जी शंकर जी से पति का रिश्ता जोड़ती हैं। जैसे ही किसी के साथ रिश्ता जुड़ता है तो एक भाव का जन्म होता है। भगवान के साथ माता, पिता, बंधु, सखा, पति, परमेश्वर, मालिक या आत्मा का रिश्ता जोड़ सकते हैं। रिश्ता जोड़कर पूजा करने से भगवान की कृपा बहुत जल्दी प्राप्त होती है। उस रिश्ते को मजबूती से पकड़े रहें।

पहला अनुष्ठान– फलाहार से शुरू, फिर हवा-पानी के बिना रहीं

संबत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत बरष गवाँए ॥74:4॥
कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपबासा ॥74:5॥

संबत सहस = एक हजार वर्ष, *मूल फल खाए* = मूल और फल खाये, *सागु खाइ* = साग का भोजन कर, *सत बरष गवाँए* = सौ वर्ष की साधना की, *कछु*

दिन भोजनु = कुछ दिनों का भोजन तो, *बारि* = जल, *बतासा* = और हवा ही थी, *किए कठिन कछु दिन उपबासा* = कुछ दिन इससे भी कठिन व्रत किया।

पार्वती जी के पहले अनुष्ठान का वर्णन तुलसीदास जी इस प्रकार करते हैं:

1. शंकर जी का स्मरण 1000 वर्ष तक किया। इन वर्षों में फल, कंदमूल व शर्करा आदि का भोजन किया।
2. साग खाकर 100 वर्षों तक शंकर जी के नाम का स्मरण किया ।
3. भोजन त्याग दिया, जल पीकर व वायु का सेवन करके 10 वर्षों तक नाम स्मरण किया।
4. हवा व पानी का भी त्याग कर दिया। एक वर्ष तक समाधि की अवस्था में रहकर साधना की। समाधि में श्वास की गति भी बंद हो जाती है। यह सबसे कठिन तपस्या है।

इस क्रम से एक बार साधना की पर इच्छित फल प्राप्त नहीं हुआ। वर्ष की गिनती से आशय लंबे समय से है।

दूसरा अनुष्ठान– सूखे बेल पत्र से शुरू कर कठिन तप किया

बेल पाती महि परइ सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई ॥74:6॥
पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना ॥74:7॥

बेल पाती = जो बेल पत्र, *महि परइ सुखाई* = जमीन में गिरकर सूख जाते थे, *तीनि सहस संबत* = तीन हजार वर्षों तक, *सोइ खाई* = उसे ही खाया, *पुनि परिहरे सुखानेउ परना* = उसके बाद सूखे बेलपत्रों का भी त्याग कर दिया, *उमहि नामु तब* = उमा का नाम तब, *भयउ अपरना* = अपर्णा हो गया।

सफलता पाने के लिये कई बार तप करना होता है। पार्वती जी अपने दूसरे अनुष्ठान में 3000 वर्षों तक जमीन पर गिरे सूखे हुए बेल पत्रों का ही भोजन करके शिव नाम आराधना में लीन रहती हैं। फिर बेलपत्र भी छोड़ दिया जिसके कारण उनका नाम अपर्णा पड़ा।

ब्रह्मा ने प्रसन्न हो आकाशवाणी की, तप पूर्ण, शंकर जी वर होंगे

देखि उमहि तप खीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा ॥74:8॥

भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि ।
परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारि ॥दोहा 74॥

देखि उमहि तप खीन सरीरा = उमा का शरीर तप से क्षीण देखकर, *ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा* = आकाश से गंभीर आकाशवाणी हुई।
भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि = हे पर्वत की पुत्री सुनो, तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया है, *परिहरु दुसह कलेस सब* = सारे तप को त्याग दो, *अब मिलिहहिं त्रिपुरारि* = अब तुम्हारे शंकर जी ही वर होंगे।

इस प्रकार से तप करते-करते पार्वती जी के स्थूल, सूक्ष्म व कारण तीनों शरीर क्षीण हो गये। फिर आकाश से ब्रह्मवाणी हुई कि हे पार्वती! तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया है, अब तुम्हें और तप करने की आवश्यकता नहीं है, तुम्हें त्रिपुरारि मिलेंगे। शास्त्र कहते हैं कि तपस्या केवल पुरुष के लिये ही नहीं, स्त्री भी कर सकती है।

ब्रह्मवाणी को सत्य समझकर, पिता के बुलावे पर घर जाना

अस तपु काहुँ न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ग्यानी ॥75:1॥
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी। सत्य सदा संतत सुचि जानी ॥75:2॥
आवै पिता बोलावन जबहीं। हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं ॥75:3॥

अस तपु = इस प्रकार का तप, *काहुँ न कीन्ह भवानी* = हे भवानी! किसी ने नहीं किया है, *भए अनेक धीर मुनि ग्यानी* = अनेक धैर्यवान मुनि व ग्यानी भी नहीं कर पाये हैं, *अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी* = अब तुम इस ब्रह्मवाणी को हृदय में धारण करो, *सत्य सदा संतत सुचि जानी* = यह वाणी सदा सत्य है निरंतर पवित्र है, *आवै पिता बोलावन जबहीं* = जब पिता जी तुम्हें बुलाने आयें, *हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं* = तब तुम तप छोड़कर घर जाना।

आकाशवाणी में ब्रह्मा जी कहते हैं कि हे पार्वती! बहुत से धीर, मुनि, ज्ञानी हुए हैं, पर तुम्हारे समान तपस्या किसी ने नहीं की है। हमारी इस वाणी को सत्य समझना। जब पिता जी बुलाने आवें तो यह मत कहना कि मैं तपस्या करती रहूँगी, तप समाप्त करके घर चले जाना।

सप्तऋषि का मिलना ब्रह्मवाणी की सत्यता का प्रमाण होगा

मिलहिं तुम्हहि जब सप्त रिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा ॥75:4॥

मिलहिं तुम्हहि जब सप्त रिषीसा = जब तुम्हें सप्तऋषि मिलेंगे, *जानेहु तब* = तब समझ जाना कि, *प्रमान बागीसा* = यह आकाशवाणी सत्य है।

मन में यह शंका हो सकती है कि ब्रह्मा की वाणी को सत्य कैसे मानें? तो आकाशवाणी कहती है कि तुम्हारे पास सप्तऋषि आयेंगे, वही इस परमात्मा की वाणी की सत्यता का प्रमाण होगा।

ब्रह्मवाणी सुन पार्वती जी प्रसन्न व रोमांचित

सुनत गिरा बिधि गगन बखानी। पुलक गात गिरिजा हरषानी ॥75:5॥
उमा चरित सुंदर मैं गावा। सुनहु संभु कर चरित सुहावा ॥75:6॥

सुनत गिरा बिधि गगन बखानी = आकाश से हुई ब्रह्मवाणी को सुनते ही, *पुलक गात गिरिजा* = पार्वती जी का शरीर पुलकित हो गया, *हरषानी* = और मन प्रसन्नता से भर गया, *उमा चरित सुंदर मैं गावा* = मैंने उमा का यह सुंदर चरित्र सुनाया, *सुनहु संभु कर चरित सुहावा* = अब शंकर जी का चरित्र सुनो।

ब्रह्मवाणी को सुनकर पार्वती जी को लगा कि हमारी तपस्या सफल हो गयी है, लक्ष्य पूरा हो गया है, हमें जो प्राप्त करना था वह प्राप्त हो गया है। इसे सुनकर उनका शरीर रोमांचित हो गया व मन प्रसन्न हो गया। याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जी से कहते हैं हमने पार्वती जी की कथा सुना दी कि कैसे सती का पार्वती रूप में जन्म हुआ, कैसे तपस्या की। अब सती के शरीर त्याग के बाद शंकर जी ने क्या किया उसकी कथा सुनो।

व्रत में नाम स्मरण करें तभी वह तप है

कोई व्यक्ति व्रत रखे, कुछ खाये पिये नहीं, शरीर को कष्ट दे, पर वह भगवान का स्मरण न करे, नाम न जपे, गीता-रामायण न पढ़े तो वह मात्र व्रत है तप नहीं है। तप तब होगा जब वह भगवान का चिंतन करे, अपना मन भगवान में लगाये।

13. राम के कहने से शिव, पार्वती से विवाह को राजी

(दोहा 76 से 77)

सती के शरीर त्याग के बाद शंकर जी पूरे संसार को ही अपना घर समझकर विचरण करते हैं। जहाँ रामकथा होती है, राम का नाम लिया जाता हो, वहाँ पहुँच जाते हैं। रामकथा कहते भी हैं, सुनते भी हैं। कहीं मुनियों को ज्ञान का उपदेश देते हैं। उनका मन विरक्त होकर राम में रम जाता है। पर वे सती के दु:ख से दु:खी भी रहते हैं। प्रभु राम अपने अलौकिक सौंदर्य व तेज के साथ शिव जी के सामने प्रकट हो जाते हैं। उनके व्रत की प्रशंसा करके समझाते हैं कि अब सती के दोष दूर हो गये हैं, शरीर त्याग के बाद पार्वती बनकर जन्म ले लिया है। फिर विनती करते हुए शंकर जी से 'शिव-पार्वती विवाह' का वरदान माँग लेते हैं। शिव जी राम की आज्ञा को अपना परमधर्म मानते हुए पार्वती से विवाह की बात स्वीकार कर लेते हैं। राम प्रसन्न व संतुष्ट होकर अंतर्धान हो जाते हैं।

शंकर जी विरक्त हो, राम कथा कहते व सुनते रहते थे

जब तें सतीं जाइ तनु त्यागा। तब तें सिव मन भयउ बिरागा ॥75:7॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा ॥75:8॥

जब तें = जब से, *सतीं जाइ तनु त्यागा* = सती जी ने यज्ञ में जाकर शरीर का त्याग कर दिया था, *तब तें* = तब से, *सिव मन भयउ बिरागा* = शिव जी का मन विरक्त हो गया था, *जपहिं सदा रघुनायक नामा* = वे हमेशा राम का नाम जपने लगे, *जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा* = जहाँ कहीं भी रामकथा होती थी उसे जाकर सुनते थे।

चिदानंद सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम ।
बिचरहिं महि धरि हृदयँ हरि सकल लोक अभिराम ॥दोहा 75॥

चिदानंद = शंकर जी सत चित आनंद स्वरूप हैं, *सुखधाम* = सुख के धाम हैं, *सिव* = शिव जी, *बिगत मोह मद काम* = मोह; मद व कामनाओं से रहित हैं, *बिचरहिं महि* = पृथ्वी पर घूमते रहते हैं, *धरि हृदयँ हरि* = हृदय में श्रीराम का स्मरण करते हुए, *सकल लोक अभिराम* = जो सारे लोकों के लिए आनन्ददायक हैं।

कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। कतहुँ राम गुन करहिं बखाना ॥76:1॥

कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना = कहीं मुनियों को ज्ञान का उपदेश देते, *कतहुँ राम गुन करहिं बखाना* = कहीं श्रीराम के गुणों का वर्णन करते।

सती के शरीर त्यागने के बाद शंकर जी का मन विरक्त हो गया। अपने प्रभु राम का नाम जपने लगे, उन्हीं का स्मरण व ध्यान करने लगे। जहाँ कहीं भी रामकथा होती थी, राम का नाम लिया जाता था, वहीं पहुँच कर कथा व नाम जप सुनते रहते थे। जो मुनि हैं, विद्वान् हैं, ज्ञानी हैं उन्हें ज्ञान का उपदेश देते थे। जो आम जनता है उन्हें राम कथा सुनाते थे।

स्वामी सत्यानंद जी के रिखिया सत्संग से

जहाँ राम का नाम उच्चारण होगा, जहाँ राम की पूजा होगी, जहाँ राम की आराधना होगी वहाँ शिव जी अवश्य आयेंगे। इसलिये नहीं कि वे तुमको दर्शन देने आयेंगे, इसलिये कि वे राम नाम सुनने आयेंगे। यह निश्चित है, यह सही है, और इस पर हर व्यक्ति को विश्वास रखना चाहिये। हमारे संत-महात्मा कपोल कल्पित गप नहीं लगाते थे। सन्त तुलसीदास गंभीर थे, वे ऐसे ही नहीं थे। जीवन को, सृष्टि को, वेदांत दर्शन, अद्वैत वेदांत दर्शन, विशिष्ट अद्वैत दर्शन को उन्होंने गंभीरता से लिया। ऐसे ही बच्चों की तरह नहीं लिया। समझाया उन्होंने। वे एक भक्त थे, धर्मपरायण थे और उनको श्रीराम के दर्शन प्राप्त थे।



सती के दुःख से शंकर जी दुःखी रहते हैं

जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना ॥76:2॥

जदपि अकाम = यद्यपि शिव जी को कोई कामना नहीं है, *तदपि भगवाना* = फिर भी भगवान शिव, *भगत बिरह दुख* = सती के दु:ख से, *दुखित सुजाना* = ज्ञानवान शिव जी दु:खी हैं।

इस चौपाई के अर्थ को ठीक से समझने का प्रयास करें। भगवान शंकर सदा आनंद स्वरूप हैं, उन्हें विरह का दु:ख होता ही नहीं है, वे दु:खी होते ही नहीं हैं।

शंकर जी द्वारा त्यागे जाने पर सती जी को बहुत दु:ख था, उसी दु:ख से उन्होंने योगाग्नि में अपने शरीर को भस्म कर लिया था। शंकर जी ने देखा कि सती हमारी भक्त हैं, उनके मन में बहुत दु:ख है, भक्त के दु:ख से शंकर जी दु:खी हैं। चौपाई का ध्यान से पाठ करें, इसमें दु:ख शब्द दो बार आया है, पहला सती के लिये दूसरा शंकर जी के लिये। सती के दु:ख से शंकर जी दु:खी हैं। हमें भी दूसरों के दु:ख से दु:खी होकर, उसके दु:ख दूर करने का प्रयास करना चाहिये।

शंकर जी के नेम, प्रेम व अविचल भक्ति को राम देखते हैं

एहि बिधि गयउ कालु बहु बीती। नित नै होइ राम पद प्रीती ॥76:3॥
नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अबिचल हृदयँ भगति कै रेखा ॥76:4॥

एहि बिधि = इस प्रकार, *गयउ कालु बहु बीती* = बहुत समय व्यतीत हो गया, *नित नै होइ राम पद प्रीती* = श्रीराम के चरणों में नित्य प्रेम बढ़ता ही जा रहा था, *नेमु प्रेमु संकर कर देखा* = राम ने शंकर जी का नियम व प्रेम देखा, *अबिचल हृदयँ भगति कै रेखा* = और हृदय में कभी न समाप्त होने वाली भक्ति भी देखी।

इस प्रकार शंकर जी विचरण करते रहे, बहुत समय बीत गया। उनके हृदय में नित्य श्रीराम के चरणों में प्रेम बढ़ता ही जाता है। श्रीराम ने शंकर जी में तीन बातें देखीं–

1. नेम– जब सती ने सीता जी का वेष बनाया तो नियम का पालन करते हुए सती का परित्याग कर दिया। नेम धर्म का सूचक है, व्यवहार में क्या करना चाहिये वह शंकर जी करते हैं।
2. प्रेम– शंकर जी के मन में सती के प्रति घृणा भाव नहीं आया, तब से आज तक प्रेम भाव बना ही है। शंकर जी के आराध्य हैं राम, सती जी के आराध्य हैं शंकर जी। इसलिये, शंकर जी का प्रेम एक ओर अपने इष्ट श्रीराम के प्रति है तो दूसरी ओर अपनी भक्त सती पर भी है। दोनों तरफ प्रेम है।
3. अविचल भक्ति– शंकर जी की भक्ति में दृढ़ता है। अपने प्रभु राम की भक्ति को दृढ़ रखते हुए भी सती से प्रेम करते हैं।

प्रभु राम शंकर जी के सामने प्रकट हो जाते हैं

प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला ॥76:5॥

प्रगटे रामु = राम जी शंकर जी के सामने प्रकट होते हैं, *कृतग्य* = राम जी उपकार मानने वाले हैं, *कृपाला* = कृपा करने वाले हैं, *रूप सील निधि तेज बिसाला* = उनका सुंदर रूप है, सुशील हैं, महान् तेज है।

भगवान सब जगह हैं, पर सर्वत्र प्रकट नहीं हैं। उनके प्रकट होने का एक नियम है। जहाँ प्रेम है, वहाँ वे प्रकट होते हैं। शंकर जी ज्ञानी हैं, जब ज्ञानी को करुणा के कारण दु:ख होता है, तो उसे दूर करने के लिये भगवान प्रकट होते हैं, इसलिये वे कृपालु हैं। शंकर जी भक्त भी हैं, उनके मन में राम के प्रति प्रेम है, इसलिये राम शंकर जी के प्रति कृतज्ञ हैं। राम की तीन विशेषताओं का यहाँ पर वर्णन करते हैं:
1. रूप निधि– अलौकिक दिव्य सौंदर्य है, प्रत्येक अंग सुंदर है।
2. शील निधि– एकदम शालीन हैं। गुणों से भरपूर हैं।
3. विशाल तेज– वे बहुत तेजस्वी हैं। तेज की तुलना नहीं की जा सकती है।

प्रशंसा करके समझाते हैं, फिर पार्वती की महिमा बताते हैं

बहु प्रकार संकरहि सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा ॥76:6॥
बहुबिधि राम सिवहि समुझावा। पारबती कर जन्मु सुनावा ॥76:7॥
अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी ॥76:8॥

बहु प्रकार = राम ने बहुत प्रकार से, *संकरहि सराहा* = शंकर जी की प्रशंसा की, *तुम्ह बिनु* = तुम्हारे अलावा, *अस ब्रतु* = इस प्रकार के नियम, *को निरबाहा* = कौन पालन कर सकता है, *बहुबिधि राम* = राम ने बहुत प्रकार से, *सिवहि समुझावा* = शिव जी को समझाया, *पारबती कर जन्मु सुनावा* = पार्वती के जन्म के बारे में बताया, *अति पुनीत गिरिजा कै करनी* = पार्वती जी के कार्य बहुत ही पवित्र हैं, *बिस्तर सहित* = विस्तार के साथ, *कृपानिधि बरनी* = कृपा के निधान राम ने वर्णन किया।

राम जी शंकर जी के सामने प्रकट होकर तीन तरह की बातें करते हैं:
1. बहुत प्रकार से शंकर जी की प्रशंसा करते हैं– सीता का वेष रखने पर, सती के त्याग का निर्णय लेकर शंकर जी ने बहुत ही सूक्ष्म धर्म का पालन किया। राम जी सराहना करते हुए कहते हैं कि इस प्रकार से धर्म का पालन आप ही कर सकते हैं।

2. बहुत प्रकार से शिव जी को समझाते हैं– अब आपका व्रत पूरा हो गया है। सती ने अपना शरीर त्याग दिया है, उनकी कुतर्क बुद्धि समाप्त हो गई है। सती ने हिमाचल के घर जन्म ले लिया है। पार्वती उनका नाम है। उन्होंने नया शरीर बस धारण नहीं किया है, बल्कि उनकी बुद्धि भी बदल गयी है, न जाने कितनी बार क्षमा याचना की है।
3. पार्वती के प्रेम व तप का वर्णन करते हैं– शरीर त्यागते समय सती ने बार-बार मुझसे यही वरदान माँगा था कि प्रत्येक जन्म में शंकर जी के चरणों में प्रेम बना रहे। बाल्यकाल से ही उनके मन में आपके प्रति प्रेम बना है। उन्होंने बहुत कठिन तपस्या भी की है। उनके विचार व कार्य अत्यंत पवित्र हैं।

राम शंकर से 'शिव-पार्वती विवाह' का वरदान माँगते हैं

अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु ।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु ॥दोहा 76॥

अब बिनती मम सुनहु सिव = हे शिव! अब मेरी विनती सुनो, *जौं मो पर निज नेहु* = यदि मुझ पर आपका प्रेम है तो, *जाइ बिबाहहु सैलजहि* = शैल की पुत्री पार्वती से आप विवाह करें, *यह मोहि मागें देहु* = यह वरदान मैं माँगता हूँ, आप प्रदान करें।

प्रभु राम शंकर जी से आग्रह करते हैं कि यदि आपका मुझ पर प्रेम है तो मुझे यह वरदान दें कि आप पार्वती जी से विवाह करेंगे। विवाह हो जायेगा तो सारी समस्यायें समाप्त हो जायेंगी, पार्वती का दु:ख दूर होगा, जिससे आपका भी दु:ख दूर हो जायेगा। बीच में जो व्यवधान आ गया था वह समाप्त हो जायेगा।

पार्वती से विवाह की बात शिव जी स्वीकार कर लेते हैं

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं ॥77:1॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा ॥77:2॥

कह सिव = शंकर जी कहते हैं, *जदपि उचित अस नाहीं* = यद्यपि ऐसा करना उचित नहीं है, *नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं* = पर आपकी बात को मिटाया नहीं

जा सकता, *सिर धरि* = सिर में धारण करके, *आयसु करिअ तुम्हारा* = आपकी आज्ञा का पालन करूँगा, *परम धरमु यह नाथ हमारा* = यह हमारा परम धर्म है।

शंकर जी कहते हैं कि यह बात तो ठीक नहीं है कि सती का त्याग कर दिया फिर विवाह कर लें। कोई एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण कर ले तो उसका अपराध समाप्त नहीं हो गया, इसलिये यह उचित नहीं है। प्रभु राम ने दूसरा तर्क दिया था कि उनके दोष दूर हो गये हैं। शिव जी कहते हैं कि यदि ऐसा कहते हो तो ठीक है, आपकी बात को मिटाया तो नहीं जा सकता है, अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। अगर आप कहते हैं कि सती को पार्वती के रूप में फिर से स्वीकार कर लो तो करेंगे। आपकी आज्ञा को हम शिरोधार्य करते हैं, यही हमारा परमधर्म है।

परमधर्म के लिये धर्म को छोड़ा जा सकता है

रामचरितमानस में जगह-जगह धर्म व परमधर्म शब्द आते रहते हैं। साधारण धर्म को धर्म कहते हैं जबकि ज्ञान, भक्ति, परमार्थ ये परमधर्म हैं। परमधर्म के पालन के लिये धर्म को छोड़ा जा सकता है। सती का त्याग धर्म था, श्रीराम की आज्ञा का पालन करना परमधर्म है। उनकी आज्ञा का पालन करने के लिये शंकर जी धर्म को छोड़ देते हैं।

माता-पिता, गुरु व स्वामी की आज्ञा मानें

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी ॥77:3॥
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी। अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी ॥77:4॥

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी = माता-पिता, गुरु और स्वामी की बात को, *बिनहिं बिचार* = बिना सोचे, *करिअ सुभ जानी* = शुभ मानकर करना चाहिये, *तुम्ह सब भाँति परम हितकारी* = आप तो सब प्रकार से मेरे परम हितकारी हैं, *अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी* = आपकी आज्ञा हमारे सिर पर है।

शंकर जी नीति का वचन कहते हैं कि माता, पिता, गुरु और प्रभु इन चारों की आज्ञा को मानना चाहिये। इन चारों की आज्ञा में विचार करने की जरूरत नहीं है, इन्हें शुभ समझकर मानें। यदि भगवान के सेवक हो तो उन्हें स्वामी

मानते हुए उनके उपदेश जो गीता, रामायण आदि ग्रंथों में लिखे हैं उसे मानो। शंकर जी कहते हैं कि आप तो हमारे सभी प्रकार से हितकारी हो, आपकी बात को तो हमें मानना ही मानना है।

शंकर जी की बातों से राम संतुष्ट हो अंतर्धान हो जाते हैं

प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना ॥77:5॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखेहु जो हम कहेऊ ॥77:6॥
अंतरधान भए अस भाषी। संकर सोइ मूरति उर राखी ॥77:7॥

प्रभु तोषेउ= प्रभु राम संतुष्ट हो गये, *सुनि संकर बचना*= शंकर जी की बातों को सुनकर, *भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना*= जो भक्ति, ज्ञान और धर्म से युक्त थी, *कह प्रभु*= राम कहते हैं, *हर*= हे शंकर, *तुम्हार पन रहेऊ*= अब आपका प्रण यानि नेम या व्रत पूरा हो गया है, *अब उर राखेहु* = अब हृदय में धारण करना, *जो हम कहेऊ*= जो हमने कहा है, *अंतरधान भए अस भाषी* = ऐसा कहकर श्रीराम अंतर्धान हो गये, *संकर सोइ मूरति उर राखी* = राम का वही रूप शंकर जी ने हृदय में धारण कर लिया।

प्रभु राम को संतोष हुआ, प्रसन्न हुए कि शिव ने हमारी बात मान ली। प्रभु ने देखा कि शंकर जी धर्म का पालन करते हैं, विवेक की बात करते हैं व इनमें हमारे प्रति भक्ति भी है। राम कहते हैं, देखिये आपका सती त्याग का प्रण पूरा हो गया है, इसलिये पार्वती से विवाह करने की मेरी बात को अपने हृदय में रखियेगा। 'रखना' कहकर, राम अपनी बात पक्की करा रहे हैं। इतना कहकर प्रभु राम अंतर्धान हो जाते हैं। भगवान सब जगह हैं, प्रेम देखकर किसी भी रूप में हृदय के अंदर या हृदय के बाहर प्रकट हो सकते हैं। प्रभु जब प्रकट थे, तो जैसा तेजस्वी, अलौकिक सौंदर्य से परिपूर्ण, शीलनिधान रूप था, उसे ही शंकर जी ने अपने हृदय में धारण कर लिया।

14. सप्तऋषि मध्यस्थ बन पार्वती व हिमवान् के पास जाते हैं

(दोहा 77 से 81)

इस प्रसंग में भारतीय संस्कृति के तौर-तरीकों का बहुत सुंदर वर्णन है। राम जी के कहने से शिव सीधे पार्वती के पास जाकर विवाह न करके, लोकरीति का

पालन करते हैं। सबसे पहले कन्या की इच्छा जानते हैं कि वह क्या चाहती है, फिर उनके पिता से बातचीत होती है, वे दोनों राजी हैं, तब वर की सहमति बतायी जाती है। इन सब कार्यों के लिये सप्तऋषियों को मध्यस्थ बनाकर भेजते हैं। पार्वती जी को देखकर सप्तऋषियोंको लगा जैसे तपस्या की मूर्ति हों। पार्वती से पूछते हैं कि क्या चाहती हो, वे कहती हैं शिव से विवाह। अनेक तर्क-कुतर्क के बाद पार्वती के प्रेम व बुद्धिमानी के आगे सप्तऋषि नतमस्तक हो हिमाचल के पास जाते हैं, जो पार्वती को वन से घर ले आते हैं। उमा के प्रेम का समाचार सुनकर शंकर जी मगन हो जाते हैं।

शंकर जी सप्तऋषियों को पार्वती व हिमाचल के पास भेजते हैं

तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। बोले प्रभु अति बचन सुहाए ॥77:8॥

पारबती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु ।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु संदेहु ॥दोहा 77॥

तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए = इसके बाद सप्तऋषि शंकर जी के पास आते हैं, *बोले प्रभु अति बचन सुहाए* = शंकर जी अत्यंत सुंदर वचन बोलते हैं।
पारबती पहिं जाइ तुम्ह = पार्वती के पास तुम जाओ, *प्रेम परिच्छा लेहु* = उनके प्रेम की परीक्षा लो, *गिरिहि प्रेरि* = हिमावन् को प्रेरित करके, *पठएहु भवन* = पार्वती को घर भिजवाइये, *दूरि करेहु संदेहु* = और उनके संदेह को दूर करिये।

रामचरितमानस में भारतीय संस्कृति की विधि-प्रथाओं का बहुत सुंदर वर्णन है। यही सीखने व जीवन में उतारने की बात है। यद्यपि शंकर जी जानते हैं कि पार्वती की परीक्षा की जरूरत नहीं है, प्रभु राम ने कह दिया तो ठीक ही है, पर वे लोकरीति का पालन करते हैं। सप्तऋषियों को तीन कार्य करने के लिये भेजते हैं।

1. पार्वती की प्रेम परीक्षा लेना– कहते हैं कि यह देखना कि वे हमसे विवाह करना चाहती हैं कि नहीं। विवाह में सबसे पहले कन्या की इच्छा जाननी चाहिये, यही लोकरीति है, जिसका पालन शंकर जी कर रहे हैं। शंकर जी

को परीक्षा अब भी याद है। उन्हें लगा कि सती परीक्षा प्रिय थीं, उन्होंने मेरे प्रभु राम की परीक्षा ली थी, अब इनकी परीक्षा लो।

2. हिमवान् के पास जाना– इसके बाद पार्वती के पिता हिमाचल के पास जाना, उनसे कहना कि पार्वती को वन से घर वापस ले आयें। शंकर जी पहले ही जानते हैं कि पार्वती प्रेम परीक्षा में पास होंगी।
3. संदेह दूर करना– हिमाचल के मन में या पार्वती के मन में यदि यह संदेह हो कि शंकर जी विवाह करेंगे कि नहीं तो इसे दूर करना। कन्या तैयार, पिता तैयार फिर वर पक्ष की सहमति।

तपोमूर्ति पार्वती से सप्तऋषि पूछते हैं– तुम क्या चाहती हो?

रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी। मूरतिमंत तपस्या जैसी ॥78:1॥
बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। करहु कवन कारन तपु भारी ॥78:2॥
केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु किन कहहू ॥78:3॥

रिषिन्ह = सप्तऋषियों को, *गौरि* = पार्वती जी, *देखी तहँ कैसी* = कैसी दिखीं? *मूरतिमंत तपस्या जैसी* = मानो तपस्या की मूर्ति हों, *बोले मुनि सुनु सैलकुमारी* = मुनियों ने कहा हे शैलपुत्री पार्वती सुनो, *करहु कवन कारन तपु भारी* = तुम इतना भारी तप किसलिये कर रही हो? *केहि अवराधहु* = तुम किसकी आराधना कर रही हो? *का तुम्ह चहहू* = तुम क्या फल चाहती हो? *हम सन सत्य मरमु किन कहहू* = हमसे सच बताओ कि तुम चाहती क्या हो?

सप्तऋषि पार्वती जी के पास पहुँचते हैं। वे बिल्कुल तपस्विनी रूप धारण किये हुए विद्यमान थीं। तपस्या के सभी लक्षण उनमें दिखे। ऐसा लग रहा था मानो तपस्या ही मूर्ति बनकर बैठी हो। सप्तऋषि तीन बातें पूछते हैं।

1. तुम इतना कठोर तप किसलिये कर रही हो?
2. तुम किसकी आराधना कर रही हो?
3. इस तप व आराधना का क्या फल चाहती हो?

पार्वती बोलीं– नारद के कहने से शिव को वर पाना चाहते हैं

कहत बचन मनु अति सकुचाई। हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई ॥78:4॥
मनु हठ परा न सुनइ सिखावा। चहत बारि पर भीति उठावा ॥78:5॥

कहत बचन मनु अति सकुचाई = पार्वती जी कहती हैं कि कहने में मन में संकोच लग रहा है, *हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई* = हमारी मूर्खता सुनकर आप लोग हँसोगे, *मनु हठ परा* = हमारे मन ने एक हठ पकड़ लिया है, *न सुनइ सिखावा* = अब यह कुछ सुनता ही नहीं है, *चहत बारि पर* = यह पानी पर, *भीति उठावा* = दीवाल उठाना चाहता है।

नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिनु पंखन्ह हम चहहिं उड़ाना ॥78:6॥
देखहु मुनि अबिबेकु हमारा। चाहिअ सदा सिवहि भरतारा ॥78:7॥

नारद कहा = नारदजी ने जो कहा, *सत्य सोइ जाना* = उसे सत्य मानकर, *बिनु पंखन्ह* = बिना पंख के ही, *हम चहहिं उड़ाना* = हम उड़ना चाहते हैं, *देखहु मुनि अबिबेकु हमारा* = हे मुनि हमारा अज्ञान देखिये, *चाहिअ सदा सिवहि* = हम शिव जी को सदा चाहते हैं, *भरतारा* = पति के रूप में।

पार्वती जी बहुत ही संकोच परन्तु बुद्धिमानी से प्रश्नों का उत्तर देती हैं। कहती हैं, हमारे मन ने एक हठ पकड़ लिया है, अब इस मन को कितना भी समझावें वह मानता ही नहीं। 'पानी पर दिवाल उठाना' मुहावरे से समझाती हैं कि असंभव को संभव करने की चाहत है। ऋषिवर, आप लोग हमारी चाहत सुनकर हँसोगे। परंतु यह हठ हम अपने आप नहीं कर रहे हैं, हम मनमानी नहीं कर रहे हैं, हमारे एक गुरु हैं जिनका नाम नारद है, उन्होंने ही तप व आराधना का तरीका हमें बताया है। उनकी बात को ही सत्य मानकर हम यह सब कर रहे हैं। दूसरे उदाहरण से समझाती हैं कि हम तो बिना पंख के ही उड़ना चाहते हैं। अंत में कहती हैं कि हम शंकर जी को पति के रूप में पाना चाहते हैं।

सप्तऋषि पार्वती का उपहास व नारद की निंदा करते हैं

सुनत बचन बिहसे रिषय गिरिसंभव तव देह ।
नारद कर उपदेसु सुनि कहहु बसेउ किसु गेह ॥दोहा 78॥

सुनत बचन बिहसे रिषय = पार्वती के वचन सुनकर ऋषि उपहासपूर्वक हँसे, *गिरिसंभव तव देह* = हिमाचल यानि पत्थर से ही तुम्हारी उत्पत्ति हुई है, *नारद कर उपदेसु सुनि* = नारद का उपदेश सुनकर, *कहहु* = बताओ तो, *बसेउ किसु गेह* = किसका घर बसा है?

पार्वती का उत्तर सुनकर सप्तऋषि उपहास करने लगे, हँसी उड़ाने लगे। कहते हैं कि हिमालय की पुत्री हो, पत्थर से ही तुम्हारी उत्पत्ति हुई है, पत्थर जैसी ही तुम्हारी जड़ बुद्धि है। पार्वती ने तो अपने आप को जड़ बुद्धि स्वयं ही स्वीकार कर लिया था, पर यह बताया था कि नारदजी तो बड़े ज्ञानवान हैं, हम उनके कहने से ही चल रहे हैं। इसलिये सप्तऋषि नारद जी की भी हँसी उड़ाते हुए कहते हैं कि वह तो सब चौपट करने वाला है, उसका उपदेश सुनकर आज तक किसी का घर नहीं बसा है।

नारद के उपदेश से घर बर्बाद होने के तीन उदाहरण देते हैं

दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई। तिन्ह फिरि भवनु न देखा आई ॥79:1॥
चित्रकेतु कर घरु उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला ॥79:2॥

दच्छसुतन्ह = दक्ष के पुत्रों को, *उपदेसेन्हि जाई* = नारद ने जाकर उपदेश दिया, *तिन्ह फिरि* = वे लोग लौटकर, *भवनु न देखा आई* = अपने घर नहीं आये, *चित्रकेतु कर घरु* = चित्रकेतु के घर को, *उन घाला* = उन्होंने ही बर्बाद कर दिया, *कनककसिपु कर* = हिरण्यकश्यप का, *पुनि अस हाला* = फिर यही हाल किया।

1. दक्ष पुत्रों की कथा– दक्ष ने अपने पुत्रों को तपस्या के लिये भेजा ताकि तप से वे शक्ति संचय करें, फिर घर वापस आकर परिवार बढ़ायें, घर गृहस्थी चलायें। नारद जी ने देखा इतने सारे बालक इतनी सुंदर तपस्या कर रहे हैं, तो उन्हें वेदांत व ज्ञान का उपदेश दे दिया, वे बालक भगवान प्राप्ति में लग गये, लौटकर घर नहीं गये।
2. चित्रकेतु की कथा– चित्रकेतु एक राजा थे, कई विवाह के बाद भी पुत्र न होने के कारण चिंतित होकर नारद जी से उपाय पूछते हैं। नारद जी ने कहा तुम्हारे प्रारब्ध में पुत्र नहीं तो क्या हुआ, तुम भगवान का भजन करो। राजा ने कहा, पुत्र के नहीं होने पर मरने के बाद हमारा तर्पण नहीं होगा और हम नर्क में चले जायेंगे। नारद जी की सलाह पर पुत्रकामना यज्ञ से एक पुत्र हुआ पर बाद में मर गया। राजा ने नारद जी से उस पुत्र को जिलाने की प्रार्थना की। नारद जी ने पुत्र के जीव से कहा तुम्हारे पिता बहुत दु:खी हैं तुम वापस शरीर में प्रवेश करो। जीव ने कहा, मेरे तो कई

जन्म हुए हैं, कौन किसका पिता क्या मालूम। तब राजा चित्रकेतु नारद का उपदेश मानकर रानियों व राज्य को छोड़ वन में जाकर ईश्वर आराधना में लग गये।

3. हिरण्यकश्यप की कथा– जब प्रह्लाद अपनी माँ के गर्भ में था तब नारदजी ने उसकी माँ को भगवान की भक्ति का उपदेश दे दिया। गर्भ में ही उसे भक्त बना दिया। बाद में प्रह्लाद के कारण ही उसके पिता हिरण्यकश्यप का वध हुआ, जो राक्षसी स्वभाव के थे।

नारद का उपदेश तो घर छुड़वाकर भिखारी बना देता है

नारद सिख जे सुनहिं नर नारी। अवसि होहिं तजि भवनु भिखारी ॥79:3॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा ॥79:4॥

नारद सिख जे सुनहिं नर नारी = नारद की शिक्षा को जो स्त्री या पुरुष सुनते हैं, *अवसि होहिं* = वे अवश्य हो जाते हैं, *तजि भवनु* = घर छोड़कर, *भिखारी* = भीख माँग कर खाने वाले, *मन कपटी* = उनका मन तो कपटी है, *तन सज्जन चीन्हा* = वेष तो सज्जन का बनाये रहते हैं, *आपु सरिस* = अपने ही समान, *सबही चह कीन्हा* = सबको बनाना चाहते हैं।

नारद का उपदेश स्त्री या पुरुष कोई भी सुने, उन सबका घर नहीं बसता, वे विरक्त हो जाते हैं, सन्यासी हो जाते हैं, भिक्षा माँग कर खाने लगते हैं। नारद बने तो सज्जन रहते हैं पर उनके मन में कपट रहता है। नारद का न घर है, न परिवार है, न पत्नी है, यहाँ-वहाँ भटकते रहते हैं। उपदेश देकर, सबको अपने जैसा ही बना लेना चाहते हैं।

सप्तऋषि शंकर जी में 9 तरह के दोषों को बताते हैं

तेहि कें बचन मानि बिस्वासा। तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा ॥79:5॥
निर्गुन निलज कुबेस कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली ॥79:6॥

तेहि कें बचन मानि बिस्वासा = उन्हीं की बातों पर विश्वास करके, *तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा* = ऐसा पति चाहती हो जो स्वभाव से ही उदास हो, *निर्गुन* = गुणरहित, *निलज* = बिना लज्जा का, *कुबेस* = बुरे वेष वाला,

कपाली = नरमुंडों की माला पहने, *अकुल* = कुलहीन, *अगेह* = बिना घर का, *दिगंबर* = वस्त्र न पहने, *ब्याली* = साँपों को लपेटे रखने वाला हो।

नारद जी की बातों पर विश्वास करके तुम ऐसे व्यक्ति से विवाह करना चाहती हो जिसमें बहुत दोष हैं। सप्तऋषि 9 दोषों को बताते हैं:
1. उदासा– स्वभाव से ही उदास है। किसी में कोई रुचि नहीं है।
2. निर्गुन– गुणरहित है, कोई गुण नहीं है।
3. निलज– बिना लज्जा के है।
4. कुबेस– बुरा वेष बनाये रहते हैं।
5. कपाली– नरमुंडों की माला पहने रहते हैं।
6. अकुल– उनका कोई कुल नहीं है।
7. अगेह– उनका घर नहीं है बस घूमते रहते हैं।
8. दिगंबर– वस्त्र नहीं पहनते बाघम्बर की छाल लपेटे रहते हैं।
9. ब्याली– शरीर में सर्पों को लपेटे रहते हैं।

पहले सती से विवाह हुआ था, फिर सती को मरना पड़ा

कहहु कवन सुखु अस बरु पाएँ। भल भूलिहु ठग के बौराएँ ॥79:7॥
पंच कहें सिवँ सती बिबाही। पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही ॥79:8॥

कहहु कवन सुखु = तुम्हीं बताओ, क्या सुख मिलेगा? *अस बरु पाएँ* = ऐसे वर को पाने से, *भल भूलिहु* = तुम अपना ही भला भूल बैठी, *ठग के बौराएँ* = उस ठग के चक्कर में आकर, *पंच कहें* = पंचों के कहने से, *सिवँ सती बिबाही* = शिव जी ने सती से विवाह किया, *पुनि अवडेरि* = फिर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि, *मराएन्हि ताही* = सती को अपने प्राण त्यागने पड़े।

सप्तऋषि इतिहास बताते हुए कहते हैं कि पूर्वकाल में शंकर जी ने पंचों के कहने से सती से विवाह कर लिया था। बाद में ऐसी परिस्थिति बना दी कि सती को अपने प्राण ही त्यागने पड़े। बताओ, ऐसे पति के मिलने से तुम्हें कौन-सा सुख मिलने वाला है? नारद ठग है, कहाँ तुम उसके कहने में आ गई हो। अपना हित तो सोचो!

शंकर जी भिखारी जैसे रहते हैं, गृहस्थी नहीं चला सकते

अब सुख सोवत सोचु नहिं भीख मागि भव खाहिं ।
सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं ॥दोहा 79॥

अब सुख सोवत = अब वे आराम से सोते हैं, *सोचु नहिं* = उन्हें कोई चिंता नहीं है, *भीख मागि भव खाहिं* = भीख मांगकर खा लेते हैं, *सहज एकाकिन्ह के भवन* = स्वभाव से ही अकेले रहने वाले के घर, *कबहुँ कि नारि खटाहिं* = क्या कभी इनके साथ कोई स्त्री रह सकती है?

सप्तऋषि अब शंकर जी के वर्तमान का वर्णन करते हैं कि सती के मरने के बाद उन्हें कोई चिंता नहीं है, आराम से सोते हैं, भीख मांगकर खा लेते हैं। ये स्वभाव से ही अकेले रहने वाले हैं, इनके साथ स्त्री नहीं रह सकती है। ये स्त्री के साथ निर्वाह करने योग्य नहीं हैं। इस प्रकार सप्तऋषि पार्वती के मन में संदेह उत्पन्न करने की कोशिश करते हैं।

विष्णु के 9 गुण बताकर, उनसे शादी का प्रस्ताव रखते हैं

अजहूँ मानहु कहा हमारा। हम तुम्ह कहुँ बरु नीक बिचारा ॥80:1॥
अति सुंदर सुचि सुखद सुसीला। गावहिं बेद जासु जस लीला ॥80:2॥
दूषन रहित सकल गुन रासी। श्रीपति पुर बैकुंठ निवासी ॥80:3॥
अस बरु तुम्हहि मिलाउब आनी। सुनत बिहसि कह बचन भवानी ॥80:4॥

अजहूँ मानहु कहा हमारा = अब भी हमारा कहना मान लो, *हम तुम्ह कहुँ* = हमने तुम्हारे लिये, *बरु नीक बिचारा* = एक अच्छे वर के बारे में सोच रखा है, *अति सुंदर* = बहुत सुंदर, *सुचि* = पवित्र, *सुखद* = सुखदायक, *सुसीला* = सुशील है, *गावहिं बेद* = वेद गाते हैं, *जासु जस लीला* = उसके यश व लीला को, *दूषन रहित* = वह दोषरहित है, *सकल गुन रासी* = उसमें सभी गुण हैं, *श्रीपति* = बड़े ही संपन्न हैं, *पुर बैकुंठ निवासी* = बैकुंठ में उनका घर है, *अस बरु* = ऐसे वर को, *तुम्हहि मिलाउब आनी* = लाकर हम तुमसे मिलवा देंगे, *सुनत* = मुनियों की बातें सुनकर, *बिहसि कह बचन भवानी* = पार्वती जी उपहास में हँसकर बोलती हैं।

सप्तऋषि कहते हैं कि तुम अब भी हमारा कहना मान लो, तुम्हारे लिये एक बहुत ही सुंदर वर हमारी नजर में है। इस वर में गुण ही गुण हैं। 9 गुणों का वर्णन करते हैं जो शंकर जी के दोषों के विपरीत हैं।

1. अति सुंदर– पीताम्बर पहनते हैं, गले में सुंदर माला है, अति सुंदर हैं। जबकि शंकर ने कुवेष बना रखा है।
2. सुचि– वे पवित्र हैं, साफ सुथरे रहते हैं, शंकर तो श्मशान की भस्म लगाये रहते हैं, सर्प लपेटे हैं।
3. सुखदायक– उनके दर्शन मात्र से सुख मिलता है। शंकर जी के रूप को देखो तो भय लग जाये।
4. सुशील– किसी से बुरा बर्ताव नहीं करते, शंकर ने तो सती का त्याग किया था।
5. गुणवान– वे इतने गुणों से भरपूर हैं कि वेद भी उनकी महिमा गाते हैं।
6. दूषन रहित– उनमें कोई दोष नहीं है।
7. सकल गुण राशि– सभी प्रकार के गुणों से भरपूर हैं।
8. श्रीपति– बड़े ही संपन्न हैं, खूब धन संपत्ति है।
9. वैकुण्ठवासी– वैकुण्ठ में बहुत ही सुंदर महल है, सब सुविधा से युक्त वहीं वास करते हैं। शंकर जी तो बरगद के पेड़ के नीचे ही रहते हैं।

ऐसे सुंदर वर के लिये तुम्हें तपस्या की भी कोई जरूरत नहीं है, तुम बस हाँ कह दो, हम तुरंत लाकर मिलवा देंगे। तुम्हें स्वीकृति भर देनी है। मुनियों के वचन सुनकर पार्वती जी उपहास में हँसकर उत्तर देती हैं।

सप्तऋषियों को पार्वती बहुत सुंदर जवाब देती हैं

इतनी सब बातें सुनने के बाद पार्वती जी, ऋषियों का वैसा ही उपहास उड़ाते हुए जवाब देती हैं, जैसा उन्होंने पार्वती की बात का मजाक बनाया था। उनकी एक-एक बात का बहुत ही बुद्धिमानी पूर्वक सुंदर जवाब देती हैं। ये सब उत्तर हमारे लिये भी हैं। कैसे हम अपने लक्ष्य पर अटल रहें, कैसे गुरु की बतायी साधना विश्वास के साथ करते रहें। इस प्रसंग का पाठ करते समय माँ पार्वती से प्रार्थना करें कि हमारा भी अपने गुरुदेव पर, उनकी बतायी साधना पर सदैव विश्वास बना रहे और उसे नियमित करते रहें।

हाँ हम पर्वत की पुत्री हैं, इसलिये अटल हैं

सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा। हठ न छूट छूटै बरु देहा ॥80:5॥

सत्य कहेहु = आप सत्य कहते हैं, *गिरिभव तनु एहा* = हमारा यह शरीर पर्वत से यानि पत्थर से उत्पन्न हुआ है, *हठ न छूट* = इसलिये हमारा हठ नहीं छूटेगा, *छूटै बरु देहा* = शरीर भले ही छूट जाये।

पार्वती जी कहती हैं, आपने ठीक कहा है, हम हिमालय पर्वत की ही पुत्री हैं। पर वह दोष नहीं हमारा गुण है। हम तो पत्थर की लकीर हैं, मजबूत हैं, जैसे पत्थर की लकीर मिट नहीं सकती वैसे ही हम प्रण नहीं त्याग सकते। हममें हिमालय जैसी दृढ़ता है, हम अटल हैं, शरीर छूट जाये पर हमारी प्रतिज्ञा नहीं छूटेगी।

हम पत्थर से निकला सोना हैं, जो तपाने से निखरता है

कनकउ पुनि पषान तें होई। जारेहुँ सहजु न परिहर सोई ॥80:6॥

कनकउ पुनि = सोना भी, *पषान तें होई* = पत्थर से ही उत्पन्न होता है, *जारेहुँ* = जलाये जाने पर भी, *सहजु* = अपना गुण या स्वभाव, *न परिहर सोई* = वह नहीं छोड़ता है।

कहती हैं अरे! पत्थर से कोई पत्थर बस थोड़े ही पैदा होता है, उससे सोना भी तो निकलता है। सोने को चाहे जितना तपाओ वह अपना सहज गुण नहीं छोड़ता है। तपाने से वह और शुद्ध होकर निखर जाता है। इसी प्रकार हे मुनियों! आप हमें चाहे जितना प्रलोभन दो हम अपना प्रण बदलने वाले नहीं हैं। आपके प्रलोभनों से हमारा शिव जी के प्रति प्रेम निखरकर और शुद्ध हो रहा है।

घर बसे या उजड़े, अपने गुरु नारद के वचन नहीं त्यागेंगे

नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ ॥80:7॥
गुर कें बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही ॥80:8॥

नारद बचन न मैं परिहरऊँ = नारद के बचन को मैं नहीं त्यागूँगी, *बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ* = चाहे घर बसे या उजड़े इससे मैं नहीं डरती, *गुर कें बचन प्रतीति न जेही* = जिसे गुरु के वचनों में विश्वास नहीं है, *सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही* = उसे स्वप्न में भी न सुख न सिद्धि प्राप्त होगी।

पार्वतीजी स्पष्ट कहती हैं कि नारद के वचन से चाहे हमारा घर बस जाये, चाहे उजड़ जाये हम इन सब बातों से डरने वाले नहीं हैं। मैं नारद के वचन को किसी भी तरह त्यागूँगी नहीं। जिन लोगों को गुरु के वचनों में विश्वास नहीं होता उन्हें स्वप्न में भी न तो सिद्धि मिलती न ही सुख मिलता है। सिद्धि से आशय चित्त की शुद्धि से भी है।

मन तो अब शंकर में ही रम गया है, गुण-दोष से मतलब नहीं

महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम ।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम ॥दोहा 80॥

महादेव अवगुन भवन= शंकर जी में अवगुण ही अवगुण हों, *बिष्नु सकल गुन धाम*= और विष्णु में सभी तरह के गुण हों, *जेहि कर मनु रम जाहि सन*= पर जिसका मन जिसमें रम गया, *तेहि तेही सन काम*= उसको तो उसी से काम है।

आप लोग बता रहे हैं कि महादेव शंकर में अवगुण ही अवगुण हैं और विष्णु में गुण ही गुण हैं, पर हमारा मन तो अब शंकर में ही रम गया है। जिसका मन जहाँ रम जाये उसे तो बस उसी से काम है। अब हमें गुण-दोषों पर विचार नहीं करना है।

यदि आप पहले मिलते तो आपकी बात मान लेते

जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा। सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा ॥81:1॥
अब मैं जन्मु संभु हित हारा। को गुन दूषन करै बिचारा ॥81:2॥

जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा= हे मुनियों यदि आप पहले मिलते, *सुनतिउँ सिख तुम्हारि*= आपकी शिक्षा को मैं सुनती, *धरि सीसा*= सिर पर रखकर, *अब मैं जन्मु संभु हित हारा*= लेकिन अब मैंने अपना जीवन शिव पर ही लगा दिया है, *को गुन दूषन करै बिचारा*= इसलिये उनके गुण व दोष में विचार करने की आवश्यकता नहीं।

हे मुनियों! यदि आप पहले मिलते तो मैं आपकी शिक्षा शिरोधार्य करती। हमें पहले ही ऐसा गुरु मिल गया, जिनके कहने से अपना जीवन शिव पर ही

लगा दिया है। अब उनके गुण-दोष में विचार करने की आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति को अपने गुरु या इष्ट का चयन एक बार सावधानी से अच्छी तरह देख-सुनकर करना चाहिये। चुनने के बाद उनके गुण-दोष मत देखो। उनमें परमात्म भाव रखें।

संसार में बहुत से वर-कन्या हैं, उनका विवाह करवाओ

जौं तुम्हरे हठ हृदयँ बिसेषी। रहि न जाइ बिनु किएँ बरेषी ॥81:3॥
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं। बर कन्या अनेक जग माहीं ॥81:4॥

जौं तुम्हरे हठ हृदयँ बिसेषी = यदि आपके हृदय में बहुत हठ है, *रहि न जाइ* = आपसे रहा नहीं जाता, *बिनु किएँ बरेषी* = बिना विवाह करवाये, *तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं* = तो खिलवाड़ करने वालों को आलस्य कहाँ, *बर कन्या अनेक जग माहीं* = संसार में अनेक वर व कन्या हैं, जाकर उनका विवाह करवाओ।

यदि इतना सब कहने के बाद भी आप लोगों के मन में बहुत हठ है कि हमें तो विवाह कराना ही है, आपको विवाह करवाने की आदत पड़ गयी है, बिना बरेखी कराये आपको रहा नहीं जाता, तो संसार में बहुत से वर-कन्या पड़े हैं, जाइये उनका विवाह करवाइये।

एक जन्म की क्या बात, हर जन्म में शिव से विवाह का प्रण है

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी ॥81:5॥

जन्म कोटि लगि = करोड़ जन्म में भी, *रगर हमारी* = हमारा एक ही हठ रहेगा, *बरउँ संभु* = शंकर जी से विवाह करेंगे, *न त रहउँ कुआरी* = नहीं तो बिना विवाह किये रहूँगी।

अब पार्वती जी अंतिम बात कह देती हैं कि एक जन्म की बात ही क्या है, मैं जितने बार भी जन्म लूँगी हर बार शंकर जी से ही विवाह करूँगी। यदि उनसे विवाह नहीं हुआ तो अन्य किसी से विवाह न करके कुँवारी ही रहूँगी।

शिव भी कहें कि नारद-वचन असत्य, तो भी हम न मानेंगे

तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू ॥81:6॥

तजउँ न नारद कर उपदेसू = नारदजी के उपदेश को नहीं त्यागूँगी, *आपु कहहिं* = चाहे आप कहें, *सत बार महेसू* = चाहे सौ बार शंकर जी स्वयं कहें।

नारद जी ने कहा था कि वर बहुत हैं, पर तुम्हारे लिये शंकर ही वर हैं, इसलिये हम शंकर जी को वर रूप में प्राप्त करेंगे। हे सप्तऋषि! आप अपनी बात तो छोड़िये, यदि शिव जी आवें, वे भी कहें कि पार्वती! तुमने नारद की बात मानकर बहुत गलती की है, नारद का वचन असत्य है, तो भी हम नारद की बात ही मानेंगे।

हे सप्तऋषि! अब आप अपने घर जाओ, और बहस नहीं।

मैं पा परउँ कहइ जगदंबा। तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा ॥81:7॥

मैं पा परउँ = मैं आपके पैर पड़ती हूँ, *कहइ जगदंबा* = जग-जननी पार्वती जी कहती हैं, *तुम्ह गृह गवनहु* = अब आप अपने घर जाओ, *भयउ बिलंबा* = बहुत देर हो गई है।

इस प्रकार अपनी बात पूरी कहकर, जगत की माता जगदंबा पार्वती जी सप्तऋषियों से कहती हैं कि अब मैं आपके पैर पकड़कर विनती करती हूँ कि आप अपने घर जाओ, बहुत देर हो गई है। बहुत बहस करने से कोई फायदा नहीं, अब आप जाओ।

पार्वती के सामने सप्तऋषि नतमस्तक हो जाते हैं

देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी। जय जय जगदंबिके भवानी ॥81:8॥

देखि प्रेमु = पार्वती का प्रेम देखकर, *बोले मुनि ग्यानी* = ग्यानी मुनि कहते हैं, *जय जय जगदंबिके भवानी* = हे जगत् की माता, हे भवानी आपकी जय हो, जय हो।

तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु ।
नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु ॥दोहा 81॥

तुम्ह माया = आप माया हैं, *भगवान सिव* = शंकर जी भगवान हैं, *सकल जगत पितु मातु* = आप संपूर्ण संसार के माता-पिता हैं, *नाइ चरन सिर* = पार्वती जी के चरणों में सिर नवाकर प्रणाम करके, *मुनि चले* = मुनि वहाँ से चल दिये, *पुनि पुनि हरषत गातु* = उनके शरीर प्रसन्नता से बार-बार पुलकित हो रहे थे।

पार्वती जी के हृदय में शिव के प्रति अटल प्रेम व नारद जी के वचनों में पूर्ण विश्वास को देखकर सप्तऋषि धन्य हो जाते हैं, उनके शरीर प्रसन्नता से पुलकित हो जाते हैं। वे पार्वती जी के चरणों में शीश नवाकर प्रणाम करके कहते हैं, हे जगत् की माता, हे भवानी आपकी जय हो, जय हो। शंकर जी भगवान हैं आप उनकी माया हैं। आप ही संपूर्ण जगत् के माता-पिता हैं। शिव जी के आदेशानुसार परीक्षा लेकर अब वे हिमाचल के पास जाते हैं।

सप्तऋषि हिमाचल से मिलते हैं, जो पार्वती को घर ले आते हैं

जाइ मुनिन्ह हिमवंतु पठाए। करि बिनती गिरजहिं गृह ल्याए ॥82:1॥

जाइ मुनिन्ह = मुनियों ने जाकर, *हिमवंतु पठाए* = हिमवान् को पार्वती के पास भेजा, *करि बिनती गिरजहिं गृह ल्याए* = हिमवान् पार्वती से विनती कर घर लिवा लाये।

सप्तऋषि हिमाचल के घर पहुँचते हैं, उन्हें शंकर जी का संदेश देकर कहते हैं कि पार्वती का तप पूरा हो गया है, अब आप उन्हें वन से घर ले आइये। हिमाचल पार्वती को समझाकर घर वापस ले आते हैं।

उमा का प्रेम सुन शंकर जी मगन, सप्तऋषि घर चले गये

बहुरि सप्तरिषि सिव पहिं जाई। कथा उमा कै सकल सुनाई ॥82:2॥
भए मगन सिव सुनत सनेहा। हरषि सप्तरिषि गवने गेहा ॥82:3॥

बहुरि = फिर, *सप्तरिषि सिव पहिं जाई* = शंकर जी के पास जाते हैं, *कथा उमा कै सकल सुनाई* = उमा की सारी कथा सुनाते हैं, *भए मगन सिव* = शंकर जी आनंद में मग्न हो गये, *सुनत सनेहा* = पार्वती का प्रेम सुनकर, *हरषि सप्तरिषि गवने गेहा* = सप्तऋषि प्रसन्न होकर अपने घर चले गये।

सप्तऋषि कार्य पूरा करके शंकर जी के पास जाकर सब समाचार बताते हैं। पार्वती के हृदय में अपने प्रति अटल प्रेम सुनकर, नारद के वचनों में दृढ़ विश्वास सुनकर, शंकर जी आनंदित होकर मगन हो जाते हैं। वे इस बात से संतुष्ट हैं कि कठिन तपस्या करके उमा ने अपने आपको शुद्ध कर लिया है। अब सप्तऋषि अपने घर चले जाते हैं।

15. शंकर जी समाधि में, कामदेव समाधि भंग करते हैं

(दोहा 82 से 88)

पार्वती के हृदय में अटल प्रेम व तप से चित्त शुद्धीकरण की बात सुनकर शंकर जी प्रसन्नता से राम का ध्यान करते-करते समाधि में चले जाते हैं। शिव-पार्वती विवाह हेतु समाधि भंग होना आवश्यक है। उसी समय तारक नाम का राक्षस पैदा होता है, जो शिव-पार्वती के पुत्र से ही मरने का वरदान माँग लेता है। देवता उससे त्रस्त होकर, ब्रह्मा जी के पास जाते हैं। ब्रह्मा जी कहते हैं कैसे भी समाधि भंग करवा दो, फिर हम विवाह करवा देंगे। देवता कामदेव को शंकर जी के पास भेजते हैं, सारे प्रयास करके वह हार जाता है, शिव की समाधि डिगा नहीं पाता। अंत में बाणों के प्रहार से समाधि भंग कर देता है। जैसे ही शंकर जी तीसरे नेत्र से कामदेव की तरफ देखते हैं, वह भस्म हो जाता है। पत्नी रति को वरदान देते हैं कि कामदेव अब बिना शरीर के रहेगा, द्वापर युग में फिर जन्म लेकर तुम्हारा पति होगा।

राम स्मरण करते-करते शंकर जी की समाधि लग गयी

मनु थिर करि तब संभु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना ॥82:4॥

मनु थिर करि तब = तब मन को स्थिर करके, *संभु सुजाना* = सुजान शिव जी, *लगे करन रघुनायक ध्याना* = राम जी का ध्यान करने लगे।

सती के दु:ख से शंकर जी दु:खी थे, उमा के सब समाचार सुनकर वह दु:ख का भाव समाप्त हो गया। संतुष्ट होकर राम का स्मरण करने लगे। राम का ध्यान करते-करते समाधि में चले गये। अब यह समाधि अपने से टूटने वाली नहीं है। शिव-पार्वती विवाह हेतु समाधि को भंग करने के दूसरे कारण बनते हैं। कैसे घटना बनती है, इसका वर्णन करते हैं।

तारक नाम के असुर से देवता पराजित हो दुःखी हो गये

तारकु असुर भयउ तेहि काला। भुज प्रताप बल तेज बिसाला ॥82:5॥
तेहिं सब लोक लोकपति जीते। भए देव सुख संपति रीते ॥82:6॥
अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि बिबिध लराई ॥82:7॥

तारकु असुर भयउ तेहि काला = उसी समय तारक नाम का असुर हुआ, *भुज प्रताप बल तेज बिसाला* = उसका भुजाबल; प्रताप और तेज बहुत बड़ा था, *तेहिं सब लोक* = उसने सब लोकों, *लोकपति जीते* = और लोकपालों को जीत लिया, *भए देव सुख संपति रीते* = सब देवताओं की सुख-संपत्ति चली गयी, *अजर अमर* = वह अजर-अमर था, *सो जीति न जाई* = इसलिये उसे कोई जीत नहीं सकता था, *हारे सुर* = देवता हार गये, *करि बिबिध लराई* = अनेक प्रकार से लड़ाई करके।

पौराणिक कथा के अनुसार तारकासुर ने तपस्या करके ब्रह्मा जी से वरदान माँगा कि हमें कोई भी मार न सके। ब्रह्मा जी ने कहा शरीर है, तो मरना तो होगा, अपने मरने का तरीका बताओ। असुर ने कहा कि शंकर जी का पुत्र, जो शिशु हो यानि छोटा हो वही हमें मार सकता है। शंकर जी सती का त्याग कर चुके थे, उसे लगा अब इनके पुत्र होगा नहीं, इसलिये ऐसा वरदान माँग लिया। वरदान के बाद वह अजेय हो गया, सभी देवताओं को हराकर उनकी सारी संपत्ति छीन ली। देवताओं ने बहुत बड़ी लड़ाई लड़ी, पर वे हारते गये।

ब्रह्मा देवताओं को समझाते हैं कि शिव-पुत्र ही असुर को मारेगा

तब बिरंचि सन जाइ पुकारे। देखे बिधि सब देव दुखारे ॥82:8॥

तब बिरंचि सन जाइ पुकारे = ब्रह्मा जी के पास जाकर देवता प्रार्थना करने लगे, *देखे बिधि सब देव दुखारे* = ब्रह्मा जी ने देखा कि सब देवता दुःखी हैं।

सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होइ ।
संभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतइ रन सोइ ॥दोहा 82॥

सब सन कहा बुझाइ बिधि = ब्रह्मा जी ने सबको समझा कर कहा, *दनुज निधन तब होइ* = इस दैत्य की मृत्यु तब होगी, *संभु सुक्र संभूत सुत* = शिव जी के वीर्य से पुत्र उत्पन्न हो, *एहि जीतइ रन सोइ* = वही इसे युद्ध में जीत सकता है।

सब देवता ब्रह्मा जी के पास जाते हैं, ब्रह्मा ने भी देखा कि देवता बहुत दु:खी हैं। उन्होंने सबको समझाकर कहा कि इस निशाचर का वध तभी होगा, जब शंकर के शुक्र से पुत्र उत्पन्न होगा। वैसे तो गणेश जी भी शंकर जी के पुत्र हैं, पर उनकी कथा अलग है, उन्हें पार्वती जी ने अपने तपोबल से प्रकट किया था।

शिव-पार्वती विवाह पक्का है, पर शिव-समाधि अड़चन है

मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करिहि सहाई ॥83:1॥
सतीं जो तजी दच्छ मख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा ॥83:2॥
तेहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी। सिव समाधि बैठे सबु त्यागी ॥83:3॥
जदपि अहइ असमंजस भारी। तदपि बात एक सुनहु हमारी ॥83:4॥

मोर कहा सुनि = मेरी बात सुनकर, *करहु उपाई* = उपाय करो, *होइहि* = काम हो जायेगा, *ईस्वर करिहि सहाई* = ईश्वर भी सहायता करेंगे तो, *सतीं जो* = सती ने, *तजी दच्छ मख देहा* = दक्ष के यज्ञ में अपना शरीर त्याग दिया था, *जनमी जाइ हिमाचल गेहा* = उन्होंने हिमाचल के घर जन्म ले लिया है, *तेहिं तपु कीन्ह* = उन्होंने तपस्या की है, *संभु पति लागी* = शंकर को पति रूप में पाने के लिये, *सिव समाधि बैठे सबु त्यागी* = शंकर जी सब छोड़कर समाधि में बैठ गये हैं, *जदपि अहइ असमंजस भारी* = पर यह बड़ा भारी असमंजस है कि कब तक वे समाधि में रहेंगे, *तदपि बात एक सुनहु हमारी* = फिर भी हमारी एक बात सुनो।

ब्रह्मा जी कहते हैं, सती ने दक्ष के यहाँ यज्ञ में शरीर त्याग कर दिया था, उनका जन्म हिमाचल के घर हो गया है। उन्होंने शंकर जी को पति रूप में पाने के लिये तपस्या की है। शिव से विवाह का वरदान उन्हें मिल गया है, वे घर चली गई हैं, सब ठीक है। पर एक अड़चन आ गई है कि शंकर जी सब भूलकर समाधि में बैठ गये हैं, श्रीराम का स्मरण कर रहे हैं। यह असमंजस है कि समाधि कब तक लगी रहेगी? जब उनकी समाधि भंग हो तब विवाह होगा, फिर पुत्र होगा, वही तारक को मारकर तुम सबकी समस्या हल करेगा। अब हम जैसा कहते हैं, वैसा करो, यदि ईश्वर सहायता करेंगे तो काम हो जायेगा।

सफलता के लिये प्रयास व भाग्य दोनों चाहिये

मनुष्य जब प्रयास करे तब ईश्वर भी सहायता करता है। कई बार प्रयास करने पर भी सफलता नहीं मिलती है, क्योंकि सफलता के लिये प्रयास व भाग्य दोनों चाहिये। भाग्य मायने ईश्वर की मर्जी। आपने प्रयास किया पर भाग्य नहीं है तो काम नहीं होगा। उस समय धैर्य रखें, निराश न हों, समय से ही काम होता है, पर प्रयास तो करना ही है। इस बात का ध्यान रखने से व्यक्ति निराश नहीं होता।

कामदेव से समाधि भंग करवाओ, फिर हम विवाह करवा लेंगे

पठवहु कामु जाइ सिव पाहीं। करै छोभु संकर मन माहीं ॥83:5॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवाउब बिबाहु बरिआई ॥83:6॥
एहि बिधि भलेहिं देवहित होई। मत अति नीक कहइ सबु कोई ॥83:7॥

पठवहु कामु जाइ सिव पाहीं = काम को शिव जी के पास भेजो, *करै छोभु संकर मन माहीं* = शंकर के मन में वह विक्षेप उत्पन्न करे, *तब हम जाइ सिवहि सिर नाई* = तब हम वहाँ पहुँचकर सिव को प्रणाम करेंगे, *करवाउब बिबाहु बरिआई* = फिर उनका जबरदस्ती विवाह करवा देंगे, *एहि बिधि भलेहिं देवहित होई* = इस प्रकार से देवताओं का हित होगा, *मत अति नीक कहइ सबु कोई* = सबने कहा यह बहुत अच्छा उपाय है।

ब्रह्मा जी देवताओं से कहते हैं कि कामदेव को शंकर जी के पास भेजो। वह उनके मन में व्यवधान उत्पन्न करके समाधि भंग कर दे। उसी समय हम वहाँ पहुँचेंगे, शिव को प्रणाम करेंगे, माफी माँग लेंगे और उनका विवाह घेर घारकर पार्वती से करवा देंगे। यही एक उपाय है जिससे तुम लोगों का काम बन सकता है। ब्रह्मा जी के बताये उपाय से सब देवता सहमत हो गये।

देवता कामदेव को बुलाकर, समाधि भंग करने को कहते हैं

अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू। प्रगटेउ बिषमबान झषकेतू ॥83:8॥

अस्तुति सुरन्ह कीन्हि = फिर देवताओं ने स्तुति की, *अति हेतू* = बड़े प्रेम से, *प्रगटेउ* = कामदेव प्रकट होता है, *बिषमबान* = वह पाँच बाण धारण किये है, *झषकेतू* = उसके ध्वज में मछली का निशान है।

सुरन्ह कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार ।
संभु बिरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार ॥दोहा 83॥

सुरन्ह कही निज बिपति सब = देवताओं ने अपना संकट सुनाया, *सुनि मन कीन्ह बिचार* = उसने सुनकर अपने मन में विचार किया, *संभु बिरोध न कुसल मोहि* = शिवजी के साथ विरोध में मेरा कुशल नहीं है, *बिहसि कहेउ अस मार* = उसने हँसकर देवताओं से कहा।

कामदेव से देवताओं को कार्य करवाना था इसलिये उसके गुणों का बखान किया, स्तुति की। कामदेव प्रकट हो गये। यहाँ पर कामदेव की दो विशेषताओं का वर्णन है :

1. पाँच बाण धारण किये हैं– इन्हें ही चलाकर वे सबको घायल करते रहते हैं। हमारी कामनाओं के देवता का नाम कामदेव है। कामनायें पाँच तरह से काम करती हैं, यही पाँच बाण हैं– 1. आँख से रूप देखना, 2. कान से शब्द सुनना, 3. नाक से गंध सूंघना, 4. जीभ से स्वाद लेना 5. त्वचा से स्पर्श की अनुभूति। इन्हीं सब में हम जीवन भर भटकते रहते हैं।
2. ध्वज में मछली का निशान है– क्योंकि मछली ही सबसे चंचल प्राणी कहलाती है। हमारा मन भी कामनाओं के कारण हमेशा चंचल बना रहता है। जब कामनायें पूरी होती हैं तो खुश होते हैं, नहीं पूरी होती तो दु:खी रहते हैं। मन में सदा चंचलता के कारण क्षोभ बना रहता है। मन अच्छे काम में लगने का मौका ही नहीं देता है। पूजा, योग, ध्यान, नाम-स्मरण आदि में कामदेव के कारण चंचल मन व्यवधान करता है या करने ही नहीं देता है।

कामदेव ने पूछा, कहिये क्या आज्ञा है? हमें किसलिये बुलाया है? देवताओं ने अपनी सारी समस्या बताकर कहा, तुम शिव जी के मन में व्यवधान उत्पन्न करके समाधि भंग करो। कामदेव ने हँसकर कहा कि इस कार्य को करने में तो मेरा जीवन ही समाप्त हो जायेगा।

कामदेव परहित हेतु समाधि भंग कर, मरने को तैयार

तदपि करब मैं काजु तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा ॥84:1॥
पर हित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही ॥84:2॥

तदपि करब मैं काजु तुम्हारा = फिर भी मैं आप लोगों का कार्य करूँगा, *श्रुति कह परम धरम उपकारा* = क्योंकि वेद कहते हैं परोपकार परमधर्म है, *पर हित लागि* = दूसरों के हित के लिये, *तजइ जो देही* = जो शरीर त्याग देता है, *संतत संत प्रसंसहि तेही* = उसकी संत निरंतर प्रशंसा करते हैं।

कामदेव कहते हैं इस कार्य को करने में हमारी मृत्यु निश्चित है, फिर भी सबके हित के लिये मैं यह कार्य करूँगा। परहित की महिमा के दो उद्धरण देते हैं:

1. श्रुति वचन– वेद कहते हैं कि उपकार सबसे बड़ा धर्म है। केवल अपने लिये नियम से कर्तव्य का पालन करना धर्म है, दूसरों के हित के लिये कर्तव्य का पालन करना परमधर्म है।
2. नीति वचन– जो दूसरों के हित के लिये अपना शरीर त्याग देते हैं, संत लोग सदैव उनकी प्रशंसा किया करते हैं। स्वार्थी व कम बुद्धि के लोग कहेंगे मूर्ख आदमी है, दूसरों के लिये जान दे दी। लेकिन परोपकार करना तो संत का सहज स्वभाव है।

शिव से लड़ने हेतु कामदेव अपनी शक्ति का विस्तार करता है

अस कहि चलेउ सबहि सिरु नाई। सुमन धनुष कर सहित सहाई ॥84:3॥
चलत मार अस हृदयँ बिचारा। सिव बिरोध ध्रुव मरनु हमारा ॥84:4॥
तब आपन प्रभाउ बिस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा ॥84:5॥

अस कहि = ऐसा कहकर, *चलेउ सबहि सिरु नाई* = सबको प्रणाम करके चल देता है, *सुमन धनुष कर* = पुष्पों से बना धुनष हाथ में है, *सहित सहाई* = साथ में सहायक है, *चलत मार* = रास्ते में जाते हुए, *अस हृदयँ बिचारा* = मन में सोचता है, *सिव बिरोध* = शंकर का विरोध करने पर, *ध्रुव मरनु हमारा* = यह निश्चित है कि हम मरेंगे, *तब आपन प्रभाउ बिस्तारा* = तब अपने प्रभाव का विस्तार करके, *निज बस कीन्ह सकल संसारा* = अपने बस में पूरे संसार को कर लेता है।

कामदेव सबको प्रणाम करके पूरी तैयारी से चलता है। उसके धनुष व बाण, मजबूत नहीं हैं, वे तो फूलों से ही बने हैं। कामदेव इतना शक्तिशाली है कि जो वज्र जैसे कठोर बाणों से घायल नहीं होते, वे इसके फूल के बाण से ही धराशायी हो जाते हैं। यह कामनाओं की शक्ति का सूचक है। उसने रास्ते में

सोचा कि अब मरना तो है ही, इसलिये अपनी पूरी शक्ति का विस्तार करके सारे संसार को अपने वश में कर लो। जैसे किसी बड़ी वस्तु को जलाना हो तो बहुत तेज अग्नि चाहिये, उस अग्नि से वह वस्तु तो जलेगी, पर उसकी आँच आस-पास भी आयेगी। इसी प्रकार कामदेव ने शंकर जी की समाधि भंग करने के लिये बहुत ज्वाला फैलायी, तेज प्रकट किया। उस तेज का संसार में सर्वत्र क्या प्रभाव पड़ा उसका वर्णन तुलसीदास जी अपनी काव्यात्मक शैली में करने जा रहे हैं।

काम की प्रबलता से धर्म के पुल बह गये

कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू ॥84:6॥
ब्रह्मचर्ज ब्रत संजम नाना। धीरज धरम ग्यान बिग्याना ॥84:7॥
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटकु सबु भागा ॥84:8॥

कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू = जब उस मछली के चिन्ह की ध्वजा वाले ने क्रोध किया, *छन महुँ मिटे* = क्षण में ही मिट गये, *सकल श्रुति सेतू* = वेदों के बनाये धर्म के पुल, *ब्रह्मचर्ज ब्रत संजम नाना* = ब्रह्मचर्य; व्रत; तरह-तरह के संयम, *धीरज धरम ग्यान बिग्याना* = धीरज; धर्म; ज्ञान व विज्ञान, *सदाचार जप जोग बिरागा* = सदाचार; जप; योग; वैराग्य, *सभय* = भयभीत होकर, *बिबेक कटकु* = विवेक की सेना, *सबु भागा* = सब भाग गए।

इस संसार से पार जाने के लिये धर्म का वर्णन वेदों में किया गया है, इसलिये उन्हें श्रुति-सेतु कहते हैं। कामदेव की शक्ति की प्रबलता से सबसे पहले वेदों के बनाये धर्म के पुल बह गये। इस पुल के जो अंग थे जैसे ब्रह्मचर्य, व्रत, संयम, धैर्य, परमात्मा का ज्ञान, ईश्वर में विश्वास करना, उनके नाम का स्मरण करना, भगवान की कथा सुनना, अच्छे कार्य करना, दूसरों का हित करना, सही-गलत की समझ आदि सब पुल के साथ ही या तो बह गये या भाग गये।

धर्म न मानने से लोग व्याकुल, चिंतित व तनावग्रस्त हो गये

भागेउ बिबेकु सहाय सहित सो सुभट संजुग महि मुरे ।
सदग्रंथ पर्बत कंदरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे ॥

होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा ।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु सरु धरा ॥छंद॥

भागेउ बिबेकु सहाय सहित = विवेक अपने सहायकों सहित भाग गया, *सो सुभट संजुग महि मुरे* = और उसके सेनापति युद्ध भूमि से मुँह फेरकर चले गये, *सदग्रंथ पर्बत कंदरन्हि* = सदग्रंथ पर्वत की कन्दराओं में, *महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे* = उस समय जाकर छिप गये, *होनिहार का* = क्या होने वाला है, *करतार को रखवार* = हे विधाता अब हमारी रक्षा कौन करेगा, *जग खरभरु परा* = सारे संसार में खलबली मच गयी, *दुइ माथ केहि* = ऐसा दो सिर वाला कौन है, *रतिनाथ जेहि* = रति के पति कामदेव ने, *कहुँ कोपि* = जिसके लिये क्रोध करके, *कर धनु सरु धरा* = हाथ में धनुष बाण उठाया है।

कामनाओं की प्रबलता के कारण विवेक नष्ट हो गया, जो नहीं करना चाहिये लोग वही करने लगे। जप, योग, पूजा-पाठ आदि विवेक की सेना है, जब सेनापति नहीं रहा तो ये सब भी भाग गये। वेद, पुराण, गीता, रामायण आदि सदग्रंथ हैं, ये सब पहाड़ों की गुफाओं में छिप गये। तात्पर्य है कामनाओं के कारण व्यक्ति को अच्छी बात समझ ही नहीं आती है, बुद्धि विपरीत बनी रहती है, जो गलत है वही सही समझ में आता है। लोग धर्म का व धार्मिक पुस्तकों का उपहास करने लगते हैं। जब यह सब समाप्त हो गया तो मन की शांति व धैर्य भी चला गया, जिससे लोगों के अंदर बेचैनी, व्याकुलता व तनाव बहुत तेजी से बढ़ गये। लोग कहने लगे कि एक सिर वाले प्राणी यानि हम सब तो कामदेव की शक्ति के विस्तार के बिना ही, उसके बस में हैं, अब ऐसा कौन सा दो सिर वाला प्राणी है जिसको अपने बस में करने के लिये इन्होंने धनुष-बाण उठा लिया है।

सजीव प्राणी, चाहे चल हों या अचल, मर्यादायें तोड़ने लगें

जे सजीव जग अचर चर नारि पुरुष अस नाम ।
ते निज निज मरजाद तजि भए सकल बस काम ॥दोहा 84॥

जे सजीव जग अचर चर = संसार में जो चर-अचर सजीव प्राणी थे, *नारि पुरुष अस नाम* = जो स्त्रीलिंग या पुल्लिंग कहलाते थे, *ते निज निज मरजाद तजि* = उन्होंने अपनी-अपनी मर्यादा छोड़कर, *भए सकल बस काम* = सभी काम के वश हो गये।

कामदेव का प्रभाव समझाने के लिये सजीव प्राणियों को दो भागों में बाँटते हैं। 1. सजीव चर प्राणी– जैसे पशु, पक्षी, मनुष्य इत्यादि। 2. सजीव अचर प्राणी– जैसे पेड़, पौधे, लतायें, नदियाँ आदि। ये सब काम के प्रभाव से अपनी मर्यादायें भूल गये। पत्थर आदि निर्जीव हैं, इन पर प्रभाव नहीं पड़ा।

वृक्ष की शाखायें लताओं से, नदियाँ समुद्र से आकर्षित होने लगीं

सब के हृदयँ मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु साखा ॥85:1॥
नदीं उमगि अंबुधि कहुँ धाईं। संगम करहिं तलाव तलाईं ॥85:2॥

सब के हृदयँ मदन अभिलाषा = सबके मन में काम की इच्छा हो गई, *लता निहारि* = लताओं को देखकर, *नवहिं तरु साखा* = वृक्ष की शाखा उनकी तरफ झुकने लगीं, *नदीं उमगि* = नदियाँ उमड़-उमड़ कर, *अंबुधि कहुँ धाईं* = समुद्र की तरफ दौड़ने लगीं, *संगम करहिं तलाव तलाईं* = ताल व तलैया भी आपस में संगम करने लगे।

कामदेव के तेज का प्रभाव सजीव अचर प्राणी में क्या हुआ उसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि वृक्ष की शाखायें (पुल्लिंग), लताओं (स्त्रीलिंग) की तरफ झुकने लगीं। नदी (स्त्रीलिंग),समुद्र (पुल्लिंग) की तरफ भागी चली जा रही है, वह जाकर समुद्र में मिल गयी। तलैया, तालाब में मिल गयी।

पशु, पक्षी जैसे सचेतन जीव, समय भूलकर काम के वशीभूत

जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी। को कहि सकइ सचेतन करनी ॥85:3॥
पसु पच्छी नभ जल थल चारी। भए काम बस समय बिसारी ॥85:4॥
मदन अंध ब्याकुल सब लोका। निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका ॥85:5॥

जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी = जब जड़ की यह दशा हो गयी, *को कहि सकइ सचेतन करनी* = तब चेतन जीवों की दशा का कौन वर्णन कर सकता है, *पसु पच्छी नभ जल थल चारी* = आकाश, जल व जमीन पर रहने वाले पशु-पक्षी, *भए काम बस समय बिसारी* = समय भूलकर काम के बस हो गये, *मदन अंध ब्याकुल सब लोका* = सब लोक कामना में अंधे होकर

व्याकुल हो गये, *निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका* = कोक पक्षी दिन रात न देखकर काम के वशीभूत हो गया।

कहते हैं कि जब कामदेव का प्रभाव जड़ बुद्धि वाले नदी, तालाब, लता आदि पर इतना ज्यादा हुआ, तब सचेतन जीव वालों पर कितना हुआ होगा उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। जैसे-जैसे चेतना अधिक होती है काम का प्रभाव भी अधिक होता है। वृक्षों से ज्यादा चेतना कीट पतंगों में है, उनसे भी ज्यादा चेतना पक्षियों में है। आकाश में उड़ने वाले जीव, जल में रहने वाले प्राणी व जमीन पर रहने वाले पशु इत्यादि सारे जीव समय को भूलकर काम के वश हो गये। 'मदन अँध' मायने काम के अधंकार में बुद्धि काम नहीं करती है, जो नहीं कहना चाहिये वह कहते हैं, जो नहीं करना चाहिये वह करते हैं।

मनुष्य इत्यादि तो सदा ही काम के वश में रहते हैं

देव दनुज नर किंनर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला ॥85:6॥
इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी ॥85:7॥

देव दनुज नर किंनर ब्याला = देवता; राक्षस; मनुष्य; किन्नर; सर्प, *प्रेत पिसाच भूत बेताला* = प्रेत; पिशाच; भूत; बेताल, *इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी* = इनकी दशा का वर्णन नहीं करते, *सदा काम के चेरे जानी* = ये तो सदैव ही काम के अधीन हैं।

देवता, राक्षस, मनुष्य, किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत, बेताल, आदि योनियों के प्राणियों पर क्या प्रभाव हुआ होगा? कहते हैं कि ये तो सदा ही काम के वशीभूत रहते हैं, उसका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है।

संसार ब्रह्ममय की जगह नारीमय-पुरुषमय दिखने लगा

सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी। तेपि कामबस भए बियोगी ॥85:8॥

सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी = सिद्ध; वैरागी; महामुनि व योगी, *तेपि कामबस भए बियोगी* = वे भी काम के वश में होकर वियोग की दशा में आ गये।

भए कामबस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै ।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे ॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं ।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं ॥छंद॥

भए कामबस जोगीस तापस = जब योगी व तपस्वी भी काम के वश हो गये, *पावँरन्हि की को कहै* = तब सामान्य लोगों की बात कौन कहे, *देखहिं चराचर नारिमय* = चराचर जगत् को स्त्रीमय देखने लगे, *जे ब्रह्ममय देखत रहे* = जो अभी तक इसे ब्रह्ममय देखते थे, *अबला बिलोकहिं पुरुषमय* = स्त्रियाँ संसार को पुरुषमय देखने लगीं, *जगु पुरुष सब अबलामयं* = पुरुष संसार को स्त्रीमय देखने लगे, *दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर* = दो घड़ी तक सारे ब्रह्मांड के अंदर, *कामकृत कौतुक अयं* = कामदेव का रचा यह तमाशा चलता रहा।

योगी, तपस्वी, महामुनि, सिद्ध, विरक्त इन पर कामदेव के तेज का क्या प्रभाव पड़ा? ये सब वियोग की दशा में आ गये। ये लोग पहले संसार के सब प्राणियों में ब्रह्म को ही देखते थे, पर अब भूल गये। स्त्रियों को सब जगह पुरुष, पुरुषों को सब जगह स्त्रियाँ दिखने लगीं। ध्यान में भी यही सब दिखने लगा। कामदेव का यह प्रभाव कब तक रहा? कहते हैं 'दुई दंड' मायने 45 से 50 मिनट तक।

जिसके मन में राम उस पर कामदेव का प्रभाव नहीं हुआ

धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे ।
जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ ॥सोरठा 85॥

धरी न काहूँ धीर = किसी के मन में धैर्य नहीं रहा, *सब के मन* = सबके मन को, *मनसिज हरे* = कामदेव ने चुरा लिया, *जे राखे रघुबीर ते* = राम ने जिसकी रक्षा की, *उबरे तेहि काल महुँ* = केवल वे ही उस समय बचे रहे।

कामदेव की शक्ति मन में कार्य करती है, यह मन में ही उत्पन्न होता है, वही उसका घर है। जहाँ-जहाँ मन वहाँ-वहाँ इसका प्रभाव। उदाहरण देकर समझा दिया कि काम के प्रभाव से कोई बच नहीं पाया, केवल वही बचे जिनकी रक्षा भगवान राम ने की। जो अपने चारों तरफ राम का सुरक्षा कवच

बनाये थे, वही बच पाये। मन में प्रभु राम हों तो यह अपना कार्य नहीं कर पाता। तुलसीदास जी ने विस्तार से वर्णन इसलिये किया है कि लोग गुण दोष को पहचानें, इससे सावधान रहें।

शिव के पास पहुँचते ही कामदेव भयभीत, प्रभाव समाप्त

उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जौं लगि कामु संभु पहिं गयऊ ॥86:1॥
सिवहि बिलोकि ससंकेउ मारू। भयउ जथाथिति सबु संसारू ॥86:2॥
भए तुरत सब जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गएँ मतवारे ॥86:3॥

उभय घरी = दो घड़ी तक, *अस कौतुक भयऊ* = ऐसा तमाशा हुआ, *जौं लगि कामु* = जितना समय काम को, *संभु पहिं गयऊ* = शंकर जी के पास जाने में लगा, *सिवहि बिलोकि* = शंकर जी को देखकर, *ससंकेउ मारू* = काम डर गया, *भयउ जथाथिति सबु संसारू* = संसार फिर से जैसा का तैसा हो गया, *भए तुरत सब जीव सुखारे* = तुरंत सब जीव सुखी हो गये, *जिमि मद उतरि* = जैसे नशा उतरने पर, *गएँ मतवारे* = नशा पीने वाले सुखी हो जाते हैं।

देवताओं के पास से चलकर शंकर जी तक पहुँचने में कामदेव को 45 से 50 मिनट का समय लगा, उतनी ही देर तक उसका यह खेल चला। जैसे ही उसने शंकर जी को देखा, वह भयभीत हो गया। उसे लगा कि अभी तक मात्र कौतुक करके सबको बस में कर लिया, बल तो दिखाया ही नहीं। लेकिन अब ऐसे स्थान पर आ गये हैं, जहाँ हमारा बल भी नहीं चलेगा। शंकर जी से पार नहीं पा सकते, यह बात उसकी समझ में आ गयी। वह भयभीत हुआ, तो उसकी शक्ति कम हो गई, तो संसार पर उसका प्रभाव भी समाप्त हो गया। सारा संसार पहले जैसा हो गया। सब जीव सुखी हो गये। जैसे नशे में व्यक्ति उल्टा-सीधा बोलता है, गलत-सही काम करता है, नशा उतर गया वह ठीक हो जाता है। उसी प्रकार काम का प्रभाव समाप्त हुआ, मन के क्षोभ दूर हो गये, मन शांत हो गया।

मन को मजबूत बनाने के लिये भगवान का स्मरण करें

यहाँ पर यह समझाया गया है कि यदि हम राम का स्मरण करें, शंकर जी का स्मरण करें तो काम उनके आगे टिक नहीं सकता है, हमारे मन को कमजोर नहीं कर सकता, मन में क्षोभ नहीं पैदा कर सकता। ये सब खोजे हुए सिद्धांत

हैं, इन्हें जीवन में अपना करके परीक्षण कर लेना चाहिये। हमें दु:ख, तनाव, चिंता कब होती है? जब मन अशांत रहता है। हम सुखी कब होते हैं? जब मन शांत रहता है। संसार में तरह-तरह की कामनायें ही मन को दु:खी करती हैं। कामना इस प्रकार हो कि उसका प्रभाव मन पर न पड़े।

शांत शिव कामदेव को प्रलयंकारी, अजेय, दुर्गम दिखे

रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना ॥86:4॥

रुद्रहि देखि = प्रलयंकारी शिव को देखकर, *मदन भय माना* = कामदेव भयभीत हो गया; उसे लगा कि, *दुराधरष* = इन्हें जीता नहीं जा सकता है, *दुर्गम* = इनके पास तक नहीं पहुँच सकते हैं, *भगवाना* = ये तो भगवान ही हैं।

शंकर जी राम के ध्यान में शांति से समाधि लगाये बैठे हैं, पर कामदेव को वे शांत न दिखकर, कैसे दिखते हैं उसका वर्णन तुलसीदास जी तीन नामों से करते हैं:

1. रुद्र– शंकर जी जब सृष्टि का विनाश करते हैं, तब उनका नाम रुद्र कहलाता है। रुद्र मायने प्रलयंकारी। काम का विनाश करने के लिये शंकर जी तैयार हैं, इसलिये उसे उसी रूप में दिखे। उसे लगा कि ये तो हमें मार ही देंगे।

2. दुराधर्ष– शंकर जी का यह नाम उनकी प्रचंड शक्ति, जिसे जीता न जा सके, को दर्शाता है। कामदेव को लगा कि ये इतने अधिक शक्तिशाली हैं कि हमारी शक्ति इनके सामने कुछ नहीं है। इन्हें हम जीत नहीं सकते हैं।

3. दुर्गम– जहाँ व्यक्ति जा सके वह सुगम, जहाँ पहुँचना बहुत कठिन हो, वह दुर्गम कहलाता है। कामदेव शंकर जी के मन में जाकर क्षोभ उत्पन्न कर उनकी समाधि भंग करना चाहता था। पर वह देखता है कि अंदर जाने का कहीं द्वार ही नहीं है। काम तभी कुछ नुकसान पहुँचा सकता है, जब वह मन में प्रवेश करे। शंकर जी राम भक्ति में लीन हैं, वह मन में प्रवेश ही नहीं कर सकता।

भागने की बजाय मरने का निश्चय करके उपाय रचता है

फिरत लाज कछु करि नहिं जाई। मरनु ठानि मन रचेसि उपाई ॥86:5॥

फिरत लाज = लौट जाने में शर्म है, *कछु करि नहिं जाई* = कुछ करते बनता नहीं, *मरनु ठानि मन* = मन में मरने का निश्चय करके, *रचेसि उपाई* = वह उपाय करता है।

कामदेव ने सोचा कि यहाँ से भागना चाहिये, पर यह विचार आते ही उसे लज्जा लगी कि देखो हम कितनी बड़ी-बड़ी बातें करके आये हैं कि परोपकार के लिये मर जायेंगे। फिर सोचता है कि यदि भागे नहीं तो शंकर जी का कुछ बिगाड़ भी नहीं सकते हैं। अंत में निर्णय लिया कि कोई-न-कोई उपाय करके एक बार समाधि तो भंग कर ही देंगे, फिर भले मर जायें।

सारे उपाय करने पर भी समाधि डिगी नहीं, कामदेव कुपित

प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नव तरु राजि बिराजा ॥86:6॥
बन उपबन बापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा बिभागा ॥86:7॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा ॥86:8॥

प्रगटेसि तुरत = तुरंत प्रकट कर दिया, *रुचिर रितुराजा* = सुंदर वसंतऋतु को, *कुसुमित नव तरु राजि बिराजा* = पेड़ हरे-भरे होकर फूलों से लदकर झुक गये, *बन उपबन बापिका तड़ागा* = वन; उपवन; बावली; तालाब, *परम सुभग* = बहुत सुंदर हो गये, *सब दिसा बिभागा* = सभी दिशायें बहुत सुंदर हो गयीं, *जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा* = सब तरफ प्रकृति में अनुराग उमड़ने लगा, *देखि* = जिसे देखकर, *मुएहुँ मन* = मरे समान मन में भी, *मनसिज जागा* = कामदेव ने उत्साह जगा दिया।

जागइ मनोभव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही ।
सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही ॥
बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा ।
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा ॥छंद॥

जागइ मनोभव मुएहुँ मन = मरे हुए के मन में भी कामदेव जागने लगा, *बन सुभगता न परै कही* = वन की सुंदरता कही नहीं जा सकती, *सीतल सुगंध सुमंद मारुत* = शीतल; सुंगधित व मंद वायु, *मदन अनल सखा सही* = जो कामदेव की मित्र है चलने लगी, *बिकसे सरन्हि बहु कंज* = सरोवरों में अनेक

कमल खिल गये, *गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा* = जिसमें सुंदर भौरों के समूह गुंजन करने लगे, *कलहंस* = राजहंस, *पिक* = कोयल, *सुक* = तोते, *सरस रव करि* = रसीली बोली बोलने लगे, *गान नाचहिं अपछरा* = और अप्सरायें गा-गाकर नाचने लगीं।

सकल कला करि कोटि बिधि हारेउ सेन समेत ।
चली न अचल समाधि सिव कोपेउ हृदयनिकेत ॥दोहा 86॥

सकल कला करि = उसने सब प्रकार की कला की, *कोटि बिधि* = करोड़ों उपाय किये, *हारेउ सेन समेत* = पर सेना सहित हार गया, *चली न अचल समाधि सिव* = शंकर जी की अचल समाधि नहीं डिगी, *कोपेउ हृदय निकेत* = कामदेव क्रोधित हो गया।

शंकर जी की समाधि भंग करने के लिये कामदेव ने मौसम को बदलकर वसंतऋतु कर दिया। सारे पेड़ हरे-भरे हो गये, तरह-तरह के फल-फूलों से लदकर झुक से गये। वन, उपवन, तालाब, कुएँ सब सुंदर दिखने लगे। वायु शीतल, सुगंधित व मंद चलने लगी। तालाबों में कमल खिल गये जिसमें भौंरे मंडराने लगे। सब तरफ प्रकृति में अनुराग उत्पन्न हो गया। पक्षी मधुर ध्वनि में बोल रहे हैं। अप्सराये भी गाते हुए नाचने लगीं। ऐसा वातावरण बन गया कि उत्साह की कमी से मरे जैसे दिखने वाले लोगों के मन में भी नये उत्साह का संचार होने लगा। कामदेव अपनी पूरी सेना लगाकर जितना उपद्रव कर सकता था, कर लिया, पर शिव की समाधि पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। वे गहन समाधि में ही रहे। कामदेव का एक नाम हृदयनिकेत भी है, सबका हृदय ही उसका घर है। यदि हम अपने घर जायें और वहाँ कोई दरवाजा ही न खोले तो हमें बहुत गुस्सा आयेगा। उसे भी लगा कि शंकर जी का हृदय तो हमारा घर ही है, इसमें हमें घुसने नहीं मिल रहा है, इसलिये उसे क्रोध आ गया।

कुपित कामदेव ने बाण चलाकर समाधि भंग कर दी

देखि रसाल बिटप बर साखा। तेहि पर चढ़ेउ मदनु मन माखा ॥87:1॥
सुमन चाप निज सर संधाने। अति रिस ताकि श्रवन लगि ताने ॥87:2॥
छाड़े बिषम बिसिख उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे ॥87:3॥

देखि रसाल बिटप = कामदेव ने आम के पेड़ को देखा, *बर साखा* = उसकी सुंदर शाखा को देखा, *तेहि पर चढ़ेउ मदनु* = कामदेव उस पर चढ़ गया, *मन माखा* = मन में क्रोध किये हुए, *सुमन चाप* = फूलों के धनुष पर, *निज सर संधाने* = अपने बाणों को चढ़ाया, *अति रिस* = बहुत गुस्से से, *ताकि* = लक्ष्य की ओर ताक कर, *श्रवन लगि ताने* = कान तक खीचा, *छाड़े बिषम बिसिख* = पाँचों तीक्ष्ण बाणों को छोड़ दिया, *उर लागे* = जो शंकर जी के हृदय में लगे, *छूटि समाधि* = उनकी समाधि टूट गयी, *संभु तब जागे* = शंकर जी समाधि से जाग गये।

कामदेव कुपित होकर ऐसी जगह तलाशने लगा जहाँ से वह छिप कर शंकर जी पर बाणों से वार कर सके। उसने आम के पेड़ की एक सुंदर शाखा देखी, जिसका मुख शंकर जी की तरफ था, उस पर बैठने का पर्याप्त स्थान था व छिपने के लिये बौरें व पत्ते थे। वह क्रोधित मन से उस पर चढ़ गया। फूलों के धनुष पर पाँचों बाणों को चढ़ा लिया, शंकर जी की तरफ निशाना साधा, धनुष की प्रत्यंचा को गुस्से से कानों तक खींचा, फिर तीक्ष्ण बाणों को छोड़ दिया। ये बाण जाकर शंकर जी के हृदय में लगे। उनकी समाधि छूट गयी, राम का ध्यान हट गया, उन्होंने आँखें खोल दीं।

शिव ने तीसरे नेत्र से काम की तरफ देखा, कामदेव भस्म

भयउ ईस मन छोभु बिसेषी। नयन उघारि सकल दिसि देखी ॥87:4॥
सौरभ पल्लव मदनु बिलोका। भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका ॥87:5॥
तब सिवँ तीसर नयन उघारा। चितवत कामु भयउ जरि छारा ॥87:6॥

भयउ ईस मन छोभु बिसेषी = शंकर जी के मन में बहुत क्षोभ उत्पन्न हुआ, *नयन उघारि* = उन्होंने आँखें खोलकर, *सकल दिसि देखी* = चारों तरफ देखा, *सौरभ पल्लव मदनु बिलोका* = आम के पत्तों में कामदेव को देखा, *भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका* = उन्हें बड़ा क्रोध आया जिससे तीनों लोक काँप उठे, *तब सिवँ तीसर नयन उघारा* = तब शिव जी ने तीसरी आँख खोलकर, *चितवत कामु* = काम की ओर देखा, *भयउ जरि छारा* = वह जलकर भस्म हो गया।

शंकर जी के मन में क्षोभ उत्पन्न हो गया। उन्होंने दोनों नेत्र खोलकर चारों तरफ देखा क्या मामला है? क्यों समाधि भंग हुई? वे देखते हैं कि आम के पत्तों के पीछे कामदेव धनुष-बाण लिये छिपा बैठा है। चारों तरफ वसंत ऋतु छाई है, सुगंध फैली है, वे समझ गये कामदेव ने ही यह सब किया है। शंकर जी को क्रोध आ गया, तीनों लोक काँप उठे। तब शंकर जी ने अपना तीसरा नेत्र खोलकर, जैसे ही काम की तरफ देखा वह जलकर भस्म हो गया।

हमारे अंदर भी तीसरा नेत्र है

शंकर जी का तीसरा नेत्र सामने दिखता है, हमारा तीसरा नेत्र हृदय के अंदर है। यह ज्ञान का नेत्र है। जब रामचरितमानस को पढ़ते, कहते, सुनते, गुरुकृपा से ज्ञान आने लगता है तो हृदय के नेत्र खुलते हैं। इस नेत्र के खुलने से बिना किसी प्रयास के ही मन के विकार मिटने लगते हैं।

कामदेव के भस्म होने से संसार में हाहाकार मच गया

हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भए असुर सुखारी ॥87:7॥
समुझि कामसुख सोचहिं भोगी। भए अकंटक साधक जोगी ॥87:8॥

हाहाकार भयउ जग भारी = जगत् में बड़ा हाहाकार मच गया, *डरपे सुर* = देवता डर गये, *भए असुर सुखारी* = दैत्य सुखी हो गये, *समुझि कामसुख सोचहिं भोगी* = भोगी लोग कामसुख को यादकर चिन्ता करने लगे, *भए अकंटक साधक जोगी* = साधक व योगी निश्चिंत हो गये।

सारे संसार में हाहाकार मच गया। देवता डर गये, असुर प्रसन्न हो गये। कामनायें दो प्रकार की हैं, एक धर्म विरोधी दूसरी धर्म संगत। देवताओं की कामनायें धर्म संगत हैं वे दु:खी हो गये। असुरों की कामनायें धर्म विरोधी हैं वे ये सोचकर प्रसन्न हैं कि देवता वाला काम भस्म हुआ है, हमारे कार्य तो चलते ही रहेंगे। योगी लोग सोचने लगे, चलो अच्छा हुआ, कामनायें अब हमें परेशान नहीं करेंगी। योगियों के लिये कामनायें प्रसव पीड़ा के समान हैं। भोगी लोगों को लगा अब जीवन बेकार हो गया। अब कुछ भोग ही नहीं कर पायेंगे, यह सोचकर वे दु:खी हैं।

विलाप करती हुई रति शिव के पास पहुँचकर प्रार्थना करती है

जोगी अकंटक भए पति गति सुनत रति मुरुछित भई ।
रोदति बदति बहु भाँति करुना करति संकर पहिं गई ॥
अति प्रेम करि बिनती बिबिध बिधि जोरि कर सन्मुख रही ।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही ॥छंद॥

जोगी अकंटक भए = योगी निष्कंटक हो गये, *पति गति सुनत रति मुरुछित भई* = अपने पति की यह दशा सुनते ही रति बेहोश हो गयी, *रोदति बदति बहु भाँति करुना करति* = रोते हुए काम की महिमा कहती है, बहुत प्रकार से विलाप करती हुई, *संकर पहिं गई* = शंकर जी के पास पहुँची, *अति प्रेम करि बिनती बिबिध बिधि* = अत्यंत प्रेम के साथ अनेकों प्रकार से विनती करके, *जोरि कर* = हाथ जोड़कर, *सन्मुख रही* = सामने खड़ी हो गई, *प्रभु आसुतोष कृपाल सिव* = शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले कृपालु शिव, *अबला निरखि बोले सही* = असहाय स्त्री को देखकर सांत्वना देते हुए बोलते हैं।

काम की पत्नी रति थी, जब उसने सुना कि इस प्रकार से काम शंकर जी के द्वारा मारा गया है, तो वह मूर्छित हो गई। जब होश आया, तब रोती हुई, बहुत प्रकार से काम की महिमा का वर्णन करती हुई, शंकर जी के सामने पहुँच गयी। हाथ जोड़कर बहुत प्रेम से शिव जी से विनती करती है, बहुत बार प्रार्थना करती है कि आप तो कुछ भी कर सकते हो। प्रभु शंकर आशुतोष हैं यानि जल्दी प्रसन्न होने वाले हैं, रति की प्रार्थना से प्रसन्न होकर उसे सांत्वना देते हुए बोलते हैं।

शिव कहते हैं– काम बिना शरीर के रहेगा, नाम होगा अनंग

अब तें रति तव नाथ कर होइहि नामु अनंगु ।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु ॥दोहा 87॥

अब तें रति तव नाथ = हे रति अब से तुम्हारे पति, *कर होइहि नामु अनंगु* = का नाम अनंग होगा, *बिनु बपु* = बिना शरीर के, *ब्यापिहि सबहि* = सबको व्यापेगा, *पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु* = अब तुम अपने पति से मिलने की बात सुनो।

शंकर जी कहते हैं कि हे रति! ऐसा नहीं है कि काम बिल्कुल समाप्त हो गया है, उसका मात्र शरीर ही नष्ट हुआ है, वह अब बिना शरीर के रहेगा, उसका नाम होगा अनंग। संसार की रचना होती रहे, संसार चलता रहे इसके लिये भी काम की आवश्यकता होती है, यह कार्य वह बिना शरीर के ही करेगा। रति ने कहा होगा कि जब वह बिना शरीर के रहेगा, तो हमें प्राप्त कैसे होगा? तब शंकर जी कहते हैं, वह कब व कैसे मिलेगा, यह भी बताते हैं।

द्वापर में कृष्ण का पुत्र बनकर जन्मेगा, तब तुम्हें मिलेगा

जब जदुबंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा ॥88:1॥
कृष्न तनय होइहि पति तोरा। बचनु अन्यथा होइ न मोरा ॥88:2॥
रति गवनी सुनि संकर बानी। कथा अपर अब कहउँ बखानी ॥88:3॥

जब जदुबंस कृष्न अवतारा होइहि = जब यदुवंश में कृष्ण का अवतार होगा, *हरन महा महिभारा* = पृथ्वी के बढ़े भार को दूर करने के लिये, *कृष्न तनय होइहि पति तोरा* = कृष्ण का पुत्र ही तुम्हारा पति होगा, *बचनु अन्यथा होइ न मोरा* = मेरा यह वचन सत्य होगा, *रति गवनी सुनि संकर बानी* = शंकर जी की बात सुनकर रति चली गयी, *कथा अपर अब कहउँ बखानी* = अब आगे की कथा विस्तार से कहता हूँ।

शंकर जी ने कहा पृथ्वी का भार हरने के लिये कृष्ण जी यदुवंश में अवतार लेंगे। उस समय भगवान कृष्ण का पुत्र तुम्हारा पति होगा। मेरी यह बात झूठी नहीं होगी। यह सुनकर रति वहाँ से चली जाती है। यह कथा त्रेता युग की है, उसके बाद द्वापर युग आया, उसमें कृष्ण जी के पुत्र, प्रद्युम्न के साथ रति का विवाह होता है। यह कथा पूरी हुई, अब आगे की कथा सुनाते हैं। प्रसंग पूरा होने पर उसकी सूचना तुलसीदास जी देते रहते हैं।



16. शिव-पार्वती विवाह की लग्नपत्रिका

(दोहा 88 से दोहा 91)

शंकर जी की समाधि भंग होते ही, ब्रह्मा व विष्णु के साथ सब देवता कैलास पहुँचते हैं। शिव की स्तुति करके, पार्वती से विवाह हेतु हाँ कहलवा लेते हैं। पूरे रीति-रिवाज से विवाह की तैयारी प्रारंभ होती है। ब्रह्मा जी विवाह के मुखिया बनकर, सप्तर्षि से हिमाचल के यहाँ संदेश भिजवाते हैं। सप्तर्षि पार्वती से मिलकर परिहास पूर्ण बातें करते हैं। हिमाचल को शंकर जी की महिमा बताकर विवाह की स्वीकृति लेते हैं। हिमाचल पण्डितों से लग्न पत्रिका लिखवाकर, सप्तर्षि के हाथों, ब्रह्मा जी के पास भेजते हैं। परंपरा के अनुसार ब्रह्मा जी लग्न पत्रिका खोलते हैं, पढ़कर सब देवताओं को सुनाते हैं। सब प्रसन्न होते हैं, कैलास में सजावट होने लगती है, बारात चलने की तैयारियाँ प्रारंभ हो जाती हैं।

देवता शिव जी के पास पहुँचे, स्तुति की, शिव प्रसन्न

देवन्ह समाचार सब पाए। ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाए ॥88:4॥
सब सुर बिष्नु बिरंचि समेता। गए जहाँ सिव कृपानिकेता ॥88:5॥
पृथक पृथक तिन्ह कीन्ह प्रसंसा। भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा ॥88:6॥

देवन्ह समाचार सब पाए = देवताओं ने जब यह सब समाचार सुना, *ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाए* = तब ब्रह्मा जी व अन्य देवता वैकुण्ठ गये, *सब सुर बिष्नु बिरंचि समेता* = वहाँ से विष्णु व ब्रह्मा सहित सब देवता, *गए जहाँ सिव कृपानिकेता* = वहाँ गये जहाँ शंकर जी थे, *पृथक पृथक तिन्ह कीन्ह प्रसंसा* = सबने अलग-अलग शिव की स्तुति की, *भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा* = चन्द्रमा को धारण करने वाले शिव जी प्रसन्न हो गये।

समाधि भंग का समाचार जब देवताओं को मिला, वे सब एकत्रित होकर, ब्रह्मा जी को लेकर, वैकुण्ठ में विष्णु जी के यहाँ पहुँचे। वहाँ से सब शंकर जी के पास कैलास पहुँचते हैं। देवताओं को डर था कि कहीं शंकर जी नाराज न हों, पर वे कृपानिधान ही रहते हैं। सबने अलग-अलग प्रशंसा की, स्तुति की। देवताओं की प्रार्थनायें सुनकर शंकर जी प्रसन्न हो गये। 'अवतंसा' मायने जिनके सिर पर चन्द्रमा एक मणि के समान चमचमा रहा है।

ब्रह्मा, विष्णु व महेश एक दूसरे से प्रार्थना क्यों करते हैं?

ये तीनो देवता हैं, तीनो समान हैं, तीनो परब्रह्म परमेश्वर के ही अंश हैं, कई बार ये एक दूसरे से प्रार्थना करते रहते हैं। इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। इनमें से जब कोई नायक बनता है, तो दो उसके सहायक बन जाते हैं। विष्णु भगवान द्वारा कोई कार्य होना होगा तो वे नायक होंगे, ब्रह्मा व शंकर उनके सहायक बनकर प्रार्थना करेंगे। इस प्रसंग में शंकर जी नायक हैं तो ब्रह्मा व विष्णु उनके पास आकर उनकी स्तुति एवं प्रार्थना कर रहे हैं। इससे यह पता चलता है कि जब तीनों देवता मिलकर कार्य करते हैं, तब वह कार्य पूरा होता है। ये देवता आपसी सहयोग से ही सृष्टि का संचालन करते हैं।

शंकर जी ने पूछा, आप लोग किसलिये आये हैं?

बोले कृपासिंधु बृषकेतू। कहहु अमर आए केहि हेतू ॥88:7॥
कह बिधि तुम्ह प्रभु अंतरजामी। तदपि भगति बस बिनवउँ स्वामी ॥88:8॥

बोले कृपासिंधु बृषकेतू = कृपा के समुद्र शिव जी बोले, *कहहु अमर आए केहि हेतू* = हे अमर! कहिये आप लोग किसलिये आये हैं? *कह बिधि* = ब्रह्माजी बोले, *तुम्ह प्रभु अंतरजामी* = हे प्रभु आप तो अंतर्यामी हो, *तदपि भगति बस* = फिर भी भक्तिवश, *बिनवउँ स्वामी* = मैं आपसे विनती करता हूँ।

शंकर जी देवताओं को बहुत आदर के साथ अमर कहकर संबोधित करते हुए पूछते हैं कि आप लोग किसलिये आये हैं? सब की तरफ से ब्रह्मा जी बोलते हैं– हे प्रभु! आप तो सबके हृदय की बात जानने वाले हैं, फिर भी भक्ति के कारण हम आपसे विनती करते हैं।

भगवान से बोलना पड़ता है

यहाँ पर समझें कि भगवान से बोलना पड़ता है, यह प्रथा है। भगवान मन की बात जानते हैं, पर जब उनके सामने जाओ तो उनसे कहो, अपने मन की बात बोलो। यह नहीं कि जाकर चुपचाप बैठ गये। भगवान भी पूछते हैं जैसे वे न जानते हों, बताने वाला भी बताता है।

ब्रह्मा जी ने कहा, हम आपका विवाह देखना चाहते हैं

सकल सुरन्ह के हृदयँ अस संकर परम उछाहु ।
निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार बिबाहु ॥दोहा 88॥

सकल सुरन्ह के हृदयँ = सभी देवताओं के मन में, *अस संकर* = हे शिव जी, *परम उछाहु* = बहुत उत्साह है कि, *निज नयनन्हि* = अपनी आँखों से, *देखा चहहिं* = देखना चाहते हैं, *नाथ तुम्हार बिबाहु* = हे नाथ आपका विवाह।

यह उत्सव देखिअ भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदन मद मोचन ॥89:1॥

यह उत्सव = आपके विवाह के उत्सव को, *देखिअ भरि लोचन* = नेत्र भरकर देखें, *सोइ कछु करहु* = ऐसा कुछ करिये, *मदन मद मोचन* = हे कामदेव के मद को चूर करने वाले।

ब्रह्मा जी कहते हैं– हे प्रभु! सब देवताओं के मन में परम उत्साह है कि अपनी आँखों से आपका विवाह देखें। बारात जाये, विवाह खूब धूम-धाम से हो। कामदेव के मद को चूर करने वाले हे प्रभु! वही करो जिससे विवाह हो। देवता यह कहने गये थे कि तारकासुर के वध के लिये आपके पुत्र की आवश्यकता है। अब यह कहना कि पुत्र दे दो, संस्कारहीन बात होती। इसलिये पुत्र का नाम ही नहीं लेते। जब विवाह होगा तो पुत्र भी होगा। ये सब बातें रामचरितमानस से सीखने की हैं।

पार्वती के तप से प्रसन्न होकर, उनसे विवाह करें

कामु जारि रति कहुँ बरु दीन्हा। कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा ॥89:2॥
सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ ॥89:3॥
पारबतीं तपु कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा ॥89:4॥

कामु जारि = काम को भस्म करके, *रति कहुँ बरु दीन्हा* = रति को आपने जो वर दिया है, *कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा* = हे कृपासिंधु आपने यह ठीक किया है, *सासति करि* = दंड देकर के, *पुनि करहिं पसाऊ* = फिर कृपा करना, *नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ* = हे नाथ! स्वामी का यह सहज स्वभाव होता है, *पारबतीं तपु कीन्ह अपारा* = पार्वती ने बहुत तपस्या की है, *करहु तासु अब अंगीकारा* = अब आप उन्हें स्वीकार कीजिये।

कामदेव सोचता था कि हमसे सब लोग डरते हैं, उसे यह अहंकार था, उसके मद को आपने उतार दिया है। काम सबको बहुत नचाता था, और आपने उसे ही नचा दिया। पहले उसे जलाकर भस्म कर दिया, फिर बिना शरीर का बनाया, अब अगले युग में शरीर धारण करेगा। स्वामी या राजा का यह स्वभाव होता है कि गलती के लिये पहले दंड दे, बाद में कृपा भी करे, वही आपने भी कामदेव के साथ किया है। अंत में ब्रह्मा जी पार्वती जी की बात कहते हैं, कि उन्होंने तप करके अपने को शुद्ध कर लिया है, अब आप उनसे विवाह कर लीजिये।

शिव ने पार्वती से विवाह के लिये हाँ कहा, देवता प्रसन्न

सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी। ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी ॥89:5॥
तब देवन्ह दुंदुभीं बजाईं। बरषि सुमन जय जय सुर साईं ॥89:6॥

सुनि बिधि बिनय = ब्रह्मा जी की विनती सुनी, *समुझि प्रभु बानी* = प्रभु राम के वचनों को स्मरण किया, *ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी* = फिर प्रसन्न होकर कहा ऐसा ही होगा, *तब देवन्ह दुंदुभीं बजाईं* = तब देवताओं ने बाजे बजाये, *बरषि सुमन* = फूलों की वर्षा करके, *जय जय सुर साईं* = कहा जय हो, देवताओं के स्वामी की जय हो।

ब्रह्मा जी की प्रार्थना को शंकर जी ने सुना, उन्हें यह भी याद आ गया कि प्रभु राम भी उनके सामने आकर पार्वती से विवाह की विनती कर गये हैं। इन दोनों की सहमति है, यह सोचकर शंकर जी ने प्रसन्नता से कह दिया ठीक है, पार्वती से विवाह होगा। यह सुनकर देवता प्रसन्न होकर बाजे बजाने लगे, फूलों की वर्षा करके महा ईश्वर शंकर की जय-जयकार की।

विवाह प्रमुख ब्रह्मा, सप्तर्षि को हिमवान् के यहाँ भेजते हैं

अवसरु जानि सप्तरिषि आए। तुरतहिं बिधि गिरिभवन पठाए ॥89:7॥

अवसरु जानि सप्तरिषि आए = उचित अवसर जानकर सप्तर्षि आ गये, *तुरतहिं बिधि* = ब्रह्मा जी ने तुरंत ही, *गिरिभवन पठाए* = उन्हें हिमवान् के घर भेज दिया।

जैसे ही शंकर जी ने हाँ की, विवाह की सारी व्यवस्था ब्रह्मा जी ने अपने हाथ में ले ली। शिव जी की तरफ से वे मालिक बन गये। सब देवता भी कैलास पर ही रुक गये। उसी समय सप्तर्षि आते हैं, ब्रह्मा जी उन्हें समझाकर, हिमाचल के घर संदेश लेकर भेजते हैं।

सप्तर्षि पार्वती से कहते हैं– काम भस्म, प्रण पूरा न होगा

प्रथम गए जहँ रहीं भवानी। बोले मधुर बचन छल सानी ॥89:8॥

प्रथम गए जहँ रहीं भवानी = वे पहले वहाँ गये जहाँ पार्वती थीं, *बोले मधुर बचन छल सानी* = उन्होंने परिहास से पूर्ण मधुर वचन बोले।

कहा हमार न सुनेहु तब नारद कें उपदेस ।
अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ कामु महेस ॥दोहा 89॥

कहा हमार न सुनेहु तब नारद कें उपदेस = नारद के उपदेश के कारण तुमने उस समय हमारी बात नहीं मानी, *अब भा झूठ तुम्हार पन* = अब तो तुम्हारा प्रण झूठा हो गया, *जारेउ कामु महेस* = शिव ने तो काम को ही भस्म कर दिया है।

सप्तर्षि हिमवान् के राजमहल पहुँचकर, पहले पार्वती के कक्ष में जाते हैं। परिहास करते हुए मधुर वाणी में कहते हैं, कि आप तो नारद के उपदेश को सही मानकर उसी में लगीं रहीं, हमारी बात तो सुनी ही नहीं। परंतु अब शंकर जी से विवाह का प्रण ही झूठा हो गया, क्योंकि शंकर जी ने तो कामदेव को ही भस्म कर दिया है। आशय है कि जब कामनायें ही नहीं हैं, तो विवाह करने से क्या मतलब।

पार्वती प्रति प्रश्न करती हैं– क्या शिव अभी तक विकारी थे?

सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी। उचित कहेहु मुनिबर बिग्यानी ॥90:1॥
तुम्हरें जान कामु अब जारा। अब लगि संभु रहे सबिकारा ॥90:2॥

सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी = यह सुनकर, पार्वती जी मुस्कुरा कर कहती हैं, *उचित कहेहु मुनिबर बिग्यानी* = हे विज्ञानी मुनिवरों! आप लोग उचित

बात कहो, *तुम्हरें जान* = आपकी समझ में, *कामु अब जारा* = काम को अभी जलाया है, *अब लगि संभु* = तो क्या अभी तक शिव, *रहे सबिकारा* = विकार सहित रहे हैं?

पार्वती जी मुस्कराकर, सप्तर्षि से उनकी ही शैली में परिहास करती हुई कहती हैं कि अरे! विज्ञानी मुनियों कुछ तो उचित बात कहो। आपकी समझ में शिव ने कामनाओं का नाश अभी किया है, तो क्या अब तक शिव विकार सहित थें?

योगी-शिव को पाने के लिये प्रण किया जो पूरा होगा

हमरें जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥90:3॥
जौं मैं सिव सेये अस जानी। प्रीति समेत कर्म मन बानी ॥90:4॥
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा ॥90:5॥

हमरें जान = मेरी समझ में तो, *सदा सिव* = शिव जी हमेशा ही, *जोगी* = योगी हैं, *अज* = अजन्मा हैं, *अनवद्य* = निर्दोष हैं, *अनादि* = जिनका आरम्भ नहीं हैं, *अकाम* = कामनारहित हैं, *अभोगी* = भोग रहित हैं, *जौं मैं सिव सेये अस जानी* = यदि मैंने ऐसा समझकर शिव जी की सेवा की है, *प्रीति समेत कर्म मन बानी* = प्रेम सहित मन; वचन व कर्म से, *तौ हमार पन* = तो हमारी प्रतिज्ञा को, *सुनहु मुनीसा* = हे मुनियों सुनो, *करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा* = कृपा के निधान भगवान शंकर उसे सत्य करेंगे।

हमने यह समझ कर तपस्या नहीं की, कि शिव जी में विकार है, हमने तो उन्हें योगी समझकर ही वर रूप में पाने के लिये तपस्या की है। शिव जी तो अजन्मा हैं, निर्दोष हैं, अभोगी व कामनाओं से रहित हैं। ये सब लक्षण समझकर यदि हमने प्रेम से, मन, वाणी व कर्म से तपस्या की है तो हे मुनियों! कृपानिधान शिव हमारा प्रण अवश्य पूरा करेंगे।

काम को शिव ने जलाया नहीं, वह स्वयं ही जल गया

तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा। सोइ अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा ॥90:6॥
तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ ॥90:7॥
गएँ समीप सो अवसि नसाई। असि मन्मथ महेस की नाई ॥90:8॥

तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा= आपने जो यह कहा कि शिव ने काम को भस्म कर दिया है, *सोइ अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा*= यह आपका बहुत बड़ा अज्ञान है, *तात अनल कर सहज सुभाऊ*= हे तात! अग्नि का तो सहज स्वभाव ही है, *हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ*= सर्दी कभी अग्नि के पास जा नहीं सकती, *गएँ समीप सो अवसि नसाई*= और यदि जाती भी है तो अवश्य समाप्त हो जाती है, *असि मन्मथ महेस की नाई*= यही बात कामदेव व महेश की है।

पार्वती जी कहती हैं, हे मुनियों! यह कहना कि शिव ने काम को जला दिया, अज्ञानता की बात है। अरे! वह तो शिव के पास आकर स्वयं ही जल गया। उदाहरण से समझाती हैं, हे तात! जैसे ताप अग्नि का सहज स्वभाव है, इसलिये सर्दी, उसके पास नहीं जाती है, गयी भी तो अग्नि के ताप से स्वयं नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार शिव सहज ही निर्विकार हैं, उनके पास विकार जायेगा तो वह स्वयं ही नष्ट हो जायेगा। शंकर जी ने बस काम की तरफ देखा तो वह जल गया।

सप्तर्षि पार्वती से प्रसन्न हो हिमवान् के पास जाते हैं

हियँ हरषे मुनि बचन सुनि देखि प्रीति बिस्वास ।
चले भवानिहि नाइ सिर गए हिमाचल पास ॥दोहा 90॥

हियँ हरषे मुनि= हृदय में मुनि बड़े प्रसन्न हुए, *बचन सुनि*= पार्वती जी के वचन सुनकर, *देखि प्रीति बिस्वास*= और उनके मन में प्रेम व विश्वास को देखकर, *चले भवानिहि नाइ सिर* =पार्वतीजी को सिर नवाकर प्रणाम करके, *गए हिमाचल पास*= हिमाचल के पास जाते हैं।

सप्तर्षि पार्वती के सुंदर वचन सुनकर व उनके मन में शिव के प्रति प्रेम व विश्वास को देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। वे सिर झुकाकर पार्वती को प्रणाम करते हैं। उसके बाद हिमाचल के पास जाते हैं।

हिमवान् सप्तर्षियों से शिव की महिमा सुन, विवाह को तैयार

सबु प्रसंगु गिरिपतिहि सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुखु पावा ॥91:1॥
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना। सुनि हिमवंत बहुत सुखु माना ॥91:2॥
हृदयँ बिचारि संभु प्रभुताई। सादर मुनिबर लिए बोलाई ॥91:3॥

सबु प्रसंगु गिरिपतिहि सुनावा = सप्तर्षि ने पर्वतराज हिमालय को सब बातें बतायीं, *मदन दहन सुनि* = कामदेव का भस्म होना सुनकर, *अति दुखु पावा* = बहुत दु:ख हुआ, *बहुरि कहेउ रति कर बरदाना* = इसके बाद सप्तर्षि ने रति को दिये वरदान की बात कही, *सुनि हिमवंत बहुत सुखु माना* = वरदान सुनकर हिमवान् संतुष्ट हो गये, *हृदयँ बिचारि संभु प्रभुताई* = शिव के प्रभाव को मन में विचार कर, *सादर मुनिबर लिए बोलाई* = हिमाचल ने श्रेष्ठ मुनियों को आदर पूर्वक बुला लिया।

सप्तर्षि उन्हें भी सब कथा सुनाते हैं। कामदेव के भस्म होने के समाचार से हिमाचल दु:खी होते हैं, पर रति के वरदान की बात सुनकर वे सुखी हो जाते हैं। सप्तर्षि ने समझाया होगा कि शंकर जी कितने सामर्थ्यवान् हैं कि काम जैसी महाशक्ति को जला भी सकते हैं, और जीवित भी कर सकते हैं। तब हिमवान् शंकर जी की महानता को समझकर, उत्साह के साथ पार्वती का विवाह शिव के साथ करने को तैयार हो जाते हैं। जन्म-पत्री देखकर विवाह मुहूर्त निकालने वाले श्रेष्ठ मुनियों को बुलवाते हैं।

हिमवान् लगन पत्रिका लिखवाकर सप्तर्षियों को देते हैं

सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। बेगि बेदबिधि लगन धराई ॥91:4॥
पत्री सप्तरिषिन्ह सोइ दीन्ही। गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही ॥91:5॥

सुदिनु = शुभ दिन, *सुनखतु* = शुभ नक्षत्र, *सुघरी* = शुभ घड़ी, *सोचाई* = सोचकर, *बेगि* = जल्दी ही, *बेदबिधि* = वैदिक रीति से, *लगन धराई* = लगन निश्चय करके लगन पत्रिका लिखवा दी, *पत्री सप्तरिषिन्ह सोइ दीन्ही* = फिर उस लगन पत्रिका को सप्तर्षियों को आदरपूर्वक दिया, *गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही* = सप्तर्षि के चरण पकड़कर उनसे विनती की।

अभी तक शिव-पार्वती के विवाह की बातें मौखिक थीं, यहाँ से लिखित होती हैं। हिमवान् ने पण्डितों से कहा कि पार्वती का विवाह शिव से करना है, आप लोग विचार करके शुभ दिन बताओ। पण्डितों ने वेदों में जैसा बताया गया है, वैसा विचार करते हुए सब देखा, उसे निश्चय किया। फिर विवाह का शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ घड़ी लिख दी। इस लिखित पत्र को लगन पत्रिका

कहते हैं। लगन पत्रिका कन्या पक्ष द्वारा वरपक्ष को भेजी जाती है। इसमें यह लिखा जाता है कि हम अपनी कन्या का विवाह इस वर से करने को तैयार हैं, आप इस दिन बारात लेकर आइये। इस मुहूर्त में विवाह संपन्न होगा। हिमवान्, लगन पत्रिका को आदर पूर्वक सप्तर्षियों को देकर, उनके चरण पकड़कर निवेदन करते हैं कि इस विवाह के मध्यस्थ आप ही हो, इसे पूरा करवाओ, इस पत्रिका को ब्रह्मा जी तक पहुँचाओ।

ब्रह्मा जी लगन पत्रिका पढ़कर सुनाते हैं, सब देवता प्रसन्न

जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती। बाचत प्रीति न हृदयँ समाती ॥91:6॥
लगन बाचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई ॥91:7॥

जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती = सप्तर्षियों ने आकर ब्रह्मा जी को लगन पत्रिका दी, *बाचत* = उसको पढ़कर, *प्रीति न हृदयँ समाती* = प्रेम मन में समा नहीं रहा था, *लगन बाचि* = लगनपत्रिका पढ़कर के, *अज* = ब्रह्मा जी ने, *सबहि सुनाई* = सबको सुनाया, *हरषे मुनि सब सुर समुदाई* = उसे सुनकर सब मुनि व देवताओं का सारा समाज हर्षित हो गया।

यह लगन पत्रिका सप्तर्षियों ने आकर ब्रह्मा जी के हाथों में दी। कैलास में सब देवता रुके ही थे। ब्रह्मा जी ने इसे खोला, बड़े प्रेम से पढ़कर सब देवताओं को सुनाया कि पार्वती का विवाह शिव के साथ होगा, इस दिन होगा, इस शुभ घड़ी में होगा। इसे सुनकर मुनियों व देवताओं का सारा समाज प्रसन्न हो गया।

विवाह की सजावट व तैयारी शुरू

सुमन बृष्टि नभ बाजन बाजे। मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे ॥91:8॥

सुमन बृष्टि नभ बाजन बाजे = आकाश से फूलों की वर्षा हुई; बाजे बजने लगे, *मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे* = दसों दिशाओं में मंगल कलश सजा दिये गये।

लगे सँवारन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान ।
होहिं सगुन मंगल सुभद करहिं अपछरा गान ॥दोहा 91॥

लगे सँवारन = सजाने लगे, *सकल सुर* = सब देवता, *बाहन बिबिध बिमान* = तरह-तरह के वाहन और विमान, *होहिं सगुन मंगल सुभद* = कल्याणप्रद मंगल सगुन होने लगे, *करहिं अपछरा गान* = अप्सरायें गाना गाने लगीं।

देवता प्रसन्न होकर आकाश से फूलों की वर्षा करते हैं, बाजे बजाते हैं। कैलास पर्वत पर सजावट होने लगी, दसों दिशाओं में मंगल कलश सजा दिये गये, वंदनवार बंधने लगे। वहाँ पर देवताओं की पत्नियाँ भी थीं, सबने तैयारी शुरू कर दी। देवता लोग अपने-अपने वाहन सजाने लगे। कल्याणप्रद मंगल सगुन होने लगे। अप्सरायें मंगल गीत गाने लगीं।

17. शिव जी की बारात, कैलास से हिमाचल पहुँची

(दोहा 92 से 95 तक)

शिव जी को दूल्हे जैसा सजाना है, यह कार्य उनके गण करते हैं। श्रृंगार सामग्री है, वासुकी सर्प, श्मशान की भभूति, बाघम्बर, जटायें, नरमुंड माला। श्रृंगार करके शिव जी को बैल पर बैठा देते हैं, बारात बाजे के साथ, हिमाचल के घर की तरफ चल देती है। उनके साथ सुंदर सवारी में सारे देवता चलने लगते हैं, गण पीछे छूट जाते हैं। विष्णु जी के कहने से देवताओं की जगह शिव-गण, शिव जी के साथ चलने लगते हैं, ये अति-विचित्र हैं, दो हाथ, दो पैर, एक सिर, एक मुख वाला सामान्य व्यक्ति कोई नहीं है। किसी के बहुत से मुख हैं तो किसी के मुख ही नहीं है। किसी के बहुत से हाथ व पैर हैं तो किसी के हाथ, पैर ही नहीं हैं। भूत, प्रेत, पिशाच, योगी जो बिना शरीर के प्राणी हैं, वे भी बारात में खूब मस्ती करते हुए चल रहे हैं। इस प्रकार बारात हिमाचल तक पहुँचती है, बच्चे बारात देखकर डर के मारे भाग जाते हैं, समझदार नगरवासी बारात का स्वागत करते हुए जनवासे में ठहरा देते हैं।

दूल्हे-शिव का श्रृंगार शिव-गण करते हैं

सिवहि संभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा ॥92:1॥
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला ॥92:2॥
ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा ॥92:3॥
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला ॥92:4॥
कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा ॥92:5॥

सिवहि संभु गन = शंकर जी को उनके गण, *करहिं सिंगारा* = सजाने लगे, *जटा मुकुट* = जटाओं को ही मुकुट बना दिया, *अहि मौरु सँवारा* = उस पर साँपों का मौर सजा दिया, *कुंडल कंकन पहिरे ब्याला* = सर्प के ही कुंडल और कंगन पहनाये, *तन बिभूति* = शरीर पर भस्म लपेट दी, *पट केहरि छाला* = बाघम्बर की छाल वस्त्र की तरह पहना दी, *ससि ललाट* = मस्तक पर चन्द्रमा है, *सुंदर सिर गंगा* = सिर पर सुंदर गंगा जी हैं, *नयन तीनि* = तीन नेत्र हैं, *उपबीत भुजंगा* = साँपों का जनेउ धारण करवा दिया, *गरल कंठ* = गले में विष, *उर नर सिर माला* = छाती में नरमुंडों की माला पहना दी, *असिव बेष सिवधाम कृपाला* = अशुभ वेष है फिर भी वे कल्याण के धाम और कृपालु हैं, *कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा* = हाथ में त्रिशूल और डमरू सुशोभित है, *चले बसहँ चढ़ि* = बैल पर बैठ कर चल दिये, *बाजहिं बाजा* = बाजे बजने लगे।

शिव जी वर हैं, उनको सजाने का काम देवता न करके शिव-गण करते हैं। यदि देवता सजाते तो वे अपनी सुंदरता शिव पर थोप देते, जो उन्हें जमेगा नहीं। दूल्हे शिव के अद्भुत शृंगार का वर्णन तुलसीदास जी पाँच चौपाइयों में करते हैं। शिव जी की विशाल जटायें हैं, गणों ने उन्हें लपेटकर मुकुट बना दिया। एक सर्प को लपेट कर उस पर बाँध दिया जो मौर जैसे दिखने लगा। जितने भी आभूषण हैं वासुकी सर्प के हैं। छोटे सर्प को कानों में कुंडल की तरह बाँध दिया, दोनों हाथों की कलाई पर सर्प लपेट दिया, वे कंगन का काम कर रहे हैं। अब वस्त्र पहनाये जाते हैं, तो उसकी जगह बाघम्बर लपेट दिया। शरीर में श्मशान से लाकर राख लपेट दी। मस्तक के ऊपर चमचमाता चन्द्रमा लगा दिया, सिर से गंगा जी प्रवाहित हो रही हैं। तीनों नेत्रों में काजल लगाकर सुंदर बना दिया। जनेऊ की जगह गले में एक सर्प लपेट दिया। गले में विष है। वर को माला भी पहनायी जाती है, तो मनुष्यों के कटे हुये सिर की एक माला बनाकर पहना दी है। एक हाथ में त्रिशूल लिये हैं तो दूसरे में डमरू है। दूल्हे की सवारी घोड़ी होती है पर शिव जी को नंदी बैल पर बैठाते हैं। जैसे ही शिव जी दूल्हा बनकर, बैल पर बैठकर चलते हैं, बारात के बाजे बजने लगे।

शिव का वेष इतना अशुभ फिर वे कल्याण करने वाले कैसे हैं?

शिव का वेष तो बहुत अशुभ है पर वे हैं कृपालु व कल्याण करने वाले, कैसे? इस बात को गंभीरता से समझें। भारतीय संस्कृति के अनुसार देवताओं के रूप

गूढ़ हैं। शिव के शृंगार में पहनायी गयी प्रत्येक वस्तु देखने में तो अशुभ है पर है वह परम कल्याणकारी। प्रभु शिव के अद्भुत शृंगार का स्मरण करते समय उनसे इस प्रकार प्रार्थना करें :

1. **सर्प–** हे प्रभु सर्प में विष रहता है, पर आपके पास जाकर वह विषहीन हो गया है। आपको काट नहीं रहा है। हम लोग अपने मन में, शरीर में हमेशा कामनाओं के सर्प लपटे रहते हैं, जो हमें काटकर हमेशा दु:ख पहुँचाते हैं। हमने धन की कामना की, धन कमा लिया पर मद आ गया, अवगुण आ गये। हे प्रभु, दया करो कि आपके समान हम भी बनें, ऐसी बुद्धि हो कि कामनायें तो रहें, पर उनके अवगुणों का प्रभाव न हो।
2. **श्मशान की भभूति–** हे प्रभु, मरे हुए आदमी के जलने की राख तो बहुत ही अपवित्र है, पर आपके शरीर में लगते ही वह इतनी पवित्र हो जाती है कि देवता भी उसे आदर से ग्रहण करते हैं। जब आप राख की अपवित्रता को दूर कर सकते हैं तो हमारे भी अपवित्र कर्मों से मुक्ति दिलाकर हमें भी पवित्र बनायें।
3. **सिर से प्रवाहित गंगा–** हे प्रभु, आप परम ज्ञानी हैं, ज्ञान की गंगा आपके सिर से प्रवाहित हो रही है। जैसे आप अपने अंदर के ज्ञान का उपदेश संसार को देकर, सबका कल्याण करते हैं वैसे ही आपकी कृपा से हमें भी ज्ञान प्राप्त हो, उस ज्ञान का प्रयोग हम सबके कल्याण के लिये करें।
4. **चंद्रमा, नरमुंडमाला–** पुराणों की कथा के अनुसार राहु ने चन्द्रमा को ग्रसना चाहा वह भागकर शंकर जी के पास गया। शंकर जी ने कहा हमारी शरण में तो सुर व असुर सभी आते हैं, तुम भी आ जाओ। राहु को वहाँ देख चन्द्रमा डर गया, अमृत की बूंद टपक गयी, राहू ने पी ली, उसके सौ सिर हो गये। अब उन सिरों की माला शंकर जी ने गले में पहन ली। चन्द्रमा को मस्तक में शरण दे दी। बुरे व अच्छे दोनों को धारण कर लिया। बुराई अपनाई नहीं, वहाँ जाकर समाप्त हो गई। हे प्रभु, हम बुरे हैं या अच्छे हमें पता नहीं, जैसे भी हैं वैसे ही अपनी शरण में ले लो। हम पर कृपा करो।
5. **त्रिशूल–** हमारे तीन तरह के दु:ख हैं, एक दैविक, दूसरा दैहिक, तीसरा भौतिक। हे प्रभु, आपका त्रिशूल हमारे इन तीनों तरह के कष्टों को दूर करे।
6. **डमरू–** शंकर जी के हाथ में डमरू खिलौना या बाजा नहीं है। शंकर जी ने डमरू बजाया तो उससे 16 तरह की ध्वनियाँ निकलीं, उसी को सुनकर

पाणिनि ने संस्कृत व्याकरण के 16 सूत्रों की रचना कर दी। संगीतकार कहते हैं कि सप्त ताल भी शंकर जी के डमरू से ही उत्पन्न हुए हैं। जानकार संगीतकार शंकर जी की उपासना अवश्य करते हैं। व्याकरण पढ़ने वाले भी यदि शंकर जी का स्मरण करते हैं तो शीघ्र ही व्याकरण सीख लेते हैं।

7. **नंदी बैल–** हे प्रभु, आप नंदी बैल पर विराजमान हैं, जो साक्षात् धर्म है। आपको धर्म बहुत प्रिय है। आपके लिये पूजा बाद में धर्म, पहले है। हम लोग धर्म भूल गये हैं, पूजा करते रहते हैं। धर्म को छोड़कर भगवान की पूजा करते हैं जो ठीक नहीं है। आपकी कृपा से हम भी धर्म के मार्ग पर चलें।

अब विचार करें और इसका अभ्यास करें। गुरुकृपा से शंकर जी हमारा भी कल्याण अवश्य करेंगे।

देवताओं की स्त्रियाँ दूल्हे-शिव का उपहास करती हैं

देखि सिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं ॥92:6॥

देखि सिवहि = शिव जी को देखकर, *सुरत्रिय मुसुकाहीं* = देवताओं की स्त्रियाँ मुस्कुराती हैं, कहती हैं, *बर लायक* = इस वर के योग्य, *दुलहिनि जग नाहीं* = दुल्हन संसार में नहीं मिलेगी।

शंकर जी को इस प्रकार सजकर, जब नंदी बैल पर बैठे देखा, तो देवताओं की स्त्रियाँ उन पर हँसने लगीं। उपहास करते हुए कहती हैं, दूल्हा तो बहुत सुंदर है, इसके योग्य दुल्हन संसार में मिलना मुश्किल है।

देवताओं के कारण बारात तो सुंदर, पर दूल्हा भयंकर

बिष्नु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता ॥92:7॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा ॥92:8॥

बिष्नु बिरंचि आदि सुरब्राता = विष्णु, ब्रह्मा आदि देवताओं का समूह, *चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता* = अपने-अपने वाहनों में बैठकर बारात में चल दिये, *सुर समाज सब भाँति अनूपा* = देवताओं का समाज सब प्रकार से परम सुंदर था, *नहिं बरात दूलह अनुरूपा* = पर दूल्हे के योग्य बारात नहीं थी।

जब शंकर जी अपने बैल पर बैठकर चले तो ब्रह्मा, विष्णु सहित सभी देवताओं के समूह अपनी-अपनी सवारी में बैठकर चल दिये। अब बारात आगे चलने लगी। ये देवता रेशमी वस्त्र पहने थे, बहुत सुंदर स्वरूप बनाये थे, इनके वाहन भी खूब सजे थे। लेकिन शंकर जी भयंकर रूप में थे। ऐसा लगता था कि यह बारात दूल्हे के अनुरूप नहीं है। जैसा दूल्हा वैसी बारात नहीं थी।

विष्णु जी देवताओं से कहते हैं– दूल्हे से दूर होकर चलें

बिष्नु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज ।
बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज ॥दोहा 92॥

बिष्नु कहा अस बिहसि तब = विष्णु जी व्यंग्य से हँसकर बोले, *बोलि सकल दिसिराज* = सभी दिक्पालों को बुलाकर, *बिलग बिलग होइ चलहु सब* = सब लोग अलग-अलग होकर चलो, *निज निज सहित समाज* = अपने-अपने समाज के साथ।

बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई ॥93:1॥

बर अनुहारि = वर के अनुसार, *बरात न भाई* = बारात नहीं है, *हँसी करैहहु* = तुम लोग हँसी करवाओगे, *पर पुर जाई* = दूसरे के नगर में जाकर के।

इन्द्र, वरुण, अरुण, यमराज आदि दस दिक्पाल हैं। जैसे यमराज दक्षिण के दिक्पाल हैं। इनके अधीन बहुत से देवता हैं। विष्णु भगवान ने सभी दिक्पालों को बुलाकर कहा कि तुम अपने-अपने देवताओं के समाज के साथ शिव जी से अलग होकर चलो। व्यंग्य से हँसते हुए कहते हैं, वर के अनुसार बारात नहीं है, दूसरे नगर में जा रहे हो, लोग मजाक बनाकर कहेंगे, वर तो कितना सुंदर है, बाराती कुरूप हैं।

देवता अलग हो गये, शंकर जी व्यंग्य सुन मुस्कुराते हैं

बिष्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने ॥93:2॥
मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं। हरि के बिंग्य बचन नहिं जाहीं ॥93:3॥

बिष्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने = विष्णु जी की बातें सुनकर देवता मुस्कुराने लगे, *निज निज सेन सहित बिलगाने* = अपने-अपने समाज सहित, शंकर जी से अलग होकर चलने लगे, *मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं* = शंकर जी भी मन ही मन हँसते हैं, *हरि के बिंग्य बचन नहिं जाही* = विष्णु की हँसी-मजाक की आदत नहीं छूटती है।

विष्णु जी की व्यंग्य भरी बातों को सुनकर देवता मुस्कुराने लगे, वे सब शंकर जी को अकेला छोड़कर दूर हो गये। शिव जी ने भी सुनी यह बात, देखा भी कि देव-समाज हमसे अलग होकर चल रहा है, वे भी मन में मुस्कुराने लगे। वे सोचते हैं कि विष्णु को तो व्यंग्य वचन बोलने की आदत है। विष्णु की बातें प्रिय लगीं, बुरा नहीं लगा। बारात का अवसर है, हँसी-मजाक होता रहता है।

शिव जी ने गणों को बुलवाया, जो उनके साथ चलने लगे

अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे ॥93:4॥
सिव अनुसासन सुनि सब आए। प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाए ॥93:5॥

अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे = अपने प्रिय विष्णु के प्रिय वचन सुनकर, *भृंगिहि प्रेरि* = शिव जी ने भृंगी को भेजकर, *सकल गन टेरे* = अपने सभी गणों को बुला लिया, *सिव अनुसासन सुनि सब आए* = शिव की आज्ञा सुनते ही सब चले आये, *प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाए* = उन्होंने अपने स्वामी शिव के चरण कमलों में प्रणाम किया।

विष्णु जी के व्यंग्य में भी काम की बात रहती है। उनका आशय था कि शंकर जी के जिन गणों ने उनका शृंगार किया है, उन्हें यह रूप बड़ा सहज लग रहा होगा, उन्हें ही शंकर जी के साथ चलने दो। प्रिय विष्णु के प्रिय वचन सुनकर शिव जी ने अपने सेवक भृंगी को बुलवाकर कहा कि जितने गण हैं उन सबको बुलाकर लाओ। जब बारात चली तो देवता लोग, शंकर जी के साथ चलने लगे, गण सब पीछे रह गये। भृंगी के कहने से वे आने में संकोच कर रहे थे, उन्हें लगा देवता बड़े लोग हैं, विष्णु, ब्रह्मा भी खास हैं, इन्हें ही शंकर जी के साथ चलना चाहिये। जब भृंगी ने कहा शंकर जी की आज्ञा है, उन्होंने बुलवाया है तब वे सब आकर, चरणों में प्रणाम करते हैं। फिर सब गण उनके साथ चलने लगे।

गणों का रूप व वाहन अति विचित्र हैं, मस्ती में नाचते-गाते हैं

नाना बाहन नाना बेषा। बिहसे सिव समाज निज देखा ॥93:6॥
कोउ मुख हीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू ॥93:7॥
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्टपुष्ट कोउ अति तनखीना ॥93:8॥

नाना बाहन नाना बेषा = तरह-तरह के वाहन व वेष हैं, *बिहसे सिव समाज निज देखा* = शंकर जी अपना समाज देखकर मुस्कुराते हैं, *कोउ मुख हीन* = किसी का मुँह नहीं है, *बिपुल मुख काहू* = तो किसी के बहुत सारे मुँह हैं, *बिनु पद कर कोउ* = किसी के पैर नहीं हैं, *बहु पद बाहू* = किसी के बहुत से पैर हैं, *बिपुल नयन* = बहुत सी आँखे हैं, *कोउ नयन बिहीना* = किसी के आँख ही नहीं हैं, *रिष्टपुष्ट कोउ* = कोई बहुत मोटा ताजा है, *अति तनखीना* = कोई बहुत ही दुबला पतला है।

तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें ।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें ॥
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनै ।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै ॥छंद॥

तन खीन = कोई दुबला, *कोउ अति पीन* = कोई बहुत मोटा, *पावन* = किसी का पवित्र वेष है, *कोउ अपावन गति धरें* = कोई अपवित्र वेष धारण किये है, *भूषन कराल* = हाथ में भयंकर गहने पहने है, *कपाल कर* = हाथ में कपाल लिये है, *सब* = सभी, *सद्य* = ताजा, *सोनित* = खून, *तन भरें* = शरीर में लपेटे हैं, *खर* = गधा, *स्वान* = कुत्ता, *सुअर* = सूअर, *सृकाल* = सिआर, *मुख गन* = इन जानवरों के मुख हैं, *बेष अगनित को गनै* = गणों के अगनित वेष को कौन गिने, *बहु जिनस* = बहुत प्रकार के, *प्रेत पिसाच जोगि जमात* = प्रेत पिशाच और योगियों की जमात है, *बरनत नहिं बनै* = उनके वर्णन करते नहीं बनता।

नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब ।
देखत अति बिपरीत बोलहिं बचन बिचित्र बिधि ॥दोहा 93॥

नाचहिं गावहिं गीत = वे नाचते हैं गाते हैं, *परम तरंगी भूत सब* = सब भूत बड़े मस्ती में हैं, *देखत अति बिपरीत* = देखने में बहुत बेढंगे दिखते हैं, *बोलहिं बचन बिचित्र बिधि* = बड़े ही विचित्र ढंग से बोलते हैं।

शंकर जी के गणों का समाज अति-विचित्र है, जिसे देखकर शंकर जी मुस्कुराते हैं, सोचते हैं, हमारा समाज तो ऐसा ही है। दो हाथ, दो पैर, एक सिर, एक मुख वाला सामान्य व्यक्ति कोई नहीं है। किसी के बहुत से मुख हैं तो किसी के मुख ही नहीं हैं। किसी के बहुत से हाथ व पैर हैं तो किसी के हाथ, पैर ही नहीं हैं। बहुत से सिर व बिना सिर वाले कई हैं। बहुत सी आँखें हैं, तो बिना आँख वाले भी हैं। लोग या तो बहुत मोटे हैं या तो बहुत दुबले-पतले हैं। ये भयंकर आभूषण धारण करके, हाथ में कपाल लिये हैं। सभी अपने शरीर में ताजा खून लगाये हैं। इनके चेहरे कैसे हैं? गधा, कुत्ता, सिआर और सूअर जैसे जानवरों के समान हैं। इन गणों के इतने अधिक वेष हैं कि उनकी गिनती करके पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता है।

भूत, प्रेत, पिशाच व योगी नाचते गाते चल रहे हैं

बारात में ऐसे भी प्राणी हैं जिनके शरीर नहीं हैं, जीव मात्र हैं, सूक्ष्म शरीर हैं। जीव ने शरीर छोड़ दिया है, जब तक दूसरे शरीर में प्रवेश नहीं करता वह प्रेत कहलाता है। यह भी एक योनि है। प्रेत भी शंकर जी के गण हैं। वे प्रेत जो पापी होते हैं, पिशाच कहलाते हैं। जो कल्याणकारी, धर्मात्मा व शुभ प्रेत होते हैं वे योगी कहलाते हैं। ये सब नाचते-गाते, मौज-मस्ती करते हुए विचित्र तरह की आवाजें निकालते हुए बारात में चल रहे हैं।

जैसा दूल्हा वैसी ही बारात हो गई

जस दूलहु तसि बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता ॥94:1॥

जस दूलहु तसि बनी बराता = जैसा दूल्हा है वैसी बारात बन गई, *कौतुक बिबिध होहिं मग जाता* = रास्ते में चलते हुए तरह-तरह के खेल, खेल रहे हैं, तमाशे हो रहे हैं।

जब देवता साथ चल रहे थे तब विष्णु जी ने कहा, वर के अनुरूप बारात नहीं है। तुलसीदास जी कहते हैं कि अब, जैसा दूल्हा है वैसी ही बारात बन गई। जैसे शंकर जी सर्प आदि लपेटे हैं, नरमुंड माला पहने हैं वैसे ही सब बाराती हैं। रास्ते में जाते हुए कौतुक करते हैं, कहीं नाचते हैं, कहीं कूदते हैं, चिल्लाते खेल खेलते हुए चले जा रहे हैं।

हिमाचल ने घर में विवाह मंडप बनवाया

इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना ॥94:2॥

इहाँ हिमाचल = हिमाचल अपने यहाँ, *रचेउ बिताना* = मंडप बनवाया, *अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना* = वह इतना विचित्र है कि वर्णन नहीं कर सकते।

हिमाचल ने लग्नपत्रिका भेज दी थी, वे जानते थे उसी लगन में बारात आयेगी। उन्होंने अपने घर के आँगन में बहुत ही विचित्र मंडप बनवाया। इसकी विचित्रता का वर्णन नहीं किया जा सकता।

वन, पर्वत, नदियों को निमंत्रण, वे सब सुंदर शरीर में आते हैं

सैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं ॥94:3॥
बन सागर सब नदीं तलावा। हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा ॥94:4॥
कामरूप सुंदर तन धारी। सहित समाज सहित बर नारी ॥94:5॥
गए सकल तुहिनाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा ॥94:6॥
प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए। जथाजोगु तहँ तहँ सब छाए ॥94:7॥

सैल सकल जहँ लगि जग माहीं = संसार में जितने भी पर्वत थे, *लघु बिसाल* = छोटे हों या बड़े, *नहिं बरनि सिराहीं* = जिनका वर्णन नहीं हो सकता, *बन सागर सब नदीं तलावा* = जंगल; सागर; सब नदी व तालाब, *हिमगिरि* = हिमाचल ने, *सब कहुँ नेवत पठावा* = सबको निमंत्रण भेजा, *कामरूप* = वे सब अपनी इच्छानुसार, *सुंदर तन धारी* = सुंदर शरीर धारण करके, *सहित समाज* = अपने समाज सहित, *सहित बर नारी* = व सुंदर स्त्रियों के साथ आ गये, *गए सकल तुहिनाचल गेहा* = वे सब हिमाचल के घर गये, *गावहिं मंगल सहित सनेहा* = वहाँ प्रेम से मंगल गीत गाते हैं, *प्रथमहिं* = पहले से ही, *गिरि* = हिमाचल ने, *बहु गृह सँवराए* = बहुत से घर तैयार कर रखे थे, *जथाजोगु तहँ तहँ सब छाए* = यथा योग्य उन स्थानों में सबको रुकवा दिया गया।

सभी पर्वतों को चाहे वे छोटे हों या बड़े, सभी नदियों व तालाबों को, समुद्र को और वन को हिमाचल ने निमंत्रण भेजकर विवाह में शामिल होने के लिये

आमंत्रित किया। वे सब आये भी, पर किस रूप में? अपनी इच्छा के अनुसार सुंदर शरीर धारण करके। उनके साथ समाज, परिवार के लोग व पत्नी भी थी। वे सब पहले हिमाचल के घर जाते हैं, वहाँ पर गाना-बजाना चल रहा था, ये लोग भी उसमें शामिल होकर मंगल गीत गाते हैं। हिमाचल ने पहले से ही बहुत से मकानों को सजाकर, तैयार रखा था। जो जिस योग्य थे उसी के अनुसार उनको ठहरा दिया गया।

संपन्न नगर है, सुंदर सजाया गया है, लोग भी बहुत अच्छे हैं

पुर सोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु बिरंचि निपुनाई ॥94:8॥

पुर सोभा अवलोकि सुहाई = नगर की सुंदर शोभा को देखकर, *लागइ लघु* = छोटा लगता है, *बिरंचि निपुनाई* = ब्रह्मा जी का रचना कौशल।

लघु लाग बिधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही ।
बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही ॥
मंगल बिपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं ।
बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं ॥छंद॥

लघु लाग बिधि की निपुनता = ब्रह्मा जी की निपुणता तुच्छ लगती है, *अवलोकि पुर सोभा सही* = नगर की शोभा देखकर, *बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही* = वन, बाग, कुएँ, तालाब, नदियाँ सभी सुंदर हैं; उनका वर्णन कौन कर सकता है, *मंगल बिपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं* = घर-घर बहुत से मंगलसूचक बंदनवार; ध्वजा व पताके सुशोभित हैं, *बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि* = वहाँ के सुंदर और चतुर स्त्री पुरुषों की छबि देखकर, *मुनि मन मोहहीं* = मुनियों के भी मन मोहित हो जाते हैं।

जगदंबा जहँ अवतरी सो पुरु बरनि कि जाइ ।
रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख नित नूतन अधिकाइ ॥दोहा 94॥

जगदंबा जहँ अवतरी = जिस नगर में स्वयं जगदंबा ने अवतार लिया हो, *सो पुरु बरनि कि जाइ* = उस नगर का वर्णन नहीं हो सकता है, *रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख* = वहाँ रिद्धि, सिद्धि, संपत्ति व सुख, *नित नूतन अधिकाइ* = रोज नये बढ़ते जाते हैं।

वन, बाग, कुएँ, तालाब, नदियाँ सभी स्वच्छ व सुंदर हैं। नगर में सब लोगों ने अपने घरों को सुन्दर सजा रखा है। दरवाजे पर बंदनवार लगे हैं, छत पर झंडे फहरा रहे हैं। नगर में रहने वाले स्त्री-पुरुष भी इतने सुंदर हैं कि मुनियों के मन भी मोहित हो जायें। कहते हैं जिस नगर मे माँ जगदंबा ने स्वयं अवतार लिया हो, उस नगर में तो ऋद्धि, सिद्धि, संपत्ति व सुख का रोज बढ़ना ही है। नगर की इस सुंदरता को देखकर तो ब्रह्मा जी की रचना फीकी लगने लगती है।

बारात नगर के बाहर पहुँची, अगवानी हेतु नगरवासी गये

नगर निकट बरात सुनि आई। पुर खरभरु सोभा अधिकाई ॥95:1॥
करि बनाव सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना ॥95:2॥

नगर निकट बरात = बारात नगर के समीप, *सुनि आई* = आ गई है, यह सुनकर, *पुर खरभरु* = नगर में जल्दी-जल्दी मच गयी, *सोभा अधिकाई* = शोभा और बढ़ गई, *करि बनाव* = ठीक से तैयार होकर, *सजि बाहन नाना* = तरह-तरह की सवारियों को सजाकर, *चले लेन सादर अगवाना* = आदर से बारात को लेने नगरवासी चल दिये।

जब नगर में खबर आई कि बारात नगर के बाहर पहुँचने वाली है, तो अधूरी सजावट को जल्दी से पूरा किया गया, सुंदरता और बढ़ गई। जल्दी-जल्दी नगरवासी तैयार हुए, सवारियाँ सजा कर आदरपूर्वक बारात को नगर के अंदर लाने के लिये चल दिये। अगवानी मतलब होता है आगे बढ़कर स्वागत करना। वधू पक्ष के लोग नगर के बाहर से ही स्वागत करते हुए, बारात को नगर में ठहराने के लिये ले आते हैं।

विष्णु जी व देवताओं को देखकर नगरवासी प्रसन्न

हियँ हरषे सुर सेन निहारी। हरिहि देखि अति भए सुखारी ॥95:3॥

हियँ हरषे = नगरवासी प्रसन्न हुए, *सुर सेन निहारी* = देवताओं का समाज देखकर, *हरिहि देखि* = विष्णु जी को देखकर, *अति भए सुखारी* = बहुत ही सुखी हुए।

बारात में देवताओं का समाज शंकर जी से अलग होकर आगे-आगे चल रहा था। नगरवासियों ने पहले उन्हें ही देखा। उनके सुंदर रूप, वाहन व साज शृंगार को देखकर सब प्रसन्न हो गये। फिर विष्णु जी के अलौकिक व दिव्य सौंदर्य को देखकर तो बहुत ही आनंदित हो गये।

शिव का भयंकर वेष व बाराती को देख बालक भयभीत हो भागे

सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे ॥95:4॥
धरि धीरजु तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने ॥95:5॥
गएँ भवन पूछहिं पितु माता। कहहिं बचन भय कंपित गाता ॥95:6॥
कहिअ काह कहि जाइ न बाता। जम कर धार किधौं बरिआता ॥95:7॥

सिव समाज जब देखन लागे = जब शंकर जी के समाज को देखने लगे, *बिडरि चले* = डर से बिचक कर, *बाहन सब भागे* = सवारियाँ भागने लगीं, *धरि धीरजु तहँ रहे सयाने* = समझदार लोग धैर्य धारण करके वहाँ रुके, *बालक सब लै जीव पराने* = सब बालक जान बचाकर भागे, *गएँ भवन* = बालक घर पहुँचे, *पूछहिं पितु माता* = माता-पिता पूछते हैं क्या बात है, *कहहिं बचन भय कंपित गाता* = भय से काँपते हुए वे बोलते हैं, *कहिअ काह* = क्या कहें, *कहि जाइ न बाता* = बात कही ही नहीं जाती, *जम कर धार* = यह यमराज की सेना है, *किधौं बरिआता* = या बारात है।

दूल्हे-शिव के भयंकर वेष, उनके साथ विचित्र भूत-प्रेत बारातियों को देखकर, हाथी, घोड़े इत्यादि की सवारियाँ जिन पर बैठ कर नगरवासी बारात के स्वागत के लिये आये थे, वे बिचक कर भाग गये। धैर्यवान् व समझदार वहाँ रुके रहे, बालक डर कर भागकर अपने घर पहुँच गये। घरवालों के पूछने पर हाँफते हुए, काँपते हुए कहते हैं, अरे! यह बारात नहीं है, यमराज की सेना है।

बालक शिव के भयंकर वेष का वर्णन करते हैं

बरु बौराह बसहँ असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा ॥95:8॥

बरु बौराह = दूल्हा तो पागल है, *बसहँ असवारा* = बैल पर बैठा है, *ब्याल* = सर्प लपेटे है, *कपाल* = नरमुंड माला पहने है, *बिभूषन छारा* = राख लपेटे है।

तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा ।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा ॥
जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही ।
देखिहि सो उमा बिबाहु घर घर बात असि लरिकन्ह कही ॥छंद।

तन छार ब्याल कपाल भूषन = राख, सर्प, नरमुंड माला ही दूल्हे के शरीर में आभूषण हैं, *नगन* = कपड़े नहीं पहने, *जटिल* = जटायें रखे है, *भयंकरा* = भयंकर रूप है, *सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि रजनीचरा* = उसके साथ भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनियाँ व राक्षस हैं, *बिकट मुख* = इनके भयानक मुख हैं, *जो जिअत रहिहि बरात देखत* = जो इस भयंकर बारात को देखकर जीता बचेगा, *पुन्य बड़ तेहि कर सही* = सचमुच उसके बड़े ही पुण्य हैं, *देखिहि सो उमा बिबाहु* = और वही पार्वती का विवाह देखेगा, *घर घर बात असि लरिकन्ह कही* = बालकों ने प्रत्येक घर में यही बात कही।

बालक कहते हैं, वर तो पागल लगता है, बैल पर बैठा है, शरीर में सर्प लपेटे है, नरमुंडों की माला गले में धारण किये हुए है, पूरे शरीर में राख लगाये है, कपड़े न पहनकर बाघम्बर लपेटे है और लंबी जटायें रखे है। भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनियाँ व राक्षस ही उसके बाराती हैं। जो इस भयंकर बारात को देखकर जीता बचेगा वह बड़ा पुण्यशील है, वही पार्वती जी का विवाह देख पायेगा।

माता पिता समझाते हैं, डरने की बात नहीं

समुझि महेस समाज सब जननि जनक मुसुकाहिं ।
बाल बुझाए बिबिध बिधि निडर होहु डरु नाहिं ॥दोहा 95॥

समुझि महेस समाज सब = शिव जी का समाज समझकर, *जननि जनक मुसुकाहिं* = माता पिता हँसते हैं, *बाल बुझाए बिबिध बिधि* = बहुत प्रकार से बालकों को समझाते हैं कि, *निडर होहु डरु नाहिं* = निडर हो जाओ डरने की कोई बात नहीं।

जब माता पिता ने सुना तो कहा कि यह शंकर जी की बारात है, वे ऐसे ही होते हैं, उनके गण भी ऐसे ही रहते हैं। वे मुस्कुराकर बहुत प्रकार से

बालकों को समझाकर कहते हैं कि डरने की बात नहीं है। शंकर जी की बारात में सब प्रकार के प्राणी हैं।

बारात को नगर में ले आये, जनवासे में ठहरा दिया

लै अगवान बरातहि आए। दिए सबहि जनवास सुहाए ॥96:1॥

लै अगवान बरातहि आए = अगवानी करने वाले बारात को लेकर आ गए, *दिए सबहि जनवास सुहाए* = बारातियों को जनवासे में ठहरा दिया।

अगवानी करने वाले जो गये थे, वे बारात का स्वागत करते हुए आदरपूर्वक नगर में ले आये और उन सबको जनवासे में ठहरा दिया। बाराती जहाँ आये व ठहरे उस स्थान को जनवासा कहते हैं। जनवासे में सामान रखकर सब द्वारचार के लिये वधू पक्ष के घर जाते हैं।

18. मैना शिव को नापसंद कर दुःखी, समझाने पर हाँ की

(दोहा 96 से 98)

शिव जी परछन के लिये हिमाचल के द्वार पर पहुँचते हैं। पार्वती की माँ मैना व उनके साथ की स्त्रियाँ शिव के भयंकर वेष को देखकर भाग जाती हैं। मैना, बहुत दुःखी होकर, विधाता व नारद को दोष देते हुए पार्वती से कहती हैं कि हम मर जायेंगे पर जीते जी इस वर से तुम्हारा विवाह न होने देंगे। पार्वती मधुर वचनों से कहती हैं कि दोष मत दो, जो भाग्य में होगा वही होगा, पर उनकी बातें समझ नहीं आती हैं। नारद जी पूर्वजन्म की सती की कथा सुनाकर कहते हैं कि यह पुत्री तो माँ जगदंबा का अवतार है, सदा शिव को प्रिय है, हर जन्म में शिव से ही इसका विवाह होगा। नारद जी की बातों से सब आनंदित हो जाते हैं। मैना-हिमवान् पार्वती के चरणों की वंदना करके, विवाह की तैयारी शुरू करवाते हैं।

दूल्हे-शिव का परछन करने मैना द्वार पर आती हैं

मैनाँ सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी ॥96:2॥
कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी ॥96:3॥

मैनाँ सुभ आरती सँवारी = मैना सुंदर आरती सजाती हैं, *संग सुमंगल गावहिं नारी* = मंगल गान करती हुई स्त्रियों के साथ में, *कंचन थार* = सोने की थाल, *सोह* = शोभायमान है, *बर* = सुंदर, *पानी* = हाथों में, *परिछन चली* = परछन करने चलती हैं, *हरहि* = शिव जी का, *हरषानी* = हर्षित होकर।

पार्वती की माँ मैना, मंगल गान करती हुई स्त्रियों के साथ, अपने सुंदर हाथों में सोने की थाल में आरती सजाकर, दूल्हे-शिव की आरती करने दरवाजे पर आती हैं। यह सोचकर प्रसन्न हैं कि शिव जी की आरती करनी है, वे वर रूप में आये हैं, पार्वती की तपस्या पूरी हुई है।

परछन मायने कई स्तर पर वर की जाँच-परख करना

अपने यहाँ विवाह की ऐसी व्यवस्था बनायी गयी थी कि कई स्तर पर वर को जाँचा-परखा जा सके। पहले कुछ लोग वर को देखने जाते हैं, पसंद आया तो फिर कन्या के पिता, भाई व मुख्य रिश्तेदार जाते हैं, भेंट व तिलक करके शादी पक्की करते हैं। इसे वरीक्षा कहते हैं। जब बारात लेकर वर कन्या के घर आता है तो सबसे पहले माँ द्वार पर ही आरती उतारकर परछन करती है। यदि माँ वर को नापसंद कर दे, बात खतम, विवाह नहीं होगा। माँ के पसंद के बाद, कन्या पीछे से वर को देखकर अक्षत फेंक कर, अपनी स्वीकृति देती है। यदि कन्या वर को अस्वीकार कर दे, तो भी विवाह नहीं होगा।

दूल्हा देख स्त्रियाँ भागीं, परछन नहीं हुआ, शिव जनवासे गये

बिकट बेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा ॥96:4॥
भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गए महेसु जहाँ जनवासा ॥96:5॥

बिकट बेष रुद्रहि जब देखा = जब दूल्हे-शिव को भयानक वेष में देखा, *अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा* = स्त्रियों के मन में बहुत भय उत्पन्न हो गया, *भागि भवन पैठीं अति त्रासा* = भागकर घर में घुस गयीं व बहुत डर गयीं, *गए महेसु जहाँ जनवासा* = शंकर जी जनवासे में चले जाते हैं।

मैना व साथ में मंगलगीत गाती स्त्रियों ने जब शंकर जी को भयानक वेष में देखा तो सबके मन में बहुत डर उत्पन्न हो गया। जैसे बच्चे भागे थे, वैसे ही

स्त्रियाँ भी भागकर घर के अंदर चली गयीं। शंकर जी ने सोचा होगा कि यहाँ की ऐसी ही रीति है, वे जनवासे में चले जाते हैं।

दुःखी मैना पार्वती से कहती हैं– जीते जी विवाह नहीं होगा

मैना हृदयँ भयउ दुखु भारी। लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी ॥96:6॥
अधिक सनेहँ गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी ॥96:7॥
जेहिं बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा ॥96:8॥

मैना हृदयँ भयउ दुखु भारी = मैना के हृदय में बहुत दुःख हुआ, *लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी* = उन्होंने पार्वती को अपने पास बुलाया, *अधिक सनेहँ गोद बैठारी* = और बहुत स्नेह से गोद में बैठाया, *स्याम सरोज नयन* = नील कमल के समान नेत्रों में, *भरे बारी* = आँसू भरकर कहती हैं, *जेहिं बिधि* = जिस बिधाता ने, *तुम्हहि रूपु अस दीन्हा* = तुम्हें इतना सुंदर रूप दिया है, *तेहिं जड़* = उस मूर्ख ने, *बरू बाउर कस कीन्हा* = तुम्हें बावला वर क्यों दिया?

कस कीन्ह बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई ।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई ॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं ।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं ॥छंद॥

कस कीन्ह बरु बौराह = वर बावला कैसे बना दिया, *बिधि जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई* = जिस विधाता ने तुम्हें इतना सुंदर बनाया, *जो फलु चहिअ सुरतरुहिं* = जो फल कल्पवृक्ष में लगना चाहिये, *सो बरबस बबूरहिं लागई* = वह फल जबरदस्ती बबूल में लगने जा रहा है, *तुम्ह सहित* = तुम्हें लेकर, *गिरि तें गिरौं* = पर्वत से गिर जाऊँगी, *पावक जरौं* = आग में जल जाऊँगी, *जलनिधि महुँ परौं* = समुद्र में कूद जाऊँ, *घरु जाउ* = चाहे घर उजड़ जाये, *अपजसु होउ जग* = संसार में अपयश मिले, *जीवत बिबाहु न हौं करौं* = पर मैं जीते जी यह विवाह नहीं होने दूँगी।

भईं बिकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि ।
करि बिलापु रोदति बदति सुता सनेहु सँभारि ॥दोहा 96॥

भईं बिकल अबला सकल = सारी स्त्रियाँ व्याकुल हो गयीं, *दुखित देखि गिरिनारि* = हिमालय की पत्नी मैना को दुःखी देखकर, *करि बिलापु रोदति* =

वे सब विलाप करके रोती हैं, *बदति* = कहतीं हैं, *सुता सनेहु सँभारि* = कन्या के स्नेह को याद करके।

घर के अंदर क्या होता है, उसका वर्णन करते हैं। मैना पार्वती को बुलवाकर बहुत प्रेम से अपनी गोद में बैठाती हैं। आँखों में आँसू भरकर रोते हुए कहती हैं कि विधाता ने तुम्हें सुंदर रूप देकर वर बावला क्यों दिया? तुम दोनों में आपस में कोई तालमेल ही नहीं है, तुमसे विवाह करने का मतलब है, कल्पवृक्ष के फल को बबूल के वृक्ष में लगाना। कहती हैं, हम जीते जी यह विवाह नहीं होने देंगे, चाहे हमारे परिवार की कितनी ही निंदा क्यों न हो। उन्हें लगा होगा कि हमारी सुनेगा कौन? तब मर जाने की बात कहती है कि, पर्वत से कूदकर या आग लगाकर या समुद्र में कूद कर हम जान दे देंगे। मैना को रोते देखकर अन्य स्त्रियाँ भी विलाप करके रोने लगीं।

विधाता के बाद, अब मैना नारद को दोषी बताती हैं

नारद कर मैं काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा ॥97:1॥
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा ॥97:2॥
साचेहुँ उन्ह कें मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया ॥97:3॥
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा ॥97:4॥

नारद कर मैं काह बिगारा = हमने नारद का क्या बिगाड़ा था, *भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा* = जिसने मेरे बसते हुए घर को उजाड़ दिया, *अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा* = जिसने पार्वती को ऐसा उपदेश दिया कि, *बौरे बरहि लागि* = जिससे उसने बावले वर के लिये, *तपु कीन्हा* = तपस्या की, *साचेहुँ उन्ह के* = यह सच है कि नारद के पास, *मोह न माया* = न माया है न मोह है, *उदासीन धनु धामु न जाया* = न धन है, न घर है, न पत्नी है वह उदासीन हैं, *पर घर घालक* = दूसरे का घर उजाड़ने में, *लाज न भीरा* = न लज्जा है न डर है, *बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा* = बाँझ स्त्री प्रसव की पीड़ा नहीं समझ सकती।

पहले मैना विधाता को दोष देती हैं, फिर उन्हें लगा कि यह गलत रास्ता तो नारद ने ही बताया है, उसी ने पार्वती को ऐसा उपदेश दिया कि उसने बावले वर के लिये तप किया। नारद के पास माया, मोह, धन, घर, पत्नी इत्यादि

नहीं है, इसलिये दूसरे के घर को नाश करने में उनको लज्जा या डर नहीं लगता है। पर हमने नारद का क्या बिगाड़ा था? उसने हमारा बसता हुआ घर उजाड़ दिया। अंत में एक कहावत कहती हैं कि जिस स्त्री के पुत्र नहीं, वह प्रसव पीड़ा को नहीं समझ सकती है।

पार्वती समझाती हैं– माँ दोष मत दो, जो भाग्य में वही होगा

जननिहि बिकल बिलोकि भवानी। बोली जुत बिबेक मृदु बानी ॥97:5॥
अस बिचारि सोचहि मति माता। सो न टरइ जो रचइ बिधाता ॥97:6॥
करम लिखा जौं बाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू ॥97:7॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥97:8॥

जननिहि बिकल बिलोकि = माता को व्याकुल देखकर, *भवानी बोली* = पार्वती कहती हैं, *जुत बिबेक मृदु बानी* = विवेक युक्त मधुर वाणी से, *अस बिचारि* = यह विचार करके, *सोचहि मति माता* = हे माँ आप चिंता मत करो, *सो न टरइ* = वह टलता नहीं है, *जो रचइ बिधाता* = जो विधाता रच देते हैं, *करम लिखा जौं बाउर* = यदि मेरे भाग्य में बावला पति ही लिखा है, *नाहू तौ कत दोसु लगाइअ काहू* = तो किसी और को क्यों दोष लगाया जाये!, *तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका* = तुम्हारे कहने से क्या विधाता का लिखा मिटेगा?, *मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका* = हे माँ! तुम व्यर्थ ही दूसरों को दोष देकर क्यों कलंक ले रही हो?

जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं ।
दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं ॥
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीं ।
बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं ॥छंद॥

जनि लेहु मातु कलंकु = हे माँ! कलंक मत लो, *करुना परिहरहु* = रोना छोड़ो, *अवसर नहीं* = यह अवसर रोने का नहीं है, *दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें* = हमारे भाग्य में जो सुख-दु:ख लिखा होगा, *जाब जहँ* = मैं जहाँ भी जाऊँगी, *पाउब तहीं* = वही पाऊँगी, *सुनि उमा बचन बिनीत कोमल* = पार्वती के ऐसे विनयपूर्वक मधुर वचन सुनकर, *सकल अबला सोचहीं* = सारी स्त्रियाँ चिंता करने लगीं, *बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन* = तरह-तरह से विधाता को दोष देकर, *नयन बारि बिमोचहीं* = आँखों से आँसू बहाने लगीं।

माँ व्याकुल है, दूसरे को दोषी ठहरा रही है। पार्वती अपनी माँ की बात का विरोध अत्यंत मधुरता से करते हुए उन्हें समझाती हैं, यह शिक्षा हम सब के लिये भी है। जैसा हमारा कर्म है उसी के अनुसार हमें फल मिलता है, इसलिये दूसरों को दोष देकर अपने सिर पर कलंक नहीं लो। किसी के रोने या चिल्लाने से विधाता भाग्य नहीं बदल देगा। यदि मेरे भाग्य में बावला वर है तो वही मिलेगा। जितना सुख-दु:ख भोगना भाग्य में लिखा है, उतना भोगना ही पड़ेगा, हम चाहे कहीं भी रहें।

जो भाग्य में वही होगा, यह बात स्त्रियों को समझ नहीं आती है

पार्वती की विनम्रता भरी बातें सुनकर सभी स्त्रियाँ यह सोचकर दु:खी हो रही हैं कि इनका प्रारब्ध ही ऐसा है इसलिये इन्हें बावला वर मिला है। वे सब बार-बार विधाता को दोष देकर आँसू बहाकर रो रही हैं। उनकी समझ में ये बातें नहीं आती हैं, मैना की तरह ये सब विधाता को दोष देती हैं। कर्म का सिद्धांत व्यक्ति की समझ में आये तो दु:ख दूर हो, पर यह समझ में आना अत्यंत कठिन है।

हिमवान्, सप्तर्षि व नारद सहित घर आते हैं

तेहि अवसर नारद सहित अरु रिषि सप्त समेत ।
समाचार सुनि तुहिनगिरि गवने तुरत निकेत ।।दोहा 97।।

तेहि अवसर नारद सहित = उसी समय नारद जी को लेकर, *अरु रिषि सप्त समेत* = और सप्तर्षि के साथ, *समाचार सुनि* = सारे समाचार सुनकर, *तुहिनगिरि* = हिमाचल, *गवने तुरत निकेत* = अपने घर में प्रवेश करते हैं।

हिमाचल घर के बाहर विवाह की व्यवस्था में लगे थे, उन्हें पता चला कि घर में तो कोहराम मचा है, पार्वती का विवाह नहीं होने दिया जा रहा है। उन्होंने सोचा कि अकेले जाकर समझायेंगे तो बात नहीं बनेगी, इसलिये नारद जी को साथ लिया, सप्तर्षियों को भी साथ लेकर कुल नौ लोग घर में प्रवेश करते हैं।

नारद जी कहते हैं– ये पुत्री शिव की शक्ति भवानी ही हैं

तब नारद सबही समुझावा। पूरुब कथाप्रसंगु सुनावा ।।98:1।।
मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी ।।98:2।।

अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि ॥98:3॥
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि ॥98:4॥

तब नारद सबही समुझावा = तब नारद जी ने सबको समझाया, *पूरुब कथाप्रसंगु सुनावा* = पूर्व जन्म की कथा सुनाई, *मयना सत्य सुनहु मम बानी* = हे मैना मैं सत्य कहता हूँ; मेरी बात सुनो, *जगदंबा तव सुता भवानी* = तुम्हारी पुत्री तो सारे जगत् की जननी शंकर जी की पत्नी हैं, *अजा* = अजन्मा हैं, *अनादि* = आदि अंत नहीं है, *सक्ति अबिनासिनि* = ये अनादि शक्ति हैं, *सदा संभु अरधंग निवासिनि* = सदैव शंकर जी के आधे अंग में निवास करती हैं, *जग संभव* = संसार को उत्पन्न करने वाली, *पालन* = पालन करने वाली, *लय कारिनि* = और विनाश करने वाली हैं, *निज इच्छा* = अपनी इच्छा से, *लीला बपु धारिनि* = लीला के लिये शरीर धारण किया है।

नारद जी सबको समझाकर, पूर्व जन्म की कथा बताकर कहते हैं कि हे मैना! सुनो, तुमको हम सत्य बात बताते हैं, जिसे तुम अपनी पुत्री समझ रही हो, वह जगदंबा हैं, सारे जगत् की जननी हैं। तुम्हारी भी माता की माता हैं। ये भवानी हैं यानि शंकर जी की पत्नी हैं। इनका जन्म नहीं होता है, तुम्हारे घर में लीला के लिये शरीर धारण किया है। इनका न आदि है न अंत है। इनका कभी नाश नहीं होता है। ये तो शंकर जी से अलग हो ही नहीं सकती क्योंकि इनका शिव के आधे अंग में सदा निवास है। ये जगत् की उत्पति करने वाली, उसका पालन करने वाली व संहार करने वाली शक्ति हैं। उन्होंने अपनी इच्छा से यह शरीर धारण किया है। यहाँ पर शंकर जी को परब्रह्म परमेश्वर व पार्वती को उनकी महामाया शक्ति बताते हैं।

नारद जी पार्वती के पूर्वजन्म की कथा बताते हैं

जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई। नामु सती सुंदर तनु पाई ॥98:5॥
तहँहुँ सती संकरहि बिबाहीं। कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं ॥98:6॥

जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई = पहले इन्होंने दक्ष के यहाँ जन्म लिया था, *नामु सती* = सती नाम था, *सुंदर तनु पाई* = शरीर सुंदर था, *तहँहुँ* = उस जन्म में भी, *सती संकरहि बिबाहीं* = सती का विवाह शंकर जी से हुआ, *कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं* = यह कथा सारे जगत् में प्रसिद्ध है।

एक बार आवत सिव संगा। देखेउ रघुकुल कमल पतंगा ॥98:7॥
भयउ मोहु सिव कहा न कीन्हा। भ्रम बस बेषु सीय कर लीन्हा ॥98:8॥

एक बार आवत सिव संगा = एक बार सती जी शंकर जी के साथ आ रही थीं, *देखेउ रघुकुल कमल पतंगा* = रास्ते में रघुकुल के कमल के सूर्य राम को देखा, *भयउ मोहु* = सती को मोह हो गया, *सिव कहा न कीन्हा* = तब शिव का कहना न मानकर, *भ्रम बस बेषु सीय कर लीन्हा* = भ्रम के कारण इन्होंने सीता का वेष बना लिया।

सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं ।
हर बिरहँ जाइ बहोरि पितु कें जग्य जोगानल जरीं ॥
अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया ।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकरप्रिया ॥छंद॥

सिय बेषु सतीं जो कीन्ह = सीता का वेष सती ने बना लिया, *तेहिं अपराध संकर परिहरीं* = उसी अपराध के कारण शंकर जी ने इनका त्याग कर दिया, *हर बिरहँ* = शिव के वियोग में, *जाइ बहोरि* = फिर जाकर, *पितु कें जग्य* = पिता के यज्ञ में, *जोगानल जरीं* = अपनी योगाग्नि में जल गई, *अब जनमि तुम्हरे भवन* = अब इनका जन्म तुम्हारे घर में हुआ है, *निज पति लागि दारुन तपु किया* = अपने पति के लिये इन्होंने कठिन तप किया है, *अस जानि* = ऐसा समझकर, *संसय तजहु* = संदेह छोड़ दो, *गिरिजा सर्बदा संकरप्रिया* = पार्वती तो सदा ही शंकर को प्रिय हैं।

नारद जी कहते हैं कि पूर्वजन्म में तुम्हारी पुत्री ने दक्ष के यहाँ जन्म लिया था, उस जन्म में इनका नाम सती था, बहुत सुंदर शरीर था, शिव के साथ ही विवाह हुआ था। एक बार शिव-सती आ रहे थे, रास्ते में प्रभु राम सीता के वियोग में विलाप करते हुए दिख गए। राम के अवतार की लीला चल रही थी। सती जी को भ्रम हो गया, शिव जी ने बहुत समझाया पर सती की समझ में बात नहीं आयी। सती ने सीता का रूप धारण करके राम की परीक्षा ले ली। शिव ने अपने धर्म पालन के लिये सती का त्याग कर दिया। पति के वियोग में दु:खी होती रहीं। फिर पिता के यज्ञ में गईं, वहाँ पर शंकर जी का भाग नहीं दिखा तो योग की अग्नि प्रगट कर अपने शरीर को भस्म कर लिया। अब आकर तुम्हारे घर में इनका जन्म हुआ है। इनके पति तो शंकर ही हैं, जिन्हें

प्राप्त करने के लिये कठिन तपस्या की है। ऐसा समझकर, तुम शंका छोड़ो, ये पार्वती तो सदा शंकर की ही हैं, उन्हें बहुत प्रिय हैं। ये जब-जब जन्म लेंगी, शंकर के साथ ही इनका विवाह होगा।

विषाद दूर, आनंद व्याप्त, हिमवान्-मैना पार्वती की वंदना करते हैं

सुनि नारद के बचन तब सब कर मिटा बिषाद ।
छन महुँ ब्यापेउ सकल पुर घर घर यह संबाद ॥दोहा 98॥

सुनि नारद के बचन = नारद की बातें सुनकर, *तब सब कर मिटा बिषाद* = तब सबका दु:ख मिट गया, *छन महुँ ब्यापेउ सकल पुर घर घर यह संबाद* = क्षण भर में ही यह समाचार सारे नगर में घर-घर पहुँच गया।

तब मयना हिमवंतु अनंदे। पुनि पुनि पारबती पद बंदे ॥99:1॥
नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने। नगर लोग सब अति हरषाने ॥99:2॥

तब मयना हिमवंतु अनंदे = तब मैना व हिमवान् आनंदित होकर, *पुनि पुनि पारबती पद बंदे* = बार-बार पार्वती के चरणों की वंदना करते हैं, *नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने* = स्त्री, पुरुष, बालक, युवा व वृद्ध, *नगर लोग सब अति हरषाने* = और नगर के सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए।

इसके पहले पार्वती ने कर्म का सिद्धांत समझाया था, उससे विषाद नहीं मिटा। जब नारद जी ने ज्ञान की बात बतायी तब सबके समझ में आयी। सप्तर्षि भी सामने गवाही के रूप में बैठे थे। क्षण भर में यह समाचार सारे नगर में फैल गया। जब हिमवान् व मैना को मालूम हुआ कि शंकर जी परमात्मा हैं व पार्वती उनकी आदिशक्ति हैं तो बहुत आनंद की अनुभूति हुई। उन्हें मालूम हुआ कि हमारे घर में भगवान ने अवतार लिया है। उन्होंने पार्वती के चरणों में बार-बार प्रणाम किया। यह बात सारे नगर में फैल गई। सभी लोग यह जानकर बहुत प्रसन्न हो गये कि हमारे नगर में भगवान ने अवतार लिया है। अब हम भगवान का विवाह देखेंगे।

भगवान हमारे अंदर, पहचान कर आनंद पायें

जानने व न जानने में बहुत अंतर है। पार्वती हिमालय के घर में बसी थीं, पर वे नहीं जानते थे, मैना तो पहाड़ से कूदकर जान देने को तैयार थी। जब ज्ञान

आया तो दु:ख दूर हो गये, आनंद छा गया। यही हाल हम सबका है। भगवान तो हमारे अंदर ही बसा है, पर हम जानते नहीं। जब कोई पहचान बतला दे, विश्वास दिला दे, तो हम उनका आदर करते हैं, प्रणाम करते हैं, उसे स्वीकार करके आनंद पाते हैं। ध्यान दें, जहाँ से ज्ञान हो गया, उसके बाद निशाचरों, भूत-प्रेतों का नाम कहीं नहीं है। अब भोजन के लिये जो लोग आयेंगे उनमें देवता होंगे, विष्णु भगवान होंगे। शंकर जी भी सुंदर लगेंगे।

19. शिव-पार्वती विवाह

(दोहा 99 से 103)

इस प्रसंग में तुलसीदास जी यह बताते हैं कि किस प्रकार के आनंद व मनो-विनोद के वातावरण में वैदिक रीति से शिव-पार्वती के विवाह का कार्य संपन्न होता है। सब बारातियों को प्रेम से बैठाकर, निपुण रसोइयों द्वारा परोसकर, पाकशास्त्र में वर्णित विधि से बना भोजन हँसी-मजाक के माहौल में करवाया जाता है। मंडप के मध्य में दिव्य सिंहासन पर शिव जी सुंदर स्वरूप में बैठते हैं। शोभा की खान पार्वती जी दिव्य सौंदर्य में मंडप में आती हैं। गणेश पूजन से शुरू करके विवाह की रीति करवाई जाती है। हिमवान् पार्वती का हाथ शिव के हाथों में सौंपकर पाणिग्रहण संस्कार करते हैं। प्रथा के अनुसार दहेज देकर भावपूर्ण वातावरण में विदाई करते हैं। शिव जी दहेज का सामान याचकों को बाँटकर, पार्वती के साथ कैलास पहुँचते हैं। बहुत दिनों बाद उनके पुत्र होता है जो तारकासुर का वध करता है। इस कथा को कहने से विवाह आदि के मंगल कार्य सुगमता से संपन्न होते हैं।

बारातियों का जेवनार, महिलायें गाली गाती हैं, आनंद का माहौल

लगे होन पुर मंगल गाना। सजे सबहिं हाटक घट नाना ॥99:3॥
भाँति अनेक भई जेवनारा। सूपसास्त्र जस कछु ब्यवहारा ॥99:4॥
सो जेवनार कि जाइ बखानी। बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी ॥99:5॥

लगे होन पुर मंगल गाना = नगर में मंगलगीत गाये जाने लगे, *सजे सबहिं* = सबने सजाये, *हाटक घट नाना* = तरह-तरह के स्वर्ण कलश, *भाँति अनेक भई जेवनारा* = अनेक तरह की रसोई बनी, *सूपसास्त्र जस कछु ब्यवहारा* = पाककला में वर्णन के अनुसार, *सो जेवनार कि जाइ बखानी* = जेवनार के

व्यंजनों का क्या वर्णन किया जाये, *बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी* = जिस घर में माँ अन्नपूर्णा स्वयं विराजमान हों।

सादर बोले सकल बराती। बिष्नु बिरंचि देव सब जाती ॥99:6॥
बिबिधि पाँति बैठी जेवनारा। लागे परुसन निपुन सुआरा ॥99:7॥
नारिबृंद सुर जेवँत जानी। लगीं देन गारीं मृदु बानी ॥99:8॥

सादर बोले सकल बराती = बड़े आदर के साथ बारातियों को बुलवाया गया, *बिष्नु बिरंचि देव सब जाती* = विष्णु-ब्रह्मा के साथ सब तरह के देवता आये, *बिबिधि पाँति बैठी जेवनारा* = भोजन करने वालों को वर्ग के अनुसार पंक्ति में बैठाया गया, *लागे परुसन निपुन सुआरा* = कुशल परोसने वाले खाना परोसने लगे, *नारिबृंद* = स्त्रियों का समूह, *सुर जेवँत जानी* = ने देवताओं को भोजन करते देखकर, *लगीं देन गारीं मृदु बानी* = कोमल वाणी में गाली गाना प्रारंभ कर दिया।

गारीं मधुर स्वर देहिं सुंदरि बिंग्य बचन सुनावहीं ।
भोजनु करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सचु पावहीं ॥
जेवँत जोढ्यो अनंदु सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो ।
अचवाँइ दीन्हें पान गवने बास जहँ जाको रह्यो ॥छंद॥

गारीं मधुर स्वर देहिं = मीठे स्वर में गालियाँ देने लगीं, *सुंदरि* = सुंदर स्त्रियाँ, *बिंग्य बचन सुनावहीं* = व्यंग्य भरे वाक्य कहने लगीं, *भोजनु करहिं सुर अति बिलंबु* = देवता देर तक भोजन करते रहते हैं, *बिनोदु सुनि सचु पावहीं* = विनोद की बातें उन्हें अच्छी लग रही हैं, *जेवँत जो बढ्यो अनंदु* = भोजन करते समय जो आनंद हुआ, *सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो* = उसका वर्णन करोड़ों मुख से भी नहीं किया जा सकता, *अचवाँइ दीन्हें* = भोजन के बाद मुँह धुलवाया गया, *पान गवने* = पान खिलवाया गया, *बास जहँ जाको रह्यो* = फिर जनवासे में अपने-अपने स्थान में चले गये।

खाना बनाने की कला को सूपशास्त्र कहते हैं। इस शास्त्र में जैसा वर्णित था उसके अनुसार तरह-तरह के व्यंजन बनवाये गये। जहाँ माँ अन्नपूर्णा स्वयं वास कर रही हैं वहाँ के भोजन का वर्णन नहीं किया जा सकता है। बहुत आदर के साथ बारातियों को बुलवाया गया। बाराती कौन? ब्रह्मा, विष्णु व देवता,

भूत-प्रेत नहीं हैं। जिस वर्ग के देवता थे उस वर्ग की अलग पंक्ति बनाकर बैठाया गया। बहुत ही निपुण रसोइये खाना परोसने लगे। स्त्रियों ने देखा कि खाना परोस दिया गया है, बारातियों ने खाना प्रारंभ कर दिया, तो वे गालियाँ गाने लगीं, व्यंग्य वचन कहने लगीं। ये सब बातें सुनकर देवता प्रसन्न होते हैं, हँसकर, मजा लेते हुए देर तक भोजन करते रहते हैं। बारातियों का भोजन जिस आनंद के माहौल में हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। भोजन के बाद मुँह धुलवाया गया, पान खिलाया गया। बाराती जनवासे में अपने-अपने स्थान को चले गये।

सप्तर्षि ने कहा विवाह की लगन आ गई, व्यवस्था प्रारंभ

बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहुँ लगन सुनाई आइ ।
समय बिलोकि बिबाह कर पठए देव बोलाइ ॥दोहा 99॥

बहुरि मुनिन्ह = फिर सप्तर्षि , *हिमवंत कहुँ* = हिमवान् को, *लगन सुनाई आइ* = यह कहते हैं कि विवाह की लगन आ गई है, *समय बिलोकि बिबाह कर* = विवाह का समय देखकर, *पठए देव बोलाइ* = देवताओं को बुलाया जाये।

बोलि सकल सुर सादर लीन्हे। सबहि जथोचित आसन दीन्हे ॥100:1॥
बेदी बेद बिधान सँवारी। सुभग सुमंगल गावहिं नारी ॥100:2॥

बोलि सकल सुर सादर लीन्हे = सभी देवताओं को आदर के साथ बुलवाया गया, *सबहि जथोचित आसन दीन्हे* = सबको यथा योग्य आसन दिये गये, *बेदी बेद बिधान सँवारी* = हवन के लिये वेद की विधि के अनुसार वेदी बनाई गई, *सुभग सुमंगल गावहिं नारी* = स्त्रियाँ सुंदर मंगल गीत गाने लगीं।

जनवासे से सप्तर्षियों को यह कहकर भेजा जाता है कि हिमवान् को लगन पत्रिका सुनाओ, जो उन्होंने विवाह की लगन लिखी है वह आ गई है, जल्दी विवाह की तैयारी करें। तब हिमवान् सभी देवताओं को आदर के साथ बुलवाकर उन्हें उचित आसनों पर बैठाते हैं। हवन करने के लिये वेद-विधि के अनुसार वेदी बनवाई गई। स्त्रियों ने मंगल गीत गाना शुरू कर दिया।

विवाह-मंडप में दिव्य सिंहासन पर शंकर जी बैठते हैं

सिंघासनु अति दिब्य सुहावा। जाइ न बरनि बिरंचि बनावा ॥100:3॥
बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई। हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई ॥100:4॥

सिंघासनु अति दिब्य सुहावा = एक बहुत सुंदर सिंहासन बनाया गया, *जाइ न बरनि* = उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, *बिरंचि बनावा* = ब्रह्मा जी ने स्वयं उसे बनाया था, *बैठे सिव* = उस पर शंकर जी बैठते हैं, *बिप्रन्ह सिरु नाई* = विप्रो को प्रणाम करके, *हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई* = मन में अपने प्रभु राम को स्मरण करते हैं।

विवाह मंडप में शंकर जी के बैठने के लिये ब्रह्मा जी ने अपने हाथों से एक दिव्य सिंहासन बनाया था। उसकी सुंदरता का वर्णन नहीं किया जा सकता है। शंकर जी पहले विप्रों को प्रणाम करते हैं, फिर अपने प्रभु राम का स्मरण करके उस सिंहासन पर बैठते हैं।

अलौकिक, दिव्य सौंदर्य में पार्वती जी विवाह-मंडप में आईं

बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं। करि सिंगारु सखीं लै आईं ॥100:5॥
देखत रूपु सकल सुर मोहे। बरनै छबि अस जग कबि को है ॥100:6॥
जगदंबिका जानि भव भामा। सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा ॥100:7॥
सुंदरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी ॥100:8॥

बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं = फिर मुनियों ने पार्वती को बुलवाया, *करि सिंगारु सखीं लै आईं* = सखियाँ शृंगार करके उन्हें ले आयीं, *देखत रूपु सकल सुर मोहे* = उनके रूप को देखकर सब देवता मोहित हो गये, *बरनै छबि अस जग कबि को है* = संसार में ऐसा कवि कौन है जो उनकी सुंदरता का वर्णन कर सके, *जगदंबिका जानि* = पार्वती को जगत् की माता समझकर व, *भव भामा* = शंकर जी की पत्नी समझकर, *सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा* = देवताओं ने मन ही मन उन्हें प्रणाम किया, *सुंदरता मरजाद भवानी* = पार्वती जी सुंदरता की सीमा है, *जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी* = उनकी दिव्य एवं अलौकिक सुन्दरता का वर्णन करोड़ों मुखों से भी नहीं हो सकता है।

सब तैयारी हो गई, शंकर जी सिंहासन पर बैठ गये, तब मुनियों ने कहा पार्वती जी को बुलवाया जाये। सखियाँ पार्वती जी का श्रृंगार करके उन्हें विवाह-मंडप में लेकर आती हैं। तुलसीदास जी, पार्वती जी के दो भावों का वर्णन करते हैं:

1. वधू भाव– दुल्हन जैसा सजाया गया है, उनकी सुंदरता को सब देवता देखते ही रह गये। उनके दिव्य व अलौकिक सौंदर्य का वर्णन संभव नहीं है।
2. मातृ भाव– शंकर जी की पत्नी व जगत् की माता समझकर सब देवता उन्हें मन-ही-मन प्रणाम करते हैं।

मंडप के मध्य में शिव जी के पास पार्वती पहुँची

कोटिहुँ बदन नहिं बनै बरनत जग जननि सोभा महा ।
सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद मंदमति तुलसी कहा ॥
छबिखानि मातु भवानि गवनीं मध्य मंडप सिव जहाँ ।
अवलोकि सकहिं न सकुच पति पद कमल मनु मधुकरु तहाँ ॥छंद॥

कोटिहुँ बदन नहिं बनै बरनत = करोड़ो मुखों से वर्णन नहीं किया जा सकता, *जग जननि सोभा महा* = जगत् की जननी की महान् शोभा का, *सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद* = वेद; शेषनाग; सरस्वती उनका वर्णन करने में संकोच करते हैं, *मंदमति तुलसी कहा* = तब मंदबुद्धि तुलसीदास किस गिनती में हैं, *छबिखानि* = सुंदरता की खान, *मातु भवानि* = माता भवानी, *गवनीं मध्य मंडप* = मंडप के मध्य में गई, *सिव जहाँ* = जहाँ शंकर जी बैठे थे, *अवलोकि सकहिं न* = देख नहीं सकती, *सकुच* = संकोच के कारण, *पति पद कमल* = पति के कमल रूपी चरण को, *मनु मधुकरू तहाँ* = पर उनका भ्रमर रूपी मन चरण कमल पर ही मँडरा रहा है।

जितना स्वर्ण है वह कहाँ से आया? सोने की खान से, वहीं से सोना निकलता है। संसार में जितनी सुंदरता है कहाँ से आई? सुंदरता की खान से। तुलसीदास जी कहते हैं कि पार्वती जी सुंदरता की खान हैं, वे सारी सुंदरता की स्रोत हैं। जब वेद, शेषनाग, सरस्वती भी उनकी सुंदरता का वर्णन नहीं कर सकते तो मैं कैसे कर सकता हूँ। पार्वती जब शंकर जी के पास पहुँची, तो उन्हें शिव की तरफ देखने में बहुत संकोच होता है, तो चरणों की तरफ देखती हैं। पर आँखों से चरणों को देखने में भी संकोच होता है, तब अपने मन को चरणों में ही लगाये रखती हैं।

पहले गणेश पूजन, फिर वेद-विधि से विवाह रीति हुई

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि ।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि ॥दोहा 100॥

मुनि अनुसासन= मुनियों की आज्ञा से, *गनपतिहि पूजेउ*= गणेशजी की पूजा करते हैं, *संभु भवानि*= शंकर व पार्वती, *कोउ सुनि*= इसे सुनकर, *संसय करै जनि*= कोई शंका न करे, *सुर अनादि जियँ जानि*= मन में यह समझकर की देवता अनादि हैं।

जसि बिबाह कै बिधि श्रुति गाई। महामुनिन्ह सो सब करवाई ॥101:1॥

जसि बिबाह कै बिधि श्रुति गाई= विवाह की जैसी विधि वेदों में वर्णित है, *महामुनिन्ह सो सब करवाई*= महामुनियों ने वह सब करवाया।

पार्वती जी को मंडप में बैठाने के बाद पूजन शुरू होता है। पूजा करवाने वाले मुनियों ने शिव-पार्वती से कहा कि सबसे पहले गणेश जी का पूजन करें। वे गणेश जी की पूजा करते हैं। फिर, वैदिक रीति से विवाह करवाया गया। तुलसीदास जी कहते हैं कि इस पर शंका न करें क्योंकि देवता अनादि हैं। शिव-पार्वती के विवाह के पहले भी गणेश थे। देवता अवतार लेते हैं, लीला करते हैं ताकि लोग उनकी लीलाओं की कथा सुनकर लाभ उठायें। ये कथायें बहस के लिये, शंका के लिये नहीं हैं, श्रद्धापूर्वक सुनकर अपने जीवन को धन्य करें।

हिमवान् ने पार्वती का हाथ शिव के हाथों में सौंपा

गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहि समरपीं जानि भवानी ॥101:2॥
पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हियँ हरषे तब सकल सुरेसा ॥101:3॥

गहि गिरीस कुस= हिमवान् ने हाथ में कुश लिया, *कन्या पानी*= फिर उसके ऊपर पार्वती का हाथ रखकर, *भवहि समरपीं*= शंकर जी को सौंप दिया, *जानि भवानी*= यह समझकर कि ये शंकर जी की पत्नी हैं, *पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा*= फिर शंकर जी ने पार्वती का हाथ अपने हाथ में ले लिया, *हियँ हरषे तब सकल सुरेसा*= तब इन्द्र सहित सब देवता मन में बड़े प्रसन्न हुए।

हिमवान् ने अपने हाथ में कुश रखा, उसके ऊपर पार्वती का हाथ रखा, फिर पार्वती का हाथ शिव के हाथ में दे दिया। शंकर जी ने पार्वती का हाथ ग्रहण कर लिया यानि अपने हाथों में ले लिया। इस पूरी रीति को कहते हैं पाणिग्रहण संस्कार। हिमवान् के मन में यह भाव था कि पार्वती तो शंकर की ही हैं, इसलिये उन्हें ही सौंप दिया। इस प्रकार शिव जी का विवाह देखकर देवता प्रसन्न हो गये।

शिव-पार्वती विवाह होने का आनंद सब जगह छा गया

बेदमंत्र मुनिबर उच्चरहीं। जय जय जय संकर सुर करहीं ॥101:4॥
बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। सुमनबृष्टि नभ भै बिधि नाना ॥101:5॥
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू ॥101:6॥

बेदमंत्र मुनिबर उच्चरहीं = श्रेष्ठ मुनि वेद मंत्रों का उच्चारण करने लगे, *जय जय जय संकर सुर करहीं* = देवता शिव की जयकार करने लगे, *बाजहि बाजन बिबिध बिधाना* = अनेकों प्रकार के बाजे बजने लगे, *सुमनबृष्टि नभ भै बिधि नाना* = आकाश से अनेक प्रकार के फूलों की वर्षा हुई, *हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू* = शिव-पार्वती का विवाह हो गया, *सकल भुवन भरि रहा उछाहू* = सारे ब्रह्मांड में आनंद भर गया।

मुनि लोग वेदमंत्र बोल रहे हैं, देवता शिव की जय जयकार कर रहे हैं, अनेकों प्रकार के बाजे बज रहे हैं, आकाश से फूलों की वर्षा हो रही है। शिव-पार्वती विवाह पूरा होने का आनंद सब जगह छा गया।

विवाह के बाद दहेज दिया, दहेज माँगा नहीं, दिया जाता है

दासीं दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा ॥101:7॥
अन्न कनकभाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना ॥101:8॥

दासीं दास तुरग रथ नागा = दासी, दास, घोड़े, रथ, हाथी, *धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा* = गाय, वस्त्र, मणि, आदि अनेक प्रकार की चीजें, *अन्न कनकभाजन* = अन्न तथा सोने के बर्तन, *भरि जाना* = गाड़ियों में लदवाकर, *दाइज दीन्ह* = दहेज में दिया, *न जाइ बखाना* = उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

यहाँ यह अच्छे से समझ लें कि दहेज माँगने की प्रथा नहीं है, देने की प्रथा है। पिता की संपत्ति में पुत्री का भी हक है, इसलिये विवाह के समय दहेज दिया जाता है। दासी, दास, घोड़े, रथ, हाथी, गाय, वस्त्र, मणि आदि अनेक प्रकार की चीजें, अन्न, सोने के बर्तन, गाड़ियों में लदवाकर दहेज में दिया। इतना सामान है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

हिमवान् शिव से क्षमा माँगते हैं, शिव उन्हें संतुष्ट करते हैं

दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो ।
का देउँ पूरनकाम संकर चरन पंकज गहि रह्यो ॥
सिवँ कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहिं कियो ।
पुनि गहे पद पाथोज मयनाँ प्रेम परिपूरन हियो ॥छंद॥

दाइज दियो बहु भाँति = बहुत प्रकार का दहेज दिया, *पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो* = फिर हाथ जोड़कर हिमाचल ने कहा, *का देउँ* = मैं आपको क्या दे सकता हूँ? *पूरनकाम संकर* = हे शिव! आप तो पूर्णकाम हैं, *चरन पंकज गहि रह्यो* = कमल के समान शिव जी के चरण को पकड़ लिया, *सिवँ कृपासागर* = शिव तो कृपा के समुद्र हैं, *ससुर कर संतोषु सब भाँतिहिं कियो* = उन्होंने अपने ससुर को सभी प्रकार से संतुष्ट किया, *पुनि गहे पद पाथोज मयनाँ* = फिर मैना ने शिव जी के चरण कमल पकड़ लिये, *प्रेम परिपूरन हियो* = हृदय में प्रेम से भरकर।

भेंट देने के बाद हिमवान् शिव जी के सामने हाथ जोड़कर क्षमा माँगते हुए कहते हैं कि हे शिव! आप तो पूर्णकाम हैं, आपको कामना तो है ही नहीं, हम आपको भला दे ही क्या सकते हैं, पर प्रथा के अनुसार भेंट देते हैं। इतना कहकर वे प्रेमवश शंकर जी के कमल के समान चरणों को पकड़ लेते हैं। शंकर जी तो कृपानिधान हैं ही, उन्होंने हिमवान् की प्रशंसा करके सब प्रकार से उन्हें संतुष्ट किया। मैना के हृदय में भी अपने दामाद के प्रति प्रेम भाव आया, वे भी शिव के चरण-कमल को पकड़ लेती हैं।

मैना शिव से पार्वती को क्षमा करने का वरदान माँगती हैं

नाथ उमा मम प्रान सम गृहकिंकरी करेहु ।
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु ॥दोहा 101॥

नाथ उमा मम प्रान सम = हे नाथ उमा हमारे प्राण के समान प्यारी है, *गृहकिंकरी करेहु* = इसे गृह किंकरी बनाये रखना, *छमेहु सकल अपराध अब* = अब इसके सभी अपराध क्षमा करियेगा, *होइ प्रसन्न बरु देहु* = प्रसन्न होकर यही वर दीजिये।

बहु बिधि संभु सासु समुझाई। गवनी भवन चरन सिरु नाई ॥102:1॥

बहु बिधि संभु सासु समुझाई = शंकर जी ने बहुत प्रकार से सास को समझाया, *गवनी भवन चरन सिरु नाई* = चरणों में प्रणाम करके वे घर के अंदर चली जाती हैं।

मैना शिव के चरणों को पकड़ कर कहती हैं कि हे नाथ! हमारी पुत्री उमा हमें प्राणों के समान प्रिय है, इसे अपनी गृहकिंकरी समझकर रखना। हमें यह वरदान दें कि अब आपने उमा के सब अपराधों को क्षमा कर दिया है। शंकर जी ने सास को बहुत प्रकार से समझाया कि आपकी पुत्री को दु:ख नहीं होगा। फिर मैना घर के अंदर चली जाती हैं।

माँ अश्रुपूरित नेत्रों से पुत्री उमा को शिक्षा देती हैं

जननीं उमा बोलि तब लीन्ही। लै उछंग सुंदर सिख दीन्ही ॥102:2॥
करेहु सदा संकर पद पूजा। नारिधरमु पति देउ न दूजा ॥102:3॥
बचन कहत भरे लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी ॥102:4॥
कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं ॥102:5॥

जननीं उमा बोलि तब लीन्ही = फिर माता ने पार्वती को बुलवाया, *लै उछंग सुंदर सिख दीन्ही* = गोद में बैठाकर सुंदर शिक्षा दी, *करेहु सदा संकर पद पूजा* = तुम सदा शंकर जी के चरण की पूजा करना, *नारिधरमु* = नारी धर्म है कि, *पति देउ* = पति ही देवता है, *न दूजा* = दूसरा कोई नहीं है, *बचन कहत भरे लोचन बारी* = वचन कहते-कहते उनके नेत्रों में अश्रु आ गये, *बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी* = फिर कन्या को अपने हृदय से लगाकर कहती हैं, *कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं* = विधाता ने स्त्री की रचना कैसे की है, *पराधीन* = वह पराधीन ही रहती है, *सपनेहुँ सुखु नाहीं* = स्वप्न में भी उसे सुख नहीं है।

मैना पार्वती को बुलवाती हैं, उन्हें गोद में बैठाकर धर्म की शिक्षा देते हुए कहती हैं कि तुम सदा शिव के चरणों की पूजा करना। नारी के लिये उसका पति ही देवता है। आशय है कि पति के साथ प्रेम से रहे, जिससे विरोध न उत्पन्न हो, घर में शांति का वातावरण बना रहे। इतना कहते-कहते मैना के आँखों में आँसू आ गये। उमा को हृदय से लगाकर कहती हैं कि विधाता ने नारी की ऐसी रचना की है कि वह कभी स्वतंत्र नहीं है, सदा पराधीन ही रहती है, इसलिये उसे सुख नहीं है।

भाव पूर्ण वातावरण में पार्वती जी की विदाई

भै अति प्रेम बिकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी ॥102:6॥
पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेमु कछु जाइ न बरना ॥102:7॥
सब नारिन्ह मिलि भेटि भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी ॥102:8॥

भै अति प्रेम बिकल महतारी = माता प्रेम से बहुत व्याकुल हो गई, *धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी* = पर दु:ख का अवसर न जानकर धैर्य धारण किया, *पुनि पुनि मिलति* = मैना बार-बार मिलती हैं, *परति गहि चरना* = पार्वती के चरणों को पकड़ती हैं, *परम प्रेमु* = बहुत प्रेम है, *कछु जाइ न बरना* = उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, *सब नारिन्ह मिलि भेटि भवानी* = सब स्त्रियों से पार्वती मिलकर, *जाइ जननि उर पुनि लपटानी* = फिर जाकर माँ के हृदय से लिपट गई।

जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहूँ दईं ।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखीं लै सिव पहिं गईं ॥
जाचक सकल संतोषि संकरु उमा सहित भवन चले ।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले ॥छंद॥

जननिहि बहुरि मिलि चली = पार्वतीजी माता से फिर मिलकर चलीं, *उचित असीस सब काहूँ दईं* = सबने उचित आशीर्वाद दिया, *फिरि फिरि बिलोकति मातु तन* = पार्वती जी मुड़-मुड़ कर माँ की तरफ देखती जाती थीं, *तब सखीं लै सिव पहिं गईं* = तब सखियाँ उन्हें लेकर शंकर जी के पास गयीं, *जाचक सकल संतोषि* = सब याचकों को संतुष्ट कर, *संकरु उमा सहित भवन चले* = शंकर जी पार्वती जी सहित कैलास को चल दिये,

सब अमर हरषे = सब देवता प्रसन्न हुए, *सुमन बरषि* = फूलों की वर्षा की, *निसान नभ बाजे भले* = आकाश में बाजे बजने लगे।

चले संग हिमवंतु तब पहुँचावन अति हेतु ।
बिबिध भाँति परितोषु करि बिदा कीन्ह बृषकेतु ॥दोहा 102॥

चले संग हिमवंतु तब पहुँचावन अति हेतु = तब बड़े प्रेम से हिमवान् शिव जी को पहुँचाने जाते हैं, *बिबिध भाँति परितोषु करि* = तरह-तरह से संतोष देकर, *बिदा कीन्ह बृषकेतु* = शंकर जी ने हिमवान् को विदा किया।

विदाई का समय आ गया है। माँ बहुत व्याकुल हैं, पर कन्या को विदा करना ही है, दुःखी होने से काम नहीं चलेगा, यह सोचकर मन में धैर्य धारण करती हैं। मैना के मन में परम प्रेम है, बार-बार पार्वती को हृदय से लगाती हैं, उनके पैर छूती हैं। वहाँ पर अन्य स्त्रियाँ भी थीं, जिनसे पार्वती मिलकर फिर से अपनी माँ के हृदय से लिपट जाती हैं। सबने यथोचित आशीर्वाद दिया। जब सखियाँ उन्हें शंकर जी के पास ले जाने लगती हैं, तब पार्वती घूम-घूमकर माता की तरफ देखती रहती हैं। जैसे ही पार्वती शिव जी के पास पहुँची, शिव जी पार्वती संग कैलास की ओर चल दिये। दहेज में जो भी सामान मिला था शंकर जी ने विदाई के पहले ही याचकों में बाँटकर उन्हें संतुष्ट कर दिया। सभी देवता प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा करने लगे, आकाश में बाजे बजने लगे। हिमवान् बारातियों को विदा करने के लिये, उनके साथ बहुत दूर तक जाते हैं, फिर शंकर जी समझाकर उन्हें वापस भेज देते हैं।

हिमवान् घरातियों की सम्मान सहित विदाई करते हैं

तुरत भवन आए गिरिराई। सकल सैल सर लिए बोलाई ॥103:1॥
आदर दान बिनय बहुमाना। सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना ॥103:2॥

तुरत भवन आए गिरिराई = हिमवान् तुरंत घर आये, *सकल सैल सर लिए बोलाई* = सभी पर्वतों व नदियों को बुला लिया, *आदर दान बिनय बहुमाना* = आदरपूर्वक दान देकर, विनती करके, *सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना* = सबको हिमवान् ने विदा किया।

शंकर जी व बारातियों को विदा करके हिमवान् घर वापस आते हैं। जिन नदियों, पर्वतों को निमंत्रण देकर बुलवाया था, उनका आदर सम्मान करते हैं, उनको भेंट देते हैं, विनम्रता से उनसे बातें करके सबको विदा करते हैं।

शिव जी कैलास पहुँचे, देवताओं की विदाई

जबहिं संभु कैलासहिं आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए ॥103:3॥
जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी ॥103:4॥
करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा ॥103:5॥

जबहिं संभु कैलासहिं आए = जब शिवजी कैलास पर्वत पहुँचे, *सुर सब निज निज लोक सिधाए* = तब सब देवता अपने-अपने लोक चले गये, *जगत मातु पितु संभु भवानी* = शंकर जी व पार्वती जी जगत् के माता-पिता हैं, *तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी* = इसलिये मैं उनके शृंगार का वर्णन नहीं करता, *करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा* = शिव जी तरह-तरह के भोग विलास करते हुए, *गनन्ह समेत बसहिं कैलासा* = अपने गणों के साथ कैलास में निवास करते हैं।

शिव जी पार्वती जी के साथ कैलास पहुँचते हैं। सब देवता उनसे विदा लेकर अपने-अपने लोक चले जाते हैं। अब कैलास में शिव-पार्वती वास करते हैं, साथ में उनके गन रहते हैं। वहाँ तरह-तरह के भोग-विलास करते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि शिव-पार्वती जगत् के माता-पिता हैं, इसलिये उनके शृंगार का वर्णन विस्तार सहित नहीं करते हैं।

स्वामिकार्तिक का जन्म जिसने युद्ध में तारकासुर को मारा

हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ ॥103:6॥
तब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारकु असुरु समर जेहिं मारा ॥103:7॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख जन्मु सकल जग जाना ॥103:8॥

हर गिरिजा बिहार नित नयऊ = शिव-पार्वती रोज विहार करते हैं, *एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ* = इस प्रकार बहुत समय बीत गया, *तब जनमेउ षटबदन कुमारा* = तब छः मुख वाले पुत्र का जन्म हुआ, *तारकु असुरु समर जेहिं मारा* = जिसने युद्ध में तारकासुर का वध किया, *आगम निगम प्रसिद्ध*

पुराना = वेद, शास्त्र व पुराणों में यह प्रसिद्ध है, *षन्मुख जन्मु सकल जग जाना* = स्वामिकार्तिक के जन्म की कथा सारा संसार जानता है।

शिव जी पार्वती जी के साथ नित्य विहार करते हैं, इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो गया। इसके बाद उनके पुत्र का जन्म होता है, जिसके छः मुख हैं। इसका नाम स्वामिकार्तिक होता है और उनको कुमार भी कहते हैं। उनका वाहन मोर होता है। समय आने पर तारकासुर के साथ कुमार का युद्ध होता है, और वह राक्षस मारा जाता है। यह कथा वेद, शास्त्रों, पुराणों में विस्तार से वर्णित है, सब इसे जानते हैं।

कथा का फल– विवाह कार्य सुगमता से संपन्न होकर सुख देंगे

जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा ।
तेहि हेतु मैं बृषकेतु सुत कर चरित संछेपहिं कहा ॥
यह उमा संभु बिबाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं ।
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्बदा सुखु पावहीं ॥छंद॥

जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा = स्वामिकार्तिक के जन्म, कर्म, प्रताप और महान् पुरुषार्थ को सारा जगत् जानता है, *तेहि हेतु मैं बृषकेतु सुत कर* = इसलिये मैंने शंकर जी के पुत्र की, *चरित संछेपहिं कहा* = कथा संक्षेप में कही है, *यह उमा संभु बिबाहु* = पार्वती-शिव के विवाह की कथा, *जे नर नारि* = जो स्त्री, पुरुष, *कहहिं जे गावहीं* = कहते हैं या गाते हैं, *कल्यान काज बिबाह मंगल* = उनके विवाह कार्य मंगल पूर्वक संपन्न होंगे, *सर्बदा सुखु पावहीं* = वे इन कार्यों में सदा सुख पायेंगे।

तुलसीदास जी कहते हैं कि मैंने शिव-पुत्र की कथा संक्षेप में कही है, उनके जन्म, प्रताप और पुरुषार्थ की कथा सब जानते हैं। सब लोग चाहते हैं कि उनके पुत्र-पुत्रियों का विवाह अच्छा हो, घर में मंगल आनंद बना रहे, इसके लिये क्या करें? तुलसीदास जी कहते हैं कि उमा-शिव के विवाह की इस कथा को प्रेम से सुनें या सुनायें। इसके फल से विवाह कार्य मंगलपूर्वक संपन्न होंगे, कोई बाधा नहीं आयेगी, सुख की अनुभूति सदा होती रहेगी।

शिव-पार्वती चरित अपार, अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन किया है

चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहिं पारु ।
बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गवाँरु ॥दोहा 103॥

चरित सिंधु = चरित्र समुद्र के समान अपार हैं, *गिरिजा रमन* = पार्वती के पति शंकर जी के, *बेद न पावहिं पारु* = वेद भी उसका पार नहीं पाते, *बरनै तुलसीदासु किमि* = तुलसीदास उसका वर्णन कैसे कर सकता है, *अति मतिमंद गवाँरु* = उसकी तो बहुत ही कम बुद्धि है वह गवाँर है।

गिरिजा के पति शिव के चरित्र समुद्र के समान हैं, उनका बहुत विस्तार है। शास्त्र, वेद, पुराण तक उन्हें पूरा नहीं गा सकते हैं। वेदों के सामने हमारी बुद्धि बहुत कम है, जितनी बुद्धि थी उतना हमने कह दिया। एक तरह से तुलसीदास जी क्षमायाचना कर लेते हैं, जितना हमसे बन सकता था, उतनी कथा सुना दी।

नोट



अवलोकितेश्वर (सुबोध अग्रवाल) का जन्म मध्यप्रदेश के सतना जिले में 1962 में हुआ। उन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती से जुलाई 1983 में मंत्र दीक्षा ग्रहण की। अपने शैक्षिक जीवन को 1988 में समाप्त कर मुंगेर आश्रम में ढाई वर्ष तक गुरु सेवा में रत रहे, और गुरुदेव ने उनको अवलोकितेश्वर नाम भी प्रदान किया। वे अभी मध्यप्रदेश के सतना जिले में चार्टर्ड एकाण्टेण्ट का कार्य कर रहे हैं।

श्री गुरुदेव की प्रेरणा से भारत की अनुपम संस्कृति के प्रचार व उत्थान हेतु प्रवचनों को संग्रहित कर शीर्षकों के माध्यम से लेखन व संपादन का मंगलकारी एवं उत्तम कार्य शुरू किया। प्रथम ग्रंथ श्री हनुमान चालीसा है जिसमें चिन्मय मिशन के प्रमुख स्वामी तेजोमयानन्दजी के प्रवचनों का संग्रह है। अन्य ग्रंथ गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस पर चिन्मय मिशन के वरिष्ठ स्वामी श्री शंकरानंदजी के प्रवचनों के संग्रह हैं।



श्री स्वामी सत्यानन्द जी कहते हैं कि श्रीरामचरितमानस का शब्दानुवाद होना चाहिये। उनकी प्रेरणा व स्वामी निरंजनानंद सरस्वती के कृपापूर्ण मार्गदर्शन में श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड भाग दो का शब्दानुवाद, श्री स्वामी सत्यानन्द जी के रिखिया सत्संगों का संकलन, चिन्मय मिशन के वरिष्ठ स्वामी श्री शंकरानंद जी के प्रवचनों का संकलन व संपादन शीर्षकों व उपशीर्षकों के माध्यम से किया गया है। परमपूज्य गुरुदेव का निर्देश है कि तुलसीदास जी ने जैसा ग्रंथ लिखा है, उसे वैसा ही समझा जाये। इस बात को ध्यान में रखते हुए ही यह संकलन व संपादन कार्य किया गया है।

बालकाण्ड के इस द्वितीय भाग में शिव-पार्वती कथा– सती का राम के प्रति संदेह, पश्चात्ताप, दक्ष यज्ञ मे शरीर त्याग, हिमाचल के घर पार्वती के रूप में जन्म, शिव प्राप्ति के लिए कठोर तप एवं शिव-पार्वती विवाह का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। इन सुन्दर एवं प्रेरणादायी कथाओं में छिपी उन व्यावहारिक शिक्षाओं को अपने जीवन में समाविष्ट कर हम कैसे आनन्दमय आलोक का अनुभव कर सकते हैं, इसका एक सुन्दर चित्रण इस द्वितीय भाग में किया गया है।



978-81-946102-5-0